सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण

मूल्य
सजिल्द चार रुपया आठ आना
अजिल्द चार रुपया

कृष्णचन्द्र : परिचय

कृष्णचन्द्र का जन्म सन् १६१२ में लाहौर के एक संभ्रांत हिन्दू घराने में हुआ। आपके पिता डाक्टर थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा काश्मीर में और बाद में लाहौर के मिशन कालिज और लॉ कालिज में हुई। आप पंजाब विश्वविद्यालय के एम० ए० एल० एल० बी० हैं।

बचपन से ही कृष्णचन्द्र को सङ्गीत और चित्रकला से प्रेम था। परन्तु इन दोनों कलाओं के शौक से इनके माता-पिता को बड़ी चिढ़ थी और वे इनकी इस विषय पर बड़ी भर्त्सना किया करते थे। लिखने का शौक आपको मैट्रिक में पैदा हुआ। पहला लेख जो आपने लिखा वह एक व्यंग था जो दिल्ली के साप्ताहिक 'रियासत' में छपा। इस व्यंग का विषय था आपके फारसी के मास्टर (जो बम्बई के वर्तमान श्रम-मन्त्री श्री गुलज़ारीलाल नन्दा के पिता थे)। इस व्यंग से आपके शहर में एक सनसनी-सी फैल गई क्योंकि इसमें फारसी के मास्टर साहब पर बड़े चुभते और तीव्र कटाक्ष थे। इस लेख के पारितोषिक-स्वरूप आपके मास्टर साहब और पिताजी ने आपकी खूब भुगत बनाई और आज्ञा दी कि आगे से कभी आप कलम उठाने का दुःसाहस न करें।

मिशन कालिज में जाकर आप वहां कालिज की पत्रिका के प्रधान छात्र-सम्पादक बन गए। परन्तु यहां भी आपने कोई अधिक लेख नहीं लिखे। बाद में जब आप लॉ कालिज में भर्ती हुए, तब आपको काफी समय मिल जाता था इसलिए आपकी लेखनी का चमत्कार प्रकट होना आरम्भ हुआ। आरम्भ के लेख अंग्रेज़ी भाषा में थे और इनका

विषय राजनैतिक या आर्थिक होता था। उन दिनों लाहौर के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी पत्र 'ट्रिब्यून' में स्वर्गीय प्रोफ़ेसर बृजनारायण के समाजवाद के विरुद्ध लेख प्रकट हुए। आपने उन लेखों के जवाब लिखे और ख्याति प्राप्त की। प्रान्त-भर में इन लेखों को बड़े चाव और दिलचस्पी से पढ़ा गया।

आपकी प्रथम कहानी काश्मीर पर थी जहां आपके पिता डाक्टर थे। आपकी पहली तीन कहानियाँ थीं—"जेहलम में नाव पर" "कुम्हार की गुज़रान", "दरकान"। यह तीनों ही कहानियाँ बड़ी लोकप्रिय बन गईं और इन्हें तात्कालिक सफलता मिली। काश्मीर प्रदेश की दो चीज़ों का आप पर बड़ा प्रभाव पड़ा—एक तो वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य और दूसरा वहां के ग़रीब किसानों की घोर दरिद्रता एवं असमर्थता। आपकी पहली कहानियों में यह दोनों प्रभाव विद्यमान् हैं। पृथ्वी की स्वर्गभूमि पर किये गए मानव के घोर अत्याचारों के विरुद्ध यह एक करुण चीत्कार था। इन कहानियों में जो रोमांस का भाग था जनता ने उसे बहुत पसन्द किया। यह असल में 'रोमान्टिक' यथार्थवाद था।

"दिल की आवाज"—इन दोनों के लेखक निर्देशक और निर्माता आप स्वयं ही हैं। इनके अतिरिक्त और बहुत सी फ़िल्मों की कहानियाँ और संवाद आपने लिखे हैं और आजकल भी आपका लेखन के अतिरिक्त बाकी समय फ़िल्म-जगत के काम ही आता है। परन्तु दोनों में से पहला स्थान लेखन-कला को ही प्राप्त है।

बंगाल के दुर्भिक्ष ने आपके विचारों में एक नई क्रान्ति पैदा कर दी। लाखों पीड़ितों के भयङ्कर चीत्कार ने आपके रोमान्टिक दृष्टिकोण को बुरी तरह झकझोर दिया। परिणामतः आपकी सब नई कृतियों में इस मानव-निर्मित अकाल के प्रति विरोध की एक गहरी छाप अंकित होने लगी। यह नया पहलू सर्वप्रथम "अन्नदाता" में प्रकट हुआ। उसके बाद आपने "बालकोनी" नाम से एक कहानी लिखी जो आपके मतानुसार आपकी सबसे अच्छी कहानी है। इनके बाद दो और कृतियाँ प्रकट हुईं—"मोबी" और "एक सुरीली तस्वीर"।

"अन्नदाता" को बहुत प्रसिद्धि मिली और भारत-भर की लगभग सभी मुख्य भाषाओं में इसका अनुवाद किया गया। इसके इलावा अंग्रेजी, फ्रेंच, चीनी और लंका की भाषा सिंहाली में भी इसका रूपान्तर हुआ। "अन्नदाता" के बाद की सभी कहानियों में राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्रवाद की झलक है और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों और उनके पिट्ठू भारतीय पूँजीवादियों को बुरी तरह लताड़ा है। जगह-जगह पर फ़ासिज़्म और युद्ध के प्रति भी विरोध का प्रदर्शन है। इसके बाद आपके दृष्टिकोण में एक और परिवर्तन आया जब बम्बई में समुद्री बेड़े के सिपाहियों ने हड़ताल कर दी। बम्बई की जनता ने उनको सहयोग दिया और देश-भर में क्रान्ति की एक नई लहर दौड़ गई। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने स्थानीय पूँजीपतियों का सहयोग प्राप्त किया और इस विद्रोह को कुचल दिया। इस समय कृष्णचन्द्रजी ने लिखा—"तीन गुण्डे"।

अंग्रेजी साहित्य में जैसे ब्रौन्टे परिवार के तीन सदस्य मशहूर हैं, वैसे ही कृष्णचन्द्रजी और उनके भाई और बहिन ने स्थान बना लिया है।

प्रगतिशील लेखक-संघ के आप प्रधान रह चुके हैं और उसके काम में विशेष उत्साह ले रहे हैं। अब आपका उत्तरोत्तर हिन्दी की ओर झुकाव हो रहा है और आशा की जाती है कि स्वर्गीय मुन्शी प्रेमचन्द जी की तरह आप भी उर्दू से निकल कर हिन्दी के क्षेत्र में प्रकाशमान् होंगे।

क्रम

प्रथम परिच्छेद

कल्पना

: १ :

एकाएक सूरज पश्चिम में अस्त हो गया और दूर जहां तक दृष्टि जा सकती थी, एक सुन्दर, मनोहर घाटी फैलती गयी। सूरज के मछुए ने अंतिम बार अपना स्वर्णिम जाल घाटी की गहराइयों में फेंका और नीले जंगलों से ढके हुए चट्टान पर्वत, धान के खेत...नदी का चमकीला पानी, लकड़ी के छोटे-छोटे पुल, नाशपातियों के सुन-हले झुंड आकाश के स्वर्णिम जाल में घिरे हुए दिखाई दिये। वायु मन्द गति से रुक-रुककर बह रही थी मानो उसका धीमा मंद श्वास भी उसी जाल में उलझकर रह गया हो। स्वयं अपने मुख पर श्याम ने उस रंगीन और लचकीले ताने-बाने की कोमलता अनुभव की, जैसे वह स्वर्णिम जाल उसके गालों पर से फिसलता हुआ पश्चिम की ओर जा रहा हो। सूरज के मछुए ने घाटी का सारा सोना, उसका सारा सौन्दर्य, रंगीन मछलियों की भान्ति अपने जाल में समेट लिया था और अब वह उसे पश्चिम की ओर खींचे लिये जा रहा था। वह जाल अब पर्वतों के शिखरों से नीचे खिसकता और घने जंगलों पर से फिसलता सुनहरी घाटी में फैले हुए धान के खेतों की ओर आ रहा था और अपने पीछे एक उदास-सी कालिमा फैलाता जा रहा था। श्याम ने सोचा कि किसी एक व्यक्ति को कैसे यह अधिकार है कि वह इस प्रकार घाटी के समस्त सौन्दर्य पर कब्ज़ा कर ले और यहां से जाते समय इसे अपने साथ समेट ले जाये ? उसका जी चाहा कि पश्चिम अस्ताचल में अन्तरिक्ष के इस छोर से उस छोर तक एक ऐसा बांध बना दिया जाए ताकि सौन्दर्य का यह प्रवाह उस ओर न जाने पाये और घाटी के सौन्दर्य के अन्तिम क्षण अपनी अनुपम छवि

ज्यों-की-त्यों बनाए रहें। परन्तु अस्ताचल-गामी सूरज उसकी इस कोरी कल्पना पर यों मुस्करा दिया कि कुछ ही मिन्टों में सारी वादी पर एक धुंधली-सी कालिमा छा गयी। पश्चिम में लालिमा की एक रेखा मात्र रह गयी—जाल का अन्तिम किनारा। उसकी खच्चर की गरदन के बाल, जो कुछ ही क्षण पूर्व ज्वाला की भान्ति लहराते हुए दीखते थे, अब रूखे-सूखे बालों की एक बदसूरत-सी पट्टी नज़र आने लगे, और उसने सोचा कि अधिक समय तक इस दर्रे की चोटी पर खच्चर की पीठ पर बैठे-बैठे अपनी आकांक्षाओं की असफलता पर विचार करना व्यर्थ है, अब आगे चलना चाहिये।

गुलाम हुसैन ने जो उसके निकट ही दूसरी खच्चर पर सवार था, आगे की ओर झुककर और वादी की तरफ हाथ फैलाकर कहा—"यह मान्दर की वादी है और वह—मान्दर की नदी के उस पार कचहरी है। रात होते-होते हम वहां पहुँच जायेंगे। तहसीलदार साहब आप का इन्तज़ार कर रहे होंगे।"

तहसीलदार साहब, नटखट रवि, नन्हीं निम्मी और उसकी माता आज सभी उसकी प्रतीक्षा में थे। उनके उत्सुकतापूर्ण मुख उसकी आंखों के आगे घूमने लगे। निम्मी की भोली मुस्कान, उसके नेत्रों का आश्चर्य, रवि की चंचलता, उसके घुंघराले बाल और उसका उन बालों को बार-बार झटकने का वह ढंग, उसकी माता का चौड़ा माथा, सीधी मांग और काले केशों में चमकते हुए चांदी के तार, पतली भवों के तले शान्त पुतलियां और पपोटों की कोरों पर पतली, महीन-सी झुर्रियां, अधेड़पन के आगमन के चिन्ह, नेत्रों में परेशानी....एक अज्ञात भय और एक अस्पष्ट-सी उत्सुकता से कहीं अधिक ममता नजर आती थी। उन सबके ऊपर झुका हुआ उसके पिता का चेहरा, तीखी, परेशान और दयामयी आंखें, जिनमें कभी प्रसन्नता की चमक, कभी चिन्ता की बदली, कभी शासन का अभिमान—जैसे उन आंखों में

सारा संसार अपराधी हो। मगनूर ठोड़ी जिसे वह अपनी अंगुली से सहला रहे थे।

वह पूरे एक वर्ष के बाद अपने घर वालों से मिलने आ रहा था। पिछली गर्मियों की छुट्टियों के बाद जब वह कालेज पहुँचा तो उसके पिता की तबदीली हो गयी थी। तबदीली भी और बदली भी—और वह मान्दर में तहसीलदार के पद पर थे। एक वर्ष में भला घर वालों में तो क्या परिवर्तन आया होगा? हां यह स्थान नया था। धौरकोट तो बिल्कुल घुटी घुटी-सी जगह थी....शीत, बरफ से ढकी तथा पाले की मारी हुई। परन्तु इस वादी की छाती असीमित थी, जिसमें बल खाती हुई एक छोटी-सी नदी भी बह रही थी। अच्छा स्थान होगा! छोटी बहिन और भाई किस उत्सुकता से उसका मार्ग देख रहे होंगे! कभी-कभी माताजी भी तो घाटी के किनारे आकर इस टेढ़ी-मेढ़ी सड़क पर आने वाले सवारों में अपने बेटे को ढूंढती होंगी......

दर्रे की ढलवान से उतरकर अब वे एक सीधी पगडंडी पर आ गये थे। अब चारों ओर अंधकार छा चुका था। अंधकार तथा सुनसान। हां कभी-कभी खच्चरों के पांव पत्थरों से टकरा जाते और खच्चर वाला अपने थके और क्षीण स्वर में कह उठता, "होश, नूरी, होश!"

उसके मन, मस्तिष्क पर एक प्रकार की निद्रा-सी छा गयी। केवल नाक में बार-बार किसी उष्ण सुगन्धि की लपटें आती थीं जिससे उसने अनुमान लगाया कि वे बासमती के धान के खेतों के निकट से निकल रहे हैं। बासमती के धान की सुगन्धि कितनी स्निग्ध और भली होती है!

एकाएक उसकी प्यास चमक उठी। उसने गुलाम हुसैन की ओर देखा जो अपनी खच्चर पर पत्थर की मूर्ति की तरह स्तब्ध बैठा था।

"गुलाम हुसैन, इधर कोई चश्मा नज़दीक होगा? बड़ी प्यास लगी है......"

"बस कोई दस-पन्द्रह कदम आगे। यह भी अच्छा ही हुआ कि आपको यहीं आकर प्यास लगी, नहीं तो......"

दस कदम के बाद खच्चरों के पाँव स्वयं ही रुक गये। शायद खच्चरें भी प्यासी थीं। यहां एक छोटी-सी बावली थी। बड़ी-बड़ी शिलाओं के मध्य से पानी चमक रहा था। ऊपर वृक्षों का घना झुंड था। मेंढक टर्रा रहे थे। वह एक शिला पर घुटनों के बल बैठ गया और प्याला चश्मे की ओर बढ़ा दिया।

"इस चश्में में जोंकें हैं, राही!" किसी ने कहा।

वह चौंककर पीछे हटा और शिला पर खड़ा हो गया। अन्धेरे में, जिसे वृक्षों के झुंड ने और भी गहरा कर दिया, वह उस लड़की को न देख पाया जिसका शरीर लम्बा, धनुष जैसा तना हुआ और छातियां उभरी-हुई थीं, और चमकीली आंखें, मानो पत्थर की शिलाओं में चमकता हुआ पानी। वह अपने सिर पर एक मटकी उठाये हुए थी और उसके बिल्कुल निकट खड़ी थी।

"इसमें......इस चश्में में जोंकें हैं?"

लड़की ने धीरे से सिर हिलाया—"हां जोंकें......जो अंधेरे में पानी पीने वाले परदेसियों के कण्ठ में उतर जाती हैं, नाक में चली जाती हैं और कभी-कभी दिमाग में भी...." वह हंसी।

लड़की के स्वर में अहङ्कार था, साहस था और थी नारीत्व की ललकार मानो वह उसे नीचा दिखाने पर उतारू हो। उसके मन में उस 'धनुष' के खिंचे तारों के प्रति दिलचस्पी उत्पन्न हो गयी। उसने कहा "अगर जोंकें दिमाग में चली जायें तो फिर क्या होता है?"

वह बोली, "वही होता है जो वृक्ष को दीमक लग जाने पर होता है।"

"वृक्ष गिर जाता है, दीमक बाकी रहती है....लो पानी पियो।"

वह अपनी मटकी उंडेलकर उसे पानी पिलाने लगी। क्षण-भर के लिये उसने उसके नयनों की श्यामल चमकीली गहराइयां देखीं, मानो एक व्याकुल हंस-युगल उड़ने को तैयार हो। पर दूसरे ही क्षण मूर्तिवत—वह मटकी संभाले खड़ी थी। सहसा उसे ध्यान आया कि वह पानी तो पी चुका है।

"तुम्हारा नाम क्या है?" उसने पूछा।

"मेरा नाम चन्द्रा है। मेरा घर वृक्षों के उस झुण्ड से परे घाटी के ऊपर है। मैं अपनी मां के साथ रहती हूँ, जो विधवा है। हमारे घर में एक कुत्ता भी रहता है। उसका भी नाम जानना चाहते हो? शेर है उसका नाम, परदेसियों और बदमाशों को मार भगाने में वह सचमुच एक शेर है!"

वह हंसी, परन्तु उस हंसी में अपमान की स्पष्ट झलक थी और स्वर में व्यंग पूर्णतया जागृत था।

यह गर्व, यह आत्माभिमान, यह चैलेंज!

वह खच्चर पर सवार होने लगा।

सहसा चन्द्रा ने पूछ लिया "और तुम्हारा क्या नाम है?"

"जोंक!" मुस्कराकर उसने कहा और फिर खच्चर को एड़ी लगा कर हवा हो गया।

भागती हुई खच्चर पर से उसने पीछे मुड़कर देखा तो वह 'स्तूप' अभी तक वहीं जमी हुई थी, फिर धुंधली होती-होती अंधकार में विलीन हो गयी.......अब प्यास बुझ चुकी थी और नाक में वही सुगन्धि घुसी आ रही थी। बासमती की सोंधी सुगन्धि.......

गुलाम हुसैन कहने लगा—"यह लड़की बड़ी हरामजादी है, किसीसे ब्याह नहीं करती, किसी के काबू में नहीं आती। इसकी

विधवा मां को पटवारी तीन हज़ार रुपये देता था। इस कीमत पर यह 'छोकरी' बुरी भी न थी लेकिन वह बेवकूफ़ विधवा न मानी। गांव वालों ने इन दोनों को गांव से निकाल रक्खा है। इसकी मां ने दूसरी जाति में शादी कर ली थी। ब्राह्मण होकर एक चमार से शादी! वह जम्मू से यहां आया था, यह चन्द्रा उसी की बेटी है। चमार मर गया। अब यह लड़की है और इसकी मां। एक छोटा-सा टुकड़ा ज़मीन का है जिस पर इसका निर्वाह होता है। गांव के लोग इनसे बड़ी नफ़रत करते हैं और शरीफ़ लोग तो इन्हें अपने घरों में नहीं घुसने देते। बड़े बुरे दिन काट रही है। दिन फिर सकते हैं अगर विधवा इस छोकरी को बेच डाले। पर वह तो एक मूर्ख है जी। जैसी मां वैसी बेटी।"

वह गुलाम हुसैन की बातें सुनता गया और खच्चरें धीरे-धीरे आगे बढ़ती गईं और वादी के बदलते हुए चित्र हृदय-पटल पर अंकित होते गए। फिर जैसे गुलाम हुसैन की बातें भी उसी वादी के दृश्यों का एक अंग बन गयीं और फिर जैसे उसे उन बातों में से मधुमक्खियों के भिनभिनाने की आवाज़ आने लगी और उसकी आंखों में नशा-सा छाने लगा। बातों में अब कोई रस न रहा था केवल मधुमक्खियों की एक गूंज थी जो उसके मस्तिष्क के किसी परदे से टकरा रही थी। बातें, सुगन्धियां, दृश्य....सब अस्पष्ट रूप में, अनजाने उसके दिमाग की तहों में घुसे जा रहे थे। खच्चर पर बैठे-बैठे उसे नींद आने लगी।

: २ :

मान्दर की नदी पार करने के बाद रास्ता एक पगडंडी के रूप में, धान के खेतों में से गुज़रता था, और उससे आगे थोड़ी दूर जाकर एक टीले पर से यह मार्ग इतना ऊबड़-खाबड़ न रह जाता था। उसने दायाँ रिकाब से अपना पांव निकाल लिया और ऊपर से बायीं ओर ले जाकर बड़े आराम से काठी पर बैठ गया। अब उसके हाथ में खच्चर की लगाम थी और दोनों पांव एक ओर लटके हुए थे। थोड़ी देर के लिए उसने अपनी कमर सीधी की। हैट को उतारकर आगे रख लिया और फिर सारा शरीर ढीला छोड़ दिया। खच्चर धीरे-धीरे टीले पर चढ़ आई। यहाँ नाशपाती का एक टेढ़ा-मेढ़ा पेड़ था और पगडंडी के दोनों ओर मक्की के खेत थे। मक्की के भुट्टों की सोंधी-सोंधी गंध उसकी नाक में घुसती गई। एक लड़की भैंस का दूध दोह रही थी, उसके निकट एक गुज्जर खड़ा था। यहाँ एक मकान था। एक लाला धोती बांधे, नंगी खाट पर घुटने ऊपर रखे हुक्का पी रहा था। निकट ही एक बुढ़िया चूल्हे में लकड़ियाँ चुन रही थी। आटा गूंधकर पास धरा था। पास ही दो गायें रांभने लगीं और एक बछिया पेशाब करने लगी। आग, धूंआ, गोबर, मूज, हुक्के की गुड़गुड़ाहट, भुट्टों की सोंधी-सोंधी गंध और झाड़ियों पर खिले हुए जंगली गुलाब के फूल, नीलधारी की बेलें, जिन पर सैंकड़ों चिड़ियां शोर मचा रही थीं— यह सभी कुछ उसके मस्तिष्क पर कुछ इस प्रकार छा गया कि वह बिल्कुल विचारशून्यता होकर ऊंघने लगा। उसके शरीर की हर हरकत खच्चर की चाल से सम्बद्ध हो गयी और उसके दोनों पांव बेतरह झूलने लगे। सहसा उसके निकट से दो बच्चे चिल्ला उठे और वह गिरते-गिरते संभला। उसका छोटा

भाई और उसकी बहिन निम्मी खुशी से तालियाँ बजाते हुए चिल्ला रहे थे—"बड़े भइया आ गए—बड़े भइया आ गए—आहा—आहा।" रवि तथा निम्मी ने आगे बढ़कर खच्चर की लगाम पकड़ ली और वह उछल कर नीचे आ गया और उसने दोनों को एक साथ उठा कर अपनी छाती से लगा लिया। निम्मी की आँखों में प्रसन्नता की चमक थी और उसके कटे हुए बाल उसके कंधों पर गिर रहे थे। रवि के भूरे-भूरे गालों पर हल्की लालिमा छा गई और उसने अपनी दोनों बाहें अपने भाई के गले में डाल दीं और बोला—

"मेरे लिए चाकू लाये ?"

"और मेरी मोटर ?" निम्मी कह उठी।

उसने मुस्कराकर कहा "हाँ"।

फिर उसने धीरे से दोनों को नीचे उतार दिया और कहा—"अब मुझे रास्ता तो दिखाओ...." एक बगीची में सरो और शमशाद के वृक्ष थे, गुलशिब्बो और पीली चमेली के फूल। उनकी सुगन्धि ने उसकी तन्द्रा को तोड़ दिया और उसने देखा कि वह बगीची एक छोटे से बंगले के सामने थी। बंगले के बरामदे में चेचक के दागों से भरे हुए चेहरे वाला एक व्यक्ति खड़ा मुस्करा रहा था। रवि ने उसकी ओर देखकर अपना हाथ हिलाया और कहा "बड़े भइया आ गये," चेचक के दागों वाले उस व्यक्ति ने उसे सलाम किया। सलाम का जवाब दे वह आगे बढ़ा। वहाँ एक बाग था, जो नया ही लगाया हुआ जान पड़ता था; काफी फ़ासले पर लगाये हुए छोटे-छोटे पेड़। चारों ओर मेंहदी की बेलिंग थी और उसके सामने एक बड़ा बंगला था जिसकी बाग वाली दीवार से पहाड़ी अंजीर का एक वृक्ष लगा हुआ था और उसके पास ही नासपातियों के कुछ पेड़ फलों से लदे, झुके जा रहे थे। मुसाफ़िर [illegible] आगे निकल गया और निम्मी और रवि उसी तरह और मनो उसके साथ भीतर चले गये।

उसने अपने माता-पिता के पांव छुए। उसकी माता की आँखों में आँसू चमकने लगे और पिता के होंठों पर एक ऐसी मचल सी मुस्कान थिरक उठी जो आँसुओं तथा मुस्कान के बीच झाँकती हुई प्रतीत होती थी। अपने माता-पिता के पांव छूते समय न जाने क्यों उसे अपने कालेज का कैम्पस याद आ गया, जिसके बीच में पीपल का एक पेड़ था और जहाँ एक बेंच पर उसने ड्रुसिला को प्रेम की शपथ दी थी। ड्रुसिला के गुलाबी कपोल जिन पर उसके होंठों के पाउडर की हल्की-सी गंध का अन्त होता था। उसकी लम्बी, नाजुक, चाँदी की सुराही जैसी गरदन—न जाने ड्रुसिला उसे इस समय क्यों याद आ गई। ड्रुसिला ने कहा था कि तुम मुझे भूल जाओगे और उत्तर में उसने कहा था कि कोई अपने प्राणों को भी भूल सकता है—लेकिन ईसाई लड़कियों के प्रेम का भी क्या विश्वास? उसके इस भोंडे मज़ाक पर ड्रुसिला का मुख लाल हो उठा था और उसे इस गुस्ताखी पर क्षमा माँगनी पड़ी थी—परन्तु इस आँगन में, इस समय उसे ड्रुसिला क्यों याद आ रही थी?

एकाएक उसकी माता की आवाज़ उसके कानों में पड़ी—"बेटा, यह तुम्हारी बूआ है छायादेवी।" एक लम्बे और इकहरे शरीर की स्त्री उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। उसकी वाणी में यौवन था; और थी नारीत्व की आभा, हाँ आँखों के नीचे हल्की-हल्की झुर्रियां थीं। उसने सोचा, अपने समय में बूआ भी सौंदर्य की प्रतिमा होगी...माताजी भी कमाल करती हैं, जहाँ जाती हैं मेरे लिए बूआएं, मौसियां, चाचियां, बहिनें आदि ढूंढ निकालती हैं। बूआ! अब भी इसका कद-बुत, रंग-रूप ऐसा है कि कइयों पर जादू कर दे।

छायादेवी ने कहा, "और यह तेरी बहिन है वंती!" वंती सबसे पीछे खड़ी थी। अपना नाम सुनकर संकोच से वह और भी पीछे हट गई। फिर उसने अपने दोनों हाथ जोड़कर आँखें झुका लीं और वह वंती को देखकर सब कुछ भूल गया।

भाई और उसकी बहिन निम्मी खुशी से तालियाँ बजाते हुए चिल्ला रहे थे—"बड़े भइया आ गए—बड़े भइया आ गए—आहा—आहा।" रवि तथा निम्मी ने आगे बढ़कर खच्चर की लगाम पकड़ ली और वह उछल कर नीचे आ गया और उसने दोनों को एक साथ उठा कर अपनी छाती से लगा लिया। निम्मी की आँखों में प्रसन्नता की चमक थी और उसके कटे हुए बाल उसके कंधों पर गिर रहे थे। रवि के भूरे-भूरे गालों पर हल्की लालिमा छा गई और उसने अपनी दोनों बाहें अपने भाई के गले में डाल दीं और बोला—

"मेरे लिए चाकू लाये ?"

"और मेरी मोटर ?" निम्मी कह उठी।

उसने मुस्कराकर कहा "हाँ"।

फिर उसने धीरे से दोनों को नीचे उतार दिया और कहा—"अब मुझे रास्ता तो दिखाओ...." एक बगीची में सरो और शमशाद के वृक्ष थे, गुलशब्बो और पीली चमेली के फूल। उनकी सुगन्धि ने उसकी तन्द्रा को तोड़ दिया और उसने देखा कि वह बगीची एक छोटे से बंगले के सामने थी। बंगले के बरामदे में चेचक के दागों से भरे हुए चेहरे वाला एक व्यक्ति खड़ा मुस्करा रहा था। रवि ने उसकी ओर देखकर अपना हाथ हिलाया और कहा "बड़े भइया आ गये," चेचक के दागों वाले उस व्यक्ति ने उसे सलाम किया। सलाम का जवाब देकर वह आगे बढ़ा। वहाँ एक बाग था, जो नया ही लगाया हुआ जान पड़ता था: [illegible] पर लगाये हुए छोटे-छोटे पेड़। चारों ओर [illegible] बेलें थीं और उसके सामने एक बड़ा बंगला था जिसकी [illegible] में [illegible] और [illegible] एक वृक्ष लगा हुआ था और उसके [illegible] नाशपातियों के [illegible] फलों से लदे, झुके [illegible] थे। [illegible] आगे निकल गया और निम्मी और रवि उसी तरह और [illegible] उसके साथ भीतर चले गये।

माताजी कह रही थीं "और यह तेरी चाची मथुरादेवी हैं और यह
[illegible]ची हुसना बेगम, यहां के नायब तहसीलदार साहब की पत्नी। यह
[illegible]ताजी हैं पंडितानी, पंडित रूपकिशनजी के व[illegible] से। यह करीमा माली
की अम्मां हैं। बेटा इन सबको पैरी-पौना करो। संतराम, वसंतराम
किधर मर गया? इस कमरे में श्याम के लिए पलंग बिछा दे और हां,
बिस्तर के ऊपर यह चादर बिछाइयो जो अभी निम्मी और वंती ने
मिलकर काढ़ी थी। बेटा, रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं हुआ? हमने इसी
लिए गुलाम हुसैन को भेज दिया था। सोचा, तुम्हारे लिए यह जगह
नई है. रास्ते में तकलीफ न हो। यों यह जगह बहुत अच्छी है पर—"

माताजी बातें-ही-बातें किये जा रही थीं। स्त्रियां, जो उसे देखने
आई थीं अब चलने की तैयारी कर रही थीं। आंगन में शोर मच रहा
था परन्तु इन तमाम चेहरों और आवाजों के समूह में उसे केवल एक चेहरे
का विशेष अनुभव हो रहा था। अनजाने ही वह वंती के लज्जाशील नेत्रों
को निहार रहा था। वंती मानो छाया का यौवन थी—उसके बीते हुए
सौंदर्य का पूर्ण चित्र और शायद इसमें भी कुछ अधिक वह मुस्कान जो
वंती की अपनी ही थी। उसके हंसने का ढंग सबसे निराला था। उसे
उन्हीं दो नेत्रों का अनुभव हो रहा था जो इस जनसमूह में दो शर्मीले
सितारों की भांति चमक उठते थे और पुनः इसी समूह में विलीन हो
जाते थे। होठ और निचले ओंठ के मध्य एक छोटा-सा तिल, और तिल
के निकट एक हल्की-सी सिलवट। जैसे इन ओठों का एक भाग
मुस्करा रहा हो और दूसरा उसी प्रकार गम्भीर हो। वह यह जानने में
असमर्थ रहा कि अब यह मुस्करा रही है अथवा पूर्ववत गंभीर है।

—[illegible] सब लोग चले गये और मौसी छायादेवी भी जाने लगी तो
[illegible] लगी—"बहिन, अब भोजन करके ही जाना। तुम्हें तो मां[illegible]
[illegible] है और फिर आज[illegible]..........[illegible] आज मांस और चावल पके हैं
[illegible] इस का [illegible]।"

वह अपने कमरे में चला गया और वस्त्र उतारकर कमर सीधी करने के लिए लेट गया। उसकी आँखें आप-ही-आप बन्द हो गईं। किसी आहट से जब उसकी निद्रा भंग हुई तो उसने देखा कि खाट के निकट ही वंती खड़ी है जो छूटते ही बोली "मेरी गुरगाबी का दूसरा पांव नहीं मिलता।"

उसने अपनी खाट के नीचे से गुरगाबी को ढूंढ निकाला। बड़ी तेज़ी के साथ वह गुरगाबी पहिनने लगा। उसका मुख कानों तक लाल हो गया परन्तु जितनी शीघ्रता से वह कमरे से निकलना चाहती थी उतनी ही गुरगाबी के लेस बटन में से निकल-निकल जाते थे। "ऊंह" कहकर वंती ने अपना पांव झटक दिया।

"लाओ, मैं बांध दूं यह फीता।"

पांव के सलौने उभार पर फीता बिल्कुल फिट आया। ऊपर दो गोल टखने थे। टखनों पर नजर जाते ही उसकी दृष्टि में बावली के किनारे खड़ी, पानी भरने वाली युवती के व्याकुल पक्षी फड़फड़ाने लगे। पीपल के नीचे पड़ा हुआ बेंच और प्रिसिला के गुलाबी कपोल---और अपनी उंगलियों में तेज़ खून की गरमी से जलन-सी अनुभव होने लगी ....परन्तु फीता लग चुका था, वन्ती उसी क्षण कमरे से बाहिर चली गयी। और उसे अनुभव हुआ मानो उसने बिजली की चमक को लपकते देखा हो। मानो उसने तीर को धनुष से निकलते देखा हो और देखा हो आकाश के अंधकार में एक टूटते हुए सितारे को—प्रकाश की रेखा खींचते।

जब वह खाना खाकर सोया तब भी कितनी ही देर तक उसकी आंखों में प्रकाश की रेखा खिंची रही।

: ३ :

दूसरे दिन प्रातः जल्दी ही उसकी आंख खुल गयी। उसके कमरे की खिड़की पूरब की ओर खुलती थी। तारे अभी पूर्ण रूप से फीके न पड़े थे और दूर क्षितिज पर कालाधारी के शिखर पर प्रभात का तारा चमक रहा था। खिड़की के इर्द-गिर्द की बेल कुंडल बनाये सो रही थी। उसके चौड़े-चौड़े हरे पत्तों पर ओस की बूंदें टपकी हुई थीं। अंगूर के गुच्छों में उसने एक बुलबुल को सोये देखा। बुलबुल की चोंच अंगूर के दानों पर टिकी थी और उसके पंख ओस से भीगे हुए मालूम होते थे। न जाने वह बुलबुल अपना घोंसला छोड़कर यहां क्यों चली आई थी। शायद जंगली अंगूर के हरे-भरे पत्तों ने उसे लुभा लिया था। इसी कारण उसकी चोंच उन दानों पर टिकी थी जैसे वह स्वप्न में उन्हें चूम रही हो। जैसे अपने भोले स्वप्न में भी वह उनका संग न छोड़ना चाहती हो। वह एक अंगड़ाई लेकर बिस्तर से बाहिर निकला और बाग में चला गया। यह तहसील तो बड़े सुन्दर स्थान पर बनी है, उसने अपने मन में कहा—कई एकड़ भूमि होगी। चारों ओर एक विस्तृत बाग था जिसके मध्य में कचहरी और तहसीलदार का बंगला था। थोड़े से अन्तर पर एक और छोटा-सा बंगला था। एक ओर नौकरों के क्वार्टर थे और लकड़ी की रेलिंग से परे मक्की के खेत थे और दूर घाटी पर घास लहलहा रही थी। घाटी से नीचे उतरकर धान के खेत थे, फिर वही मान्दर की नदी और उसके बाद वही मार्ग जिधर से वह कल आया था।

अभी चारों ओर गहरी निस्तब्धता छाई थी। बाग में दाऊदी के फूलों की क्यारियां किसी रंगीन शतरंज की तरह बिछी थीं। काश्मीरी सेब

अभी गुलाबी न हुए थे और फ्रेंच सेब तो अभी बिल्कुल हरे थे। उनके निकट ही आड़ुओं के वृक्षों का एक छोटा-सा झुंड था। इस झुण्ड के साथ सौंफ के पौधे खड़े थे और इनसे परे नागफनी की कंटीली झाड़ियां। यहां हरियाली इतनी अधिक और छाया इतनी घनी थी कि यह स्थान सारे बाग से अलग-थलग, अन्धकारमय और सुनसान सा दिखाई देता था। न जाने माली इस ओर क्यों ध्यान नहीं देता, अन्यथा यहां थोड़ी-सी जगह साफ करके यदि चबूतरा-सा बना दिया जावे तो दोपहर के समय पढ़ने के लिये यह स्थान उपयुक्त रहे—यह सोचता हुआ वह घाटी से नीचे उतरने लगा। भीगी हुई लम्बी घास पर फिसलन इतनी अधिक होने से वह शीघ्र ही घाटी के नीचे जा पहुंचा। वहां एक मार्ग बटकों के वृक्षों में से गुजरकर नदी की ओर जाता था। वह उसी मार्ग पर हो लिया। जहां बटकों के वृक्षों की पंक्ति समाप्त होती थी वहां एक खेत की बाड़ के निकट उसने एक युवती को देखा जो गायें-भैंसों और भेड़-बकरियों का रेवड़ खेत में से बाहिर निकाल रही थी। उसके पीछे उसे एक लम्बा-सा युवक दिखाई पड़ा। उसका रंग गोरा था। आंखें कटीली तथा मूंछें ऊपर की ओर मुड़ी हुई थीं। उसने सफेद रंग की सलवार और खुले कालर की कमीज़ पहन रक्खी थी। उसने युवती के कान में कुछ कहा और स्वयं ऊपर की ओर मुड़ गया। मुड़ते समय उसकी गरदन पर बायें जबड़े के पास श्याम को एक गहरी चोट का निशान दिखाई पड़ा। युवती का रंग उड़ गया था और वह श्याम की ओर आश्चर्य और क्रुद्ध नेत्रों से देख रही थी। उसका सिर नंगा था और उसने काले रंग की सोसी का कुरता तथा उसी कपड़े की भारी सलवार पहिन रक्खी थी। उसके पांव नंगे थे और हाथ में छड़ी थी। उसका रंग खिलता-सा था नयन-नक्श अत्यंत आकर्षक थे। ठोड़ी गोल न थी बल्कि उसमें अत्यन्त सुन्दर झुकाव था जिससे उस युवती के दृढ़ संकल्प का

प्रदर्शन होता था। उसने श्याम को ऐसे क्रुद्ध नेत्रों से देखा कि वह कुछ क्षणों के लिये ठिठक गया !

वह बोली—"यह कौनसा रास्ता है ? यह रास्ता तो हमारे घर में से गुजरता है—तुम किधर जाना चाहते हो ?"

"मैं, मैं नदी पर जाना चाहता हूं और........"

"तुम कौन हो ? इससे पहले तुम्हें यहां कभी नहीं देखा।"

"मैं तहसीलदार साहब का लड़का हूं। कल, कल ही आया हूं। क्षमा कीजिए। मुझे रास्ता बता दीजिए।"

युवती ने आंखें झुका लीं। वह उसके साथ हो लिया।

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"तुम्हें मेरे नाम से मतलब ?" वह तनक कर बोली !

"वह शायद आप के पति थे। वह गोरे-चिट्टे जवान। जिनकी गरदन पर किसी चोट का निशान है। जो अभी-अभी आपसे अलग हुए थे—" श्याम ने शरारत-भरे ढंग से कहा।

"नहीं, वह यहां के थानेदार हैं, यार अहमदखां। वह भी आप ही की तरह रास्ता भूलकर इधर आ निकले थे", उत्तर देते हुए उसका मुख कानों तक लाल हो उठा और वह जोर-जोर से भैंसों को पीटने लगी।

नदी पर पहुंच कर वह रेवड़ को पानी में से गुज़ारने लगी। यहां नदी का पाट चौड़ा हो गया था और जहां तहाँ पानी में से नीले पत्थर सिर निकाले झांक रहे थे। गायें-भैंसे यहीं से गुजर रही थीं। इस स्थान से ऊपर लगभग सौ गज के फासले पर एक बड़ा-सा बांध था जहां पानी सोया हुआ सा प्रतीत होता था। इस बांध के ऊपर पानी एक ढलान से नीचे बहता था और इस बांध में दाखिल हो जाता था। जहां बांध समाप्त होता था वहां गांव के लोगों ने पत्थरों की दीवार बना

रखी थी ताकि बांध में पानी सदैव गहरा और निचले भाग में सदैव कम रहे और इस तरह पशुओं को पार ले जाने में सुविधा हो।

"इस बांध का क्या नाम है ?"

"संथाल।"

"तैरने के लिए बहुत अच्छी जगह मालूम होती है।"

"क्या कहा ?"

"कुछ नहीं, आई एम वेरी सारी। (I am very sorry)

युवती मुस्काराने लगी-"मैं यहां हर रोज सुबह नहाती हूं और इन ऊपर की चट्टानों से छलागें लगाती हूं।" इस समय यहां कोई नहीं होता। आज तुम आ गये हो। चाहे तुम तहसीलदार के बेटे ही हो लेकिन तुम्हें हम गरीबों को इस तरह तंग न करना चाहिए।

श्याम ने कहा—"तुम मुझे अपना नाम बता दो, मैं अभी लौट जाऊंगा। मैं तो यौंही सुबह सैर को निकला था, कोई काम न था और ....आखिर नाम बताने में हरज ही क्या है ? तुम न बताओगी तो मैं तहसीलदार साहब से पूछ लूंगा।"

"नूरां," उसने छड़ी को वायु में फेंकते हुए कहा।

और वह मार्ग पर मुड़ गया।

: ४ :

जनसंख्या की दृष्टि से मान्दर एक गांव था। परन्तु तहसील का मुख्य स्थान होने के कारण इसमें वह सभी कुछ मौजूद था जो एक कस्बे में होता है। थाना, तहसील, अस्पताल, चुङ्गी की चौकी, जंगलों का स्थानीय आफिस, शराब और अफीम का ठेका। अर्थात् राज्य के समस्त मुख्य विभाग यहां मौजूद थे। बाजार में सोडावाटर की एक दुकान भी थी। यह बाजार रोड़ी नाले और मान्दर नदी के बीच एक तंग-सी तलहटी में स्थित था। और बाढ़ में दो बार बह चुका था। परन्तु दुकानदारों को न जाने यह स्थान क्यों इतना प्रिय था कि दो बार अपना सब कुछ बाढ की भेंट चढा चुकने के बाद भी उन्होंने पुनः इसी स्थान पर बाजार बनाया था।

वास्तव में रोड़ी नाले और मान्दर नदी के संगम पर मान्दर गांव की सीमा शुरू होती थी। इसलिए बाजार बिलकुल मौके पर था, क्योंकि बाहर से आने वाले गूजर और किसान सबसे पहले इसी बाजार में आते थे और इससे पूर्व कि सरकारी अफसर उन्हें फांस लें, बाजार वाले, जहां तक उनसे बन आता था उनका रुपया हथया लेते थे। रोड़ी नाले के उस पार छाया का घर था और उसके भाई रोशन की दुकान। इस तरह रोशन और उसकी बहिन गांव की सीमा से बाहर थे। उनके घर के बिलकुल निकट से मान्दर नदी एक खतरनाक बल खाकर मुड़ती थी। यह नदी उत्तर-पूरब से आती थी। मीलों तक विस्तृत खेत फैले हुए थे और दूर पूर्वी छितिज पर नीलाधारी की चोटी सिर उठाए खड़ी थी।

बाज़ार के पश्चिम में एक विस्तृत मैदान था। यह मैदान चरागाह रूप में इस्तेमाल होता था। दौरे पर आने वाले अफ़सरों के कैम्प भी हीं लगते थे और जब कभी कोई मेला होता, तो वह भी इसी स्थान र जुटता था। इस मैदान से परे पश्चिम में एक और ऊंची घाटी थी जस पर पंडित सरूपकिशन का घर था। यहां और भी बहुत से ब्राह्मणों के घर थे। घाटी की चढ़ाई पर भी धान और मक्की के खेत थे। यह चढ़ाई ऊंची होती-होती एक ओर तो रहड़े के गांव से जा मिलती थी और दूसरी ओर उतराई उतर कर मान्दर के बड़े मैदान तक चली जाती थी जहां तहसील, सरकारी दफ़्तर आदि थे। यहीं साहूकार महाजनों के घर थे। दक्षिण-पश्चिम में यह घाटी घटते-घटते एक और छोटे-से मैदान में जा मिलती थी जिस के अन्तिम छोर पर मान्दर की नदी चक्कर काट कर पुनः आ मिलती थी। मानो मान्दर गांव एक द्वीप था जिसके तीन ओर यह नदी थी और पश्चिम में रहड़े के गांव का पहाड़ था। इस दक्षिण-पश्चिमी मैदान में तीन निर्मल जल के चश्मे बहते थे। गाँव वालों की भावना इन नामों से प्रकट होती थी जो उन्होंने चश्मों के रख छोड़े थे। सबसे बड़े चश्मे का नाम 'छुआरा' था छुआरा अर्थात खजूर। उस से छोटे चश्मे को लोग 'बादाम' के नाम से पुकारते थे। तीसरे और अन्तिम चश्मे को लोग 'मोतीचूर' कहते थे। मोतीचूर और दूसरे दोनों चश्मों का पानी खेतों में से बहता हुआ मांदर नदी में जा गिरता था। यहां मन्नो के पेड़ों का एक झुण्ड था और दो पनचक्कियां। मन्नो के पेड़ों में झूले पड़े हुए थे और इस झुण्ड की छाया में दोपहर के समय चरवाहे अपने रेवड़ों सहित सोया करते थे। कभी-कभी जब तरङ्ग उठती तो चरवाहिनें झूले चढ़ातीं और मन्नो की टहनियों को छूने का प्रयत्न करतीं। चरवाहे घंटों पानी में खड़े हाथों से मछलियां पकड़ने की कोशिश करते और कई तो इस काम में इतने निपुण हो गए थे कि हाथों से पकड़ कर या कंकर मार कर मछली को पानी में घायल कर देते, यहां तक कि वह अधमुई होकर ऊपर आ जाती। फिर

वहीं कहीं चूल्हा गरम किया जाता और पनचक्की वालों से तवा मांगकर मछलियां भूनी जातीं। मक्की की रोटियां, हरी मिर्चें और प्याज।

वह सोचने लगा कि इन चरवाहों के जीवन में जहां डकराती हुई काली भैंसें और फटे-पुराने कपड़े हैं, वहां अलगोज़ों का जांगली संगीत, एक अल्हड़ आवारापन और रस्मो-रिवाज से मुक्त प्रेम की अमिट भावना भी मौजूद है। वह मन ही मन में अपने सभ्य शहरी जीवन की इस वर्बर जीवन की प्रसन्नता से तुलना करने लगा।

अब उसका यह नियम सा हो गया कि दोपहर के खाने के बाद वह वृक्षों के उस कुण्ड में आ बैठता और कोई पुस्तक पढ़ता रहता। करीम माली से कह कर उसने छोटा-सा चबूतरा बनवा लिया था। वह स्थान बाग से अलग-थलग और बिल्कुल ओट में था। दोपहर पुस्तकें पढ़ते अथवा ऊंघते-ऊंघते सो जाने में व्यतीत हो जाती। कभी-कभी किसी टहनी से वह एक-दो आड़ू तोड़ लेता और चाकू से काट कर खाने लगता। सौंफ के पौदों की हल्की-हल्की सुगन्धि सारे वातावरण में फैली हुई मालूम होती और कभी पत्तों में छुपी हुई कोई बुलबुल चहचहा उठती। प्रकृति अत्यन्त रङ्गीन और मनोहर नजर आती और उसे अपने मन की गहराइयों में सुखद संतोष और नशे का-सा अनुभव होता। न जाने कीट्स को बुलबुल का संगीत सुन कर क्यों मृत्यु का ध्यान हो आया था। बुलबुल तो एक निर्दोष-सा पक्षी है। मीठे स्वरों और प्रायः एक ही लय में गाती है। यह भी असत्य है कि बुलबुल केवल रात ही के समय गाती है। वह दोपहर को, सुबह को, शाम को जब उसका जी चाहे गाती है, और गाती भी नहीं चहचहाती है। उसका चहचहाना आनन्ददायक होता है इसीलिये कानों को बुरा नहीं लगता अन्यथा जिस प्रकार वह एक ही स्वर, एक ही लय में चहचहाती है यदि उसकी आवाज़ मीठी न हो तो मनुष्य बुलबुल के संगीत से भी उकता जाये। बुलबुल का संगीत सुन कर उसे तो कभी मरने की इच्छा नहीं हुई। वह तो जीना चाहता है, दुनिया में बहुत से काम करना चाहता है। न जाने कीट्स को क्या सूझी कि २५ वर्ष की आयु ही में बुलबुल का नग़मा सुन कर मरने की ठान ली, और फिर बुलबुल का नग़मा इतना मीठा

भी तो नहीं—उसने जङ्गल के कई और पक्षियों की बोलियां भी सुनी थीं, जिनमें बुलबुल से कहीं अधिक मिठास थी। वास्तव में कवियों ने बुलबुल को योंही इतना महत्व दे रखा है, अन्यथा सच तो यह है कि शीत की बरफ़ीली रातों में जब सारा जङ्गल मौन हो जाता है तो चील की मद्धम सांयें सांयें में बुलबुल के संगीत से कहीं अधिक मिठास होती है। जब वर्षा ऋतु में हल्की-हल्की फवार पड़ती है तो उस फवार की मद्धम लय में झींगुरों और मेंढकों की आवाज़ एक ऐसी रोमांच उत्पन्न कर देती है कि बुलबुल का नग़मा उसके सम्मुख बिल्कुल तुच्छ होकर रह जाता है, सोलह-सत्रह हज़ार फीट की ऊंचाई पर हिमालय के भयानक शून्य सन्नाटे में किसी चील की आवाज़ कानों को बुलबुल के नगमे से भी अधिक प्रिय मालूम होती है। वह आंखें बन्द करके बुलबुल के नगमे का ध्वनि-विश्लेषण करने लगा कि शायद इसमें कहीं मृत्यु की आवाज़ की प्रतिध्वनि सुनाई दे। बुलबुल बोल रही थी—चक चक चूं रूं रूं। चक चक चूं रूं रूं। मृत्यु की आवाज़, बकवाद!

सहसा उसके कानों में एक और आवाज़ आई—"सलाम बाबूजी!"

उसने आंखें खोल दीं। बुलबुल का नग़मा कहीं दूर विलीन होता गया। एक औरत हाथ में दरांती लिये सौंफ के पौधों के पास खड़ी थी। वह युवा थी, परन्तु यौवन में अधेड़पन के चिह्न भी झलक रहे थे। जैसे वह समय से पूर्व युवावस्था में पहुँच गई थी और अब समय से पूर्व ही युवावस्था से निकल कर अधेड़पन में प्रवेश करना चाहती थी। उसका माथा चौड़ा था, मांग सीधी थी, परन्तु कानों पर बाल अगणित मेढ़ियों में गुंथे हुए थे उन मेढ़ियों को गूंथकर उसने उन्हें कानों के ऊपर लपेट रक्खा था। बालों का यह फैशन उसे अब मालूम हुआ। यह फैशन कोई नया न था, बहुत पुराना था, अन्यथा पहले वह यही समझता था कि ये जो कालेज की चंचल लड़कियां और मेमें इस

प्रकार अपने बाल संवारती हैं, यह कोई बहुत ही ऊंची किस्म की नवीनता है। नवीनता? मालूम होता है कि इस संसार में नवीनता कहीं नहीं है। उस औरत के बाल सुरमे से चुपड़े हुए थे और उस कुंड के हल्के अन्धकार में किसी तालाब के शांत जल की तरह चमक रहे थे, हां कनपटियों और कपोलों पर भूरी-भूरी झाइयां थीं। घोठ नीले थे, हां, आंखें अब भी सुन्दर थीं। परन्तु भवों के किनारों पर, आंखों में बल्कि सारे चेहरे पर ही एक ऐसी निराशा की छाप थी जैसे उस औरत ने जीवन में कई उतार-चढ़ाव देखे हों। गरदन का चमड़ा ढलक रहा था और उसे छुपाने के लिये उसने हरे मनकों की छः लड़ियों वाली माला पहिन रक्खी थी। ऐसी माला जो किसी युग में मलका 'मेरी' की तसवीरों में नज़र आती थी। लाल छींट की कमीज़ के नीचे छातियां ढलकी हुई थीं। रंग कभी गोरा होगा, अब जैसे उस रंग में किसी ने कीचड़ मिला दिया था।

उसने अपनी दरांती एक-दो बार बेचैनी से हिलाई। शायद वह उसकी तीखी दृष्टि को सहन न कर सकी थी। उसके गालों पर हल्की-सी लाली फैलती जा रही थी और वह यह देखकर बहुत खुश हुआ कि यह औरत अब भी शरमा सकती है। जब तक औरत शरमा सकती है तब तक उसमें पवित्रता का अंश रहता है।

"मेरा नाम सैयदां है। मैं करीम माली की बहू हूं", वह दरांती हिलाते हुए बोली "अब्बा जी ने मुझे भेजा है कि मैं यहां से सौंफ के इन पौधों को काट दूं।"

"अच्छा तो तुम सैयदां हो?" वह सैयदां की रामकहानी गुलाम-हुसैन से सुन चुका था परन्तु अब तक उसने सैयदां को देखा न था। हां संभवतः ऐसी औरत ही सैयदां हो सकती थी "अच्छा तो तुम ही सैयदां हो" उसने अपने शब्दों पर ज़ोर देते हुए कहा ताकि सैयदां जान जाए कि वह उसे जानता है—"अब्दुल की बीबी"।

"जी हां !" सैयदां ने आंखें नीची कर लीं और अपनी कमीज़ को कोने पर से खेंचने लगी।

"आओ बैठो"—उसने कहा "ज़रा ध्यान रहे, कहीं सौंफ के सभी पौदे न काट फेंकना, नहीं तो इस कुंज की सारी सुगन्धि जाती रहेगी। बस ज़रा-ज़रा छिदरा कर दो।"

सैयदां सौंफ के पौदे काटने लगी। थोड़े समय बाद उसने बिना किसी झिझक के पूछ लिया "मैंने सुना है, तुम अपनी शादी के कुछ दिन बाद किसी पुलिस के सिपाही के साथ भाग गई थीं।"

"हां यह सच है" उसने उकताई हुई-सी आवाज़ में उत्तर दिया।

"फिर क्या हुआ ? तुम लौट क्यों आईं ? क्या उसने तुम्हें छोड़ दिया या तुम्हें उससे प्रेम न था।"

वह पौधों को काटते-काटते रुक गई और दरांती को धरती पर रख कर बोली—"मुझे उससे प्रेम था या शायद वह दिन ही और थे"—उसने एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए कहा "तब वह मुझे बहुत प्यार करता था।"

"फिर ?"

"हम दोनों यहां से भाग गये। वह पुलिस में नौकर था। उसके खिलाफ रिपोर्ट हुई। अग़वा का केस था। मैं किसी दूसरे की ब्याहता थी। हम दोनों कसूरवार थे। जंगलों में मारे-मारे फिरते थे। फिर हम वहां से बच कर बहुत दूर दूसरे इलाके में चले गये जहां हमें कोई न पहचानता था।"

कुछ क्षणों तक सन्नाटा रहा।

फिर वह बोली—"मैं तो गरीब घर की लड़की थी। मेहनत-मजूरी कर सकती थी लेकिन वह पुलिस में रह चुका था। मुफ्त का माल उड़ाने और लोगों को धमकाने का उसे चसका था और अब वह

एक भागे हुए अपराधी की तरह घूम रहा था। उसे अपनी नौकरी छिन जाने का बहुत दुःख था।"

"लेकिन तब भी वह तुम्हें प्यार तो करता ही होगा?"

"हां, बहुत प्यार करता था!"—वह कटु स्वर में बोली—"फाके कराता था, हर रोज़ पीटता था, हर रोज़ रात को......साथ सोता था........थोड़े ही दिनों में ज़िन्दगी अजीर्ण हो गई। फिर मैं उसे छोड़ कर भाग आई। यहां मेरे खाविन्द ने मेरे साथ कोई बुरा बर्ताव नहीं किया।" वह एक दम चुप हो गई और पौधों को छिदरा करने लगी।

मैंने कहा, "सच है प्रेम को भी रोटी की ज़रूरत है। प्रेम भी, चाहे वह कितना ही पवित्र क्यों न हो केवल.......एक साथ सोने के सहारे नहीं जी सकता। प्रेम को भी रोटी चाहिये।"

"जी हां बाबूजी, जब तक पेट में रोटी न हो कोई बात नहीं सूझती......लेकिन आदमी जवानी में, जब खून में आग होती है, कभी न कभी कोई ऐसी बात कर बैठता है जिससे उसे उम्र भर पछताना पड़ता है......यह आपके यहां जो छाया आई है इसके साथ भी एक ऐसी ही घटना घट चुकी है।"

"मौसी छाया के साथ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"जी हां", उसने विश्वासपूर्ण स्वर में और ईर्षायुक्त प्रसन्नता से कहा, "इसी आपकी मौसी छायादेवी के साथ! यह पहिले अपने खाविन्द के साथ मौज़ा गोराह में रहती थी। वहां इसका मास्टर अमज़द हुसैन से, जो इन दिनों यहां स्कूल में पढ़ाता है प्रेम हो गया था। काफी दिनों तक इस बात की चर्चा रही। यह घर से भाग कर दो दिन उसके पास भी रही, लेकिन बाद में इसके खाविन्द ने बहुत शोर मचाया कि अमज़द हुसैन को चुपके से गोराह से खिसकना पड़ा। आपको नहीं पता इस बात का?"

"नहीं तो!"

"सारा गांव इस बात को अच्छी तरह जानता है। बिरादरी इसे अच्छी नज़रों से नहीं देखती। गांव के बाहिर रोड़ी नाले पर इसने अपना मकान बना रक्खा है। इसके खाविन्द ने इसे छोड़ रक्खा है और अब यहां अपनी लड़की चंती के साथ रहती है। जियालाल इसके बड़े भाई का नाम है। वह इन दोनों मां-बेटियों की रखवाली करता है नहीं तो अगर बिरादरी का बस चले तो नंगा करके निकलवा दे। यह ब्राह्मण लोग बड़े ज़ालिम होते हैं, मगर सच तो यह है कि यह भी बड़ी दिलवाली औरत है। क्या मजाल जो किसी के सामने दब के रहे। इसके खाविन्द ने इसे प्रायश्चित करने को कहा था लेकिन यह न मानी। यहां भी बिरादरी कहती है कि प्रायश्चित करो और अपनी लड़की को पंडित सरूपकिशन के लड़के दुर्गादास से ब्याह दो, मगर यह औरत है कि न प्रायश्चित करती है न अपनी लड़की का हाथ पंडित सरूपकिशन के लड़के के हाथ देने पर राजी होती है। गांव के बाहिर अपने भाई के साथ इसकी अलग दुकान है। वहां खुद दुकान पर बैठती है और सब ग्राहकों से बड़ी चतुराई से निबटती है और देखिये ना! यहां की बिरादरी भी नाराज़ है तो क्या, इसने पलड़ा बराबर रखने के लिये यहां के सब सरकारी अफ़सरों से बना रक्खी है। देखिये आपके घर में किस तरह आती जाती है। मौसी बनी हुई है, चुड़ैल कहीं की, कुटनी! कैसे हर वक्त लतर-लतर बातें करती है। पहिले तहसीलदार के घर में भी इसी तरह बूआ-बहिन बनी हुई थी। दूसरे अफ़सरों के यहां भी बेरोक-टोक आती जाती है। दोपट्टा देखिये किस तरह संवार कर ओढ़ती है, एक पल्लू टखनों तक आता है। किस बांकेपन से मटक-मटक कर चलती है, ममोले की तरह। मुझे इसकी चाल ज़रा नहीं भाती। आखिर औरत को थोड़ी बहुत तो शरम चाहिये लेकिन इसने तो बिलकुल ही लाज गंवा दी है।

उसने सैयदां की नारी-ईर्षा की उपेक्षा करते हुए कहा "लेकिन यह इन ब्राह्मणों से मेल-मिलाप क्यों नहीं कर लेती। आखिर इसे इस

गांव में रहना है इन्हीं लोगों के साथ। अफसर लोग तो चलती फिरती छाया हैं। आज यहां, कल वहां और फिर सरकारी ओहदेदारों का क्या ठिकाना? प्रायश्चित कर ले, हर्ज ही क्या है?"

"प्रायश्चित कैसे करे?" सैयदां ने और निकट सरक कर कहा "असल में बात यह है कि अब भी इसका अमजद हुसैन से सम्बन्ध है। वह चाहे इसकी इतनी परवाह न करता हो लेकिन यह उस पर जान देती है। वह अब भी इसके घर आता जाता है। यह उसकी हर तरह खातिर करती है। अगर उसे रुपये-पैसे की जरूरत हो तो भी इनकार नहीं करती। अमजद हुसैन विवाहित है। सुना है उसका लड़का उधर आपके लाहौर में पढ़ता है। यह उस लड़के के लिये भी खर्च देती है। मालदार औरत है........हां भ्रां! दुकान बड़ी अच्छी तरह चलाती है। बड़े-बड़े चतुर महाजनों के कान काटती है। बल्कि मेरे विचार में तो इसके भाई जियालाल की दुकान भी इतनी अच्छी न चलती होगी। ग्राहकों को मीठी-मीठी बातों से लुभा लेती है।

श्याम ने कहा "प्रायश्चित करे—यहां कौन पूछता है, और बंती की शादी भी पंडित सरूपकिशन के लड़के से कर दे। बस फिर चैन ही चैन है।"

सैयदां ने इसकी हां में हां मिलाते हुए कहा—"बाबूजी, यों देखा जाये तो इसमें हर्ज ही क्या है। दुनिया में ऐसा ही होता है। अब इस पंडित सरूपकिशन ही को लो, मैंने अपने जीवन में ऐसा कमीना आदमी कभी नहीं देखा। यों तो जब देखो माथे पर तिलक लगाए रहता है। सफेद अचकन, सफेद साफा........ओठों पर गंभीर मुस्कराहट, हमेशा बगुला भगत नजर आता है लेकिन बाबूजी क्या बताऊं—बड़ा बदमाश है, सैयदां सब कुछ जानती है, इस गांव के बच्चे-बच्चे की रग से वाकिफ है। क्या आप जानते हैं कि पंडितजी बंती का गौना क्यों मांगते हैं, इसलिये कि और कोई इनके लड़के दुर्गादास को

लड़की नहीं देता। यद्यपि यहां ब्राह्मणों की बिरादरी के सरदार हैं, लेकिन और कोई मंगनी नहीं आती। इनके लड़के से सभी कन्नी काटते हैं। आपने दुर्गादास को देखा है—दायीं आंख से काना है और लंगड़ा कर घिसटता हुआ चलता है। बड़ी अजीब शकल है उसकी।"

यह कह कर सैयदां खिलखिला कर हंस पड़ी, फिर सहसा उसने अपने ओठों पर हाथ रख कर अपनी हंसी को रोक लिया और मुस्कराते हुए बोली—"यों ही आपका इतना समय नष्ट किया है और मुझे भी अभी यह सारा झुंड ठीक करना है।"

और वह तेज़-तेज़ हाथों से दरांती चलाने लगी।

: ६ :

जुलाई के अन्तिम दिनों में जब घाटियों की लम्बी-लम्बी घास में नरकंडे निकलने लगे, हरी नाशपातियों में मीठा रस उतरने लगा और सेवों पर लालिमा आने लगी—उसे नायब तहसीलदार ने शिकार पर आमन्त्रित किया। यद्यपि बन्दूक वह अच्छी तरह चला लेता था, परन्तु शिकार में उसे विशेष मज़ा न आता था और नाही किसी वृक्ष की ऊंची मचान पर बैठकर जंगल के निहत्थे पशुओं को गोली से घायल करने को वह मानवी वीरता की पराकाष्ठा मानता था। परन्तु नायब तहसीलदार अलीजू जहां एक सुशिक्षित और भावुक व्यक्ति था वहां एक निपुण शिकारी भी था और दस-पन्द्रह दिन के बाद शिकार पर जाना उसका नियम था। इस बार श्याम ने इसलिये निमंत्रण स्वीकार कर लिया कि शिकारगाह मान्दर से बहुत निकट थी। कोई तीन-चार मील की दूरी पर सवाई का घना जंगल था जहां तीतर, लूमड़, सूअर और रीछ बहुत मिलते थे। उसने सोचा, चलो पिकनिक ही रहेगी। फिर नायब तहसीलदार अलीजू उसे पसंद भी था। प्रायः उससे साहित्य और दर्शन सम्बन्धी रोचक बहसें हुआ करती थीं—समय आसानी से कट जायगा।

वह रात उन्होंने सवाई के जंगल में व्यतीत की। एक छोटे से तल्ले पर खेमा लगाया और उसके चारों ओर एक घेरे के आकार में आग सुलगा दी। आग के निकट चौकीदार भी बिठा दिये ताकि खटका होने पर तुरन्त सूचना दे दें। जंगल के पशु आग से बहुत डरते हैं इसलिए शिकारी रात के समय अपने निकट आग सुलगा कर सोते हैं। यदि जंगल अधिक भयानक हो तो वहां आग का एक घेरा काफी

नहीं होता, वरन् खेमे के गिर्द आग के दो-तीन घेरे बना दिये जाते हैं, क्योंकि प्रायः ऐसा देखा गया है कि शेर या चीते आग के एक घेरे को पार करके शिकारी को स्वयं शिकार बना लेते हैं। लेकिन यह खवाई का जंगल इतना भयानक न समझा जाता था। शायद इसी लिये यहां आग का का एक ही घेरा काफी समझा गया।

नायब तहसीलदार अलीजू एक दिलचस्प व्यक्ति था, दर्मियाना कद, भारी-भरकम शरीर जो मदिरा सेवन से और भी भारी होता जा रहा था। सांवला रंग और चग्गी दाढ़ी। पांचों वक्त नमाज किया करता था। निचले जबड़े में बाईं ओर ओठों के कोने के निकट एक दांत टूटा हुआ था और जब अनजाने वह जोर से सांस खींचता तो उस टूटे हुए दांत वाले स्थान से एक विचित्र सीटी की-सी आवाज़ उत्पन्न होती। दर्शन और साहित्य में भी काफ़ी पहुँच थी। हकीमी का भी शौक था।

"लेकिन आप हकीम कब से बने?" श्याम ने खेमे के पर्दे को रस्सी से बांधते हुए पूछा।

वे दोनों अपने-अपने बिस्तर पर लेटे थे। अलीजू अपने टूटे हुए दांत से सीटी बजाते हुए बोला "हूँ।"

मैं ने कहा "आप हकीम कब से बने!"

"बात असल में यह है श्याम साहब कि मैं पुराने विचारों का आदमी हूं। पुराने ज़माने में आपको मालूम है कि हकीमी, दर्शन और साहित्य एक साथ ही पढ़ाए जाते थे। असल में हकीमी, दर्शन और साहित्य एक ही विद्या समझी जाती है। यह तकसीम तो अंग्रेजों के वक्त की है वरना पहले एक हकीम कवि भी होता था और दार्शनिक भी। श्याम साहब, यह विद्या की बेहूदा तक़सीम जो आप आजकल देख रहे हैं, पश्चिमी सभ्यता ही का एक दोष है। जिन्दगी बदतर होती जा रही है......"

"यों कहिये कि ज़िन्दगी बेहतर होती जा रही है। इस विद्या में अब इतनी वृद्धि हो चुकी है कि हमें इसके तीन भाग करने पड़े हैं, और अब यह तीनों विद्याएं साहित्य, दर्शन और हकीमी इतने विस्तृत हो गये हैं कि किसी एक का अध्ययन भी बरसों का काम है, इससे कम नहीं। इसे मनुष्य की उन्नति समझिये"—श्याम ने उत्तर दिया।

"मनुष्य की उन्नति नहीं, मैं तो इसे बेढंगेपन की उन्नति समझता हूँ। एक हकीम उस वक्त तक ठीक हकीम नहीं हो सकता जब तक वह थोड़ा बहुत साहित्यिक और दार्शनिक न हो, और इसे ही मैं एक अच्छे साहित्यिक और दार्शनिक के लिये जरूरी समझता हूँ। उसे विद्या के बाकी के इन दो पहलुओं का भी ज्ञान होना चाहिये वरना उस का अध्ययन और विश्लेषण अधूरा रह जायेगा। इसीलिये तो मैं कहता हूँ कि ज़िन्दगी अब बदतर होती जा रही है। अब इस शिकार ही की बात को लीजिये। किसी ज़माने में, जब यह इलाका जागीर था। मेरा मतलब है कि जब यह इलाका अभी बाकायदा रियासत न बना था, उस वक्त आप शिकार का मज़ा देखते। अब देखिये, हमारे पास ले-दे के यही दस-बारह आदमी हैं। इन दस आदमियों से भला शिकार में क्या खाक मज़ा आ सकता है। शिकार का मज़ा तो जब है कि चार-पांच सौ आदमी साथ हों, लाठियां या बन्दूकें हाथों में लिये जंगल का पत्ता-पत्ता छान मारते हैं। आवाज़ें निकाले एक तरफ़ से शुरू होते हैं बल्कि एक धनुष की शक्ल में जंगल के एक छोर से शिकारियों के मचान की ओर बढ़ते चले आते हैं। जंगली जानवर इस धनुष जैसे आकार को बढ़ता देख, भयभीत होकर इनके आगे भागने लगते हैं और सीधे वहीं आ जाते हैं जहां उन्हें लाना होता है, यानी शिकारी के मचान की तरफ़। बस फिर वह बन्दूकें चलती हैं दज-दज-दज कि सारा जंगल गूंज उठता है। सूअर चीखते हैं, घायल चीते गुर्राते हैं, रीछ मरते-मरते झाड़ियों से उलझ जाते हैं। उनके छोटे-छोटे बच्चे उस आकस्मिक आपत्ति से पनाह मांगते हुए अपनी मुरदा मांओं के

थनों को सूंघते हैं और झाड़ियों में छुपे फिरते हैं और बेहद हैरान होते हैं। एक बार में बीस-तीस जानवर शिकार हो जाते हैं—उस वक्त मजा था शिकार का। अब क्या है, दस बारह आदमी मुर्दादिली से काम करते हैं। कहीं मचान गलत बंधी है, तो कहीं शिकार का निशान तक नहीं। शिकार है तो हांकते इतना कम हैं कि कोई सड़ा-भुसा गीदड़ ही काबू में आता है। भला गीदड़ या खरगोश का शिकार भी कोई शिकार है। बात असल में यह है श्याम साहब कि अब शिकार शिकार नहीं रहा एक नीरस-सा मज़ाक रह गया है"—और अलीजू के मुंह से फिर सीटी की ध्वणि निकलने लगी।

"जागीरदार के वक्त में ही लोगों से मुफ्त काम लिया जाता होगा?" श्याम ने पूछा।

"हां पुलिस वाले गांव के गांव बांध लाते थे। जो सामने आता लाठी से धकेल लिया जाता। सैंकड़ों आदमी काम में जुटे हुए हैं, जागीरदार साहब के लिये मजबूत मचाने बांधी जा रही हैं, उनके कर्मचारियों के लिये दूध, मक्खन, मुर्गियां, अण्डे, औरतें, शराब हर चीज़ ज्यादा से ज़्यादा जुटाई जा रही है, तब जाकर कहीं शिकार होता था।

"लेकिन जागीरदार तो अब भी मौजूद हैं।"

"हां! लेकिन यह तो मैं बन्दोबस्त से पहले की बात कहता हूं। रियासत बन जाने के बाद वह बात नहीं रही। और फिर अब लोग भी वह लोग नहीं रहे। प्रजा अपने आपको प्रजा नहीं समझती।"

श्याम ने कहा—"इसे भी मनुष्य की उन्नति समझिये, जन-साधारण में नैतिक जागृति आ चुकी है।"

नैतिक जागृति! अजी साहब यह सब नई-नई परिभाषायें हैं और क्या? मैं खूब समझता हूं इस नैतिक जागरण को। जहां पहले

जागीरदार लूटते थे वहां अब नेता लूटते हैं। जनता तो एक अस्त-व्यस्त बिखरी-बिखरी-सी शक्ति है, इसे सम्भालना, इसे इस्तेमाल करना गिनती के बुद्धिमान लोगों का काम रहा है। शुरू ही से कुछ एक लोग बहुत से लोगों पर शासन करते आये हैं। चाहे वह शासन सामन्तवादी हो या जनवादी या तानाशाही। श्याम साहब, बात असल में यह है कि यह सब परिभाषायें जनता को धोखा देने, उन्हें अपने काबू में लाने के लिए गढ़ी गई हैं। बात असल में यह है कि हाकिमों ने हकूमत करना छोड़ दिया है वरना हालात कभी ऐसे न होते। आज से कुछ दिन पहले भी तो यही लोग दम न मार पाते थे और यह शिकार भी तो उन लोगों को काबू में रखने का एक मन्त्र था। सैंकड़ों आदमी इस काम पर लाये जाते थे। इन्हें बेंत और डण्डे की सज़ा दी जाती थी। उनकी औरतों को चन्द रातों के लिये घर से बेघर किया जाता था, तब कहीं उन लोगों के दिलों में हकूमत का रोब बैठता था और वह खुशी-खुशी लगान, बेगार, चुंगी, जंगल का महसूल, टैक्स वगैरह देते थे। और अब देखिये, हाकिमों ने शिकार खेलना भी छोड़ दिया है। अब लोग लगान, मालिया देने से इनकार करते फिरते हैं। यह टैक्स माफ कर दो, वह महसूल उड़ा दो। भला इस तरह भी कभी हकूमत हुई है? हमारा क्या है, दो-चार साल रह गये हैं फिर पेंशन पाकर आराम से घर चले जायेंगे, मगर बात असल में यह है श्याम साहब कि अब इस काम में जी नहीं लगता।"

अलीजू ने दो-एक जमाइयां लीं और फिर करवट बदल कर खुर्राटे लेने लगा, परन्तु श्याम की आंखों में नींद न थी। अलीजू की बातों से क्रूरता की बू आती थी। बातें कड़वी थीं परन्तु उनमें सच्चाई अवश्य थी। शासन चाहे जैसा भी हो हिंसा और अत्याचार के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता चाहे वह शासन जनवादी हो अथवा समाजवादी। अत्याचार और हिंसा इसका मूल है परन्तु

या शासन का होना आवश्यक है ? क्या मानव जीवन शासन के बिना व्यतीत नहीं हो सकता ? क्या अभी तक मनुष्य को भय दिलाये बिना उससे कोई अच्छा काम नहीं लिया जा सकता ?—उसने सोचा, परन्तु शासन न हो तो फिर क्या हो—शायद मानवसमाज एक जंगल बन जायेगा, लेकिन मानवसमाज क्या अब भी एक जंगल नहीं है ? सभ्यता के कुछ ऊपरी आडम्बरों की छाया में क्या समाज में अब भी जंगल का-सा कानून नहीं बरता जाता ?

लेकिन जंगल और मानवसमाज में कहीं अन्तर अवश्य था। ज्ञान में वृद्धि हुई थी। मनुष्य अन्य पशुओं की अपेक्षा अधिक संगठित और चतुर हो गया था। जन-संख्या भी बढ़ गई थी। विज्ञान ने भी आश्चर्य-जनक उन्नति की थी—लेकिन यह जंगल अभी तक जंगल ही है। मानव के गले में शासन का भयानक फन्दा है। रियासत का अत्याचार मनुष्यों की आत्मा पर एक असह्य बोझ-सा हो रहा है और उसे स्वतन्त्रता के आकाश में उड़ने से रोक रहा है। क्या कोई ऐसा शासन हो सकता है जो शासक न हो, जो हिंसा पर स्थापित न हो, जहां संसार के स्वतन्त्र मनुष्य स्वतन्त्रतापूर्वक एक दूसरे से स्वच्छन्द सहयोग कर सकें। शायद यह मानवजीवन की अंतिम सीढ़ी होगी। शायद इस आदर्श तक पहुंचने के लिये हमें समाजवादी पथ पर चलना होगा। परन्तु संसार में अभी अलीजू जैसे लोगों का शासन है। अच्छे लोग, सभ्य और शिक्षित लोग जो साहित्यिक भी होते हैं, पांच वक्त नमाज़ भी किया करते हैं, जिनकी बातें रोचक होती हैं, जो मित्रों में भी सर्वप्रिय होते हैं, परन्तु....परन्तु....वह खेमे का पर्दा खोल कर बाहिर निकल आया क्योंकि खेमे के अन्दर उसे अपना दम घुटता हुआ-सा मालूम हो रहा था। वह एक आरामकुरसी पर बैठ गया। सामने की कुरसी पर नायब तहसीलदार का शिकारी कुत्ता ऊंघ रहा था जो आहट पाते ही चौंका, गुर्राया और फिर उसे पहचान कर अपने कान ढीले छोड़ दिये और पूर्ववत् ऊंघने लगा।

आग के घेरे से हल्का-हल्का धुआं उठ रहा था। कभी-कभी ज्वाला की मानों जिह्वाएं ऊपर की ओर लपक उठतीं। दो चौकीदार बन्दूकें हाथों में लिये पहरा दे रहे थे। घेरे से परे अन्धकारमय जंगल खड़ा था—अपने समस्त भेद और रहस्य छुपाये हुए—मूक डरावना, एक अन्धेरी दीवार की तरह जिसमें कहीं भी कोई छिद्र दिखाई न देता हो, जिसमें कहीं से प्रकाश की कोई किरण भीतर न आ सकती हो। यह जंगल जैसे उस आग के घेरे को निगलने के लिये तैयार खड़ा था। सैंकड़ों वर्षों से यह जंगल यहां खड़ा था और ऐसे आग के कई घेरे हड़प कर चुका था। यहां तक कि आग बुझ गई थी और धरती पर उसी तरह हरियाली उग आई थी। हरियाली और कटीली झाड़ियां, जिनकी ओट में किसी चीते की हरी आंखें भयानक रूप से चमकती हों।

यह जङ्गल मूक था, यह आकाश मूक था—तारों से रहित काला आकाश मानो जङ्गल का बड़ा भाई। उस रहस्यमयी, भयावह निस्तब्धता के पास भला श्याम के प्रश्न का क्या उत्तर था!

प्रकृति के ये दोनों प्रथम पुत्र अपनी बुद्धि के अनुसार एक तुच्छ मनुष्य के प्रश्न का क्या उत्तर देते? हिंसा के बिना शासन? हिंसा के बिना शासन? क्या कोई शक्ति इस काले जङ्गल और काले आकाश की छाती चीरकर इस प्रश्न का उत्तर न ला सकती थी?

वह यही सोचता सोचता-सो गया और जब उठा तो प्रभात हो चुकी थी। अन्धकार छिट रहा था, हवा में ताज़गी थी, आग का घेरा बुझकर राख हो चुका था। चौकीदार इसी घेरे के निकट थक कर सो गये थे और दूर ताड़ के दो छोटे-छोटे वृक्षों के बीच एक रीछनी अपने छोटे-छोटे बच्चों के साथ खेल रही थी।

: ७ :

"आज आप बहुत सवेरे जाग गये ?" अलीजू ने पूछा।

"जी हां, कुछ ऐसी ही बात है, रात नींद भी अच्छी तरह नहीं आई।"

"शायद नई जगह सोने की वजह से"—नायब तहसीलदार ने चिंता प्रकट करते हुए कहा "वैसे आपकी तबियत तो ठीक है ना ? मेरे ख्याल में अगर आप एक जोशांदा पी लें तो...... यहीं जंगल में से जड़ी-बूटियां मिल जायेंगी। बनफ्शे के फूल और पत्तियां, बीज, जंगली सौंफ, पोदीना और सुंबलू की जड़ें। बस एक बार पीने ही से आप की तबीयत ठीक हो जायेगी।"

श्याम चुप रहा। सोचने लगा, अब जोशांदा तो पीना ही पड़ेगा। इनकार करना व्यर्थ है।

"ओ हरी, हरी, राधे, मोहनसिंह, नल्ले ! कहां मर गये सब ?"

मोहनसिंह दौड़ता हुआ आया और हाथ जोड़ कर कहने लगा "क्या हुक्म है हजूर ?"

"देखना मोहन" अलीजू ने अत्यन्त चिंता भरे स्वर में कहा—"आपके लिये एक जोशांदा तैयार करना है। यहीं जंगल ही में सब चीज़ें मिल जायेंगी। बनफ्शे के फूल और पत्तियां, बीज और सुम्बल की जड़ें, जंगली पोदीना और सौंफ—सौंफ तो शायद इस जंगल में मुश्किल ही से मिलेगी। तो हो, बाक़ी बूटियां तो ज़रूर मिल जायेंगी। सावधान, अभी दो मिनट में यह काम हो जाये।"

"अभी लीजिये सरकार।"

वह चला गया तो श्याम ने अलीजू से कहा—"बड़ा खूबसूरत जवान है।"

अलीजू बोला, "राजपूत है, अपने शरीर का बड़ा ध्यान रखता है। शिकार का बड़ा शौकीन है। मान्दर में इसकी अपनी ज़मीन भी है और एक पनचक्की भी। मैं जब भी शिकार के लिये आता हूँ यह ज़रूर मेरे साथ आता है। बहुत शील स्वभाव का लड़का है। अभिमान और अकड़ तो नाम को भी नहीं।"

श्याम ने जोशांदा पिया, अलीजू ने चाय। इसके बाद गल्ले शिकारी ने आकर कहा "हज़ूर, मचान पर तशरीफ़ ले चलिये, चाढ़ शुरू की जाये।"

नायब तहसीलदार साहब बोले, "भई, चाढ़ के लिये हांकिये बहुत कम हैं। अगर आप और मोहनसिंह मदान और पीर के गांव से कुछ आदमी और ले आयें तो ज़रा चाढ़ का मज़ा रहेगा वरना यह मचान तो शायद यूं ही बंधी रहेगी।" फिर वह श्याम से कहने लगा, "आपने तो अभी तक मदान और पीर के गांव न देखे होंगे। इस इलाके के सबसे सुन्दर गांव वही हैं और पीर का स्थान तो यों भी एक ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। अगस्त के मध्य में वहां एक मेला जुटता है। कहा जाता है कि वहां पांडवों के पुराने महल हैं और साथ ही बाबा पीर की कबर भी। इसलिये यह स्थान हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के लिये बहुत पवित्र माना जाता है। अगस्त में यहां जो मेला जुटता है, उसे लोग दूर-दूर से देखने आते हैं। दो-तीन दिन बड़ी रौनक रहती है।"

श्याम ने कहा, "अजीब बात है कि एक ही स्थान धार्मिक रूप से हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के लिये आदरणीय हो।"

अलीजू एक दीर्घ श्वास लेकर बोला—"श्याम साहब, बात असल में यह है कि हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्बंध इन्हीं पिछले बीस बरसों में बिगड़े हैं वरन। इससे पहिले दांत काटी रोटी सांझी थी। रही यह बात कि एक ही स्थान धार्मिक रूप से हिन्दुओं और मुसलमानों के लिये कैसे आदरणीय हो सकता है तो इसकी एक नहीं सैकड़ों मिसालें हैं। हमारे गांवों में अक्सर और शहरों में भी कहीं-कहीं ऐसे स्थान मिलते हैं। असल में इनमें हमारे बुजुर्गों ने बड़ी बुद्धि से काम लिया है। हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे की सभ्यता और संस्कृति समझने के लिये यह स्थान बहुत महत्व रखते हैं। यहां पीर की कबर और पांडवों के महल साथ-साथ हैं। अनन्तनाग में मुसलमानों की इबादतगाह और हिन्दुओं का पवित्र तालाब एक ही जगह पर हैं। दोनों अपने-अपने ढंग से खुदा की इबादत करते हुए भी एक विशेष अपनापन और सान्निध्य अनुभव करते थे। बहुत से गांवों में मन्दिर, धर्मशालायें और मस्जिदें साथ-साथ होती थीं। उन दिनों आरती और बाजे का झगड़ा न था, क्योंकि दिलों में नफरत न थी और अब झगड़ा उन्हीं जगहों पर ज्यादा होता है जहां मन्दिर और मसजिद साथ-साथ हैं। खुदा का शुक्र है कि यह बीमारी हमारे गांवों में अभी नहीं पहुँची। आप पीर के मेले पर जरूर चलियेगा। यह मेला देखकर आपका जी खुश हो जायेगा।"

"वह गांव यहां से कितनी दूर है?"

"बहुत दूर नहीं। इस चढ़ाई के जंगल से एक रास्ता मदान के गांव को जाता है, चढ़ाई का रास्ता है, बस यहां से कोई दो-अढ़ाई मील होगा। एक और रास्ता यहां से नीचे उतर कर उस बावली से जा मिलता है जो आपने मन्दिर को आते हुए रास्ते में देखी होगी। वहां से पीर का गांव तीन-चार मील के करीब होगा।"

श्याम कहने लगा, "मैं अभी इन लोगों के साथ जाकर वह गांव [illegible] आता हूँ, [illegible] हो जायेगी।"

"बहुत अच्छा," अलीज़ बोला "लेकिन बन्दूक साथ लेते आइये।"

वह गल्ले और मोहनसिंह के साथ जंगल की टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी पर चल पड़ा। आगे-आगे गल्ले शिकारी था और पीछे-पीछे मोहनसिंह और मध्य में वह स्वयं।

गल्ला एक निपुण शिकारी था। वह वृद्ध था लेकिन शरीर अखरोट की लकड़ी की तरह मजबूत और हृष्ट-पुष्ट था। वह जंगल के चप्पे-चप्पे से परिचित था। उसकी आँखें चील की आँखों-सी थीं और नाक बाज़ की चोंच की तरह मुड़ी हुई थी और गाल ताम्र की तरह चमकते थे। ऐसा स्वस्थ वृद्ध श्याम ने इससे पहिले शायद कम ही देखा था।

"गल्ले, तुम्हारी उमर क्या होगी?"

"पता नहीं साहब, हिसाब नहीं जानता, कोई तीन बीस के लगभग होगी।"

"कब से शिकार खेलना शुरू किया?"

"जब से होश सम्भाला है साहब, शुरू ही से इस काम का शौक था। इस जंगल ने अपने नाखूनों से बहुत से घाव भी लगाये हैं, लेकिन साहब यह शिकार का चसका ऐसा है कि छूटता ही नहीं।"

मोहनसिंह बोला, "एक घाव तो गल्ले के दिल में भी है और अभी तक शायद उसी तरह मौजूद है।" फिर वह श्याम से संबोधित होकर बोला "साहब गल्ले की बीबी को इसी जंगल ने निगल लिया था। एक बार वह बेचारी जंगल में लकड़ियां चुनने गई कि एक चीते ने उसे आ दबोचा। गल्ले को अपनी नौजवान बीबी से बड़ी मुहब्बत थी......"

गल्ले ने आह भर कर कहा "उस वक्त की क्या बात करते हो मोहन, जाने दो।"

"तुमने फिर शादी नहीं की ?" श्याम ने पूछा।

"पहली बार जो शादी की थी तो क्या बना, दोबारा शादी करके क्या बनता।" गल्ले ने धीरे से कहा—"अब तो इसी जंगल से शादी रचाई है।"

एकाएक पास की झाड़ी से दो तीतर उड़े। गल्ले ने उसी वक्त बन्दूक तानी और धायें-धायें। और दूसरे ही क्षण दोनों पक्षी फड़फड़ाते हुए कुछ अन्तर पर झाड़ियों में जा गिरे। वे तीनों उन झाड़ियों की ओर लपके। एक के पंख टूट गये थे और छर्रे पेट को छेद कर पार हो गये थे और दूसरे की गरदन से अभी गरम-गरम लहू बह रहा था--- एक नर था दूसरा मादा।

"बेचारा जोड़ा"—श्याम ने कहा।

गल्ले ने श्याम के स्वर में छुपी वेदना को अनुभव किया, बोला, "इस जंगल ने कब मुझ पर तरस खाया था। साहब, उस वक्त मेरी उमर बाईस साल की थी। नूरेनशां को मैं धराटकोट से भगाकर लाया था। जंगलों में छुपते-छुपते हम यहां अपने इलाके में आये थे। कभी किसी किसान के घर में रह जाते, कभी जंगलों ही में बसेरा कर लेते। जो मिलता खा-पी लेते। कभी मक्का की रोटी और साग मिलता तो कभी जंगली फल और पौधों की जड़ें। जब नूरेनशां चलते-चलते थक

दोनों एक दूसरे को प्यार करते हों तो जंगल से ज़्यादा सुन्दर जगह और कोई नहीं होती। मुझे वे दिन अब भी उसी तरह याद हैं—जैसे कल की बात हो। हम जंगल में धूनी रमाते और ढोरों की आग में चने जलाकर उनमें से होलें निकाल-निकाल कर खाते। मैं उसके मुंह में होलें डालता, वह मेरे मुंह में। और फिर हम एक दूसरे के मुंह की तरफ देख कर मुस्करा देते। वह मेरी नज़रों का भेद पाकर चुप हो जाती और लज्जा से आंखें झुका लेती थी।"

"भट्टी की आग जलती रहती और वह चीड़ के नुकीले पत्तों के बिस्तर पर सो जाती और सारे जंगल में सन्नाटा छा जाता। केवल लकड़ियों के चटखने की आवाज़ आती, कहीं दूर कोई उल्लू बोल उठता या कोई गीदड़ भूख से बेताब होकर चिल्लाता.......मैं रातभर पहरा दिया करता। सुबह होते ही उसे जगा देता और फिर मैं उसी बिस्तर पर सो जाता और वह बन्दूक लेकर पहरा देती, यहां तक कि सूरज सिर पर आ जाता। और हम फिर उठ कर चल देते। साहब, जी चाहता है कि किसी तरह वह दिन फिर लौट आयें, लेकिन वक्त तो तीतर की उड़ान है। एक बार हाथ से निकल गया सो निकल गया......"

"........एक बरस भर हम अपने घर बड़ी हंसी-खुशी के साथ रहे, फिर एक दिन जो वह जंगल में लकड़ियां चुनने गई तो कभी लौट कर न आई। मैं जंगल में उसे ढूंढने निकला लेकिन बेकार। दूसरे दिन एक झाड़ी के नीचे मुझे उसकी हड्डियां मिलीं। एक आदम-खोर चीते ने खा लिया था—मेरी नूरनेशां को! मेरे हाथों में उसकी खोपड़ी थी और उसके सुनहरी बाल जो कभी मेरी आंखों पर छा जाते थे......"

गल्ले ने खांस कर अपना गला साफ किया और नाक भी, फिर चुपचाप चढ़ाई चढ़ने लगा!

मोहनसिंह बोला—"गल्ले ने इस इलाके में शायद ही किसी को ज़िन्दा छोड़ा हो। जहां इसे किसी चीते की बू मिली है झट पहुँच जाता है। दूसरे इलाके के लोग भी चीते के शिकार के गल्ले को दूर-दूर से बुलवाते हैं, और यहां तो यह बात मशहूर कि जिस जंगल में गल्ला हो उसमें चीता नहीं रह सकता। इसकी कर फौरन भाग जाता है।"

गल्ला फिर बोला—"लेकिन साहब, दिल में एक ही अरमान है। तक बीसियों चीतों को अपनी गोली का निशाना बना चुका हूं। बार तो उनसे प्रत्यक्ष लड़ाई भी हुई है, लेकिन साहब, न जाने कौनसा चीता था—? जी में हर वक्त यही तड़प रहती है, यह मान हर वक्त दिल में कांटे की तरह चुभता रहता है।"

श्याम बोला—"हां, हर चीते के शिकार पर तुम्हारा ज़ख्म फिर हो जाता होगा।

"बस साहब यही बात है।"

चढ़ाई समाप्त हो गई। अब सामने भूमि का एक हराभरा टुकड़ा। यहाँ से दो पगडंडियां निकलती थीं। एक उत्तर की ओर दूसरी पश्चिम की ओर। यहां जंगली फलों का कुंड था और ह कोने में एक छोटा सा चश्मा। इस स्थान को देखकर श्याम टांगों ने उसे जवाब दे दिया। उसने गल्ले और मोहनसिंह से कहा, ई, तुम लोग अब गांव से जाकर लोगों को ले आओ। मुझसे तो नहीं चला जाता। मैं तुम्हारी यहीं प्रतीक्षा करूंगा।"

जब वे दोनों चले गये तो श्याम ने अपने जूतों के तसमें खोल दिये। फिर जूते उतार कर अपने पांव मोजों से निकाल लिये और उन्हें हरी और ठंडी घास पर रख दिया। वह अपने पांव उस ठंडी, मुलायम मखमल जैसी घास पर फेरने लगा। उसके अंग-अंग में यह सुखद शीतल कोमलता रचती गयी, यहां तक कि सफर की थकान सांप की केंचली की तरह उसके शरीर से उतर गई और वह अपने आपको बिल्कुल स्वस्थ अनुभव करने लगा। जंगल की गहन निस्तब्धता में केवल झरने की 'तरल-रल, तरल-रल' सुनाई देती थी परन्तु यह ध्वनि भी इतनी मद्धम, मीठी और अनवरत थी कि ध्वनि होते हुए भी पूर्ण निस्तब्धता थी। केलों के झुंड में हरे केलों का पोर लटक रहा था और उसके आखिर में नीले पत्तों का एक झूमर कांप रहा था। उसे ऐसा लगा मानो वह अपने सम्मुख झरने की युवती को नृत्य करते हुए देख रहा हो, जिसके माथे पर श्यामल झूमर कांप रहा है और जिसके हरे लहंगे पर चश्मे के चान्दी-जैसे श्वेत जल के तार गुंथे हुए हैं और यह 'तरल-रल, तरल-रल' की ध्वनि उसी सुन्दरी के पायल की मनोरम झंकार है........देर तक वह प्रकृति के इस अनुपम नृत्य को आंखें बन्द किये देखता रहा। फिर उसने आंखें खोलीं। वही गहरी निस्तब्धता थी, वही झरना, वही पगडंडियां........निकट ही एक चट्टान के साथ उसकी बन्दूक लगी खड़ी थी। हां, वह मायावी नृत्य कहीं लुप्त हो गया था। उसकी प्यास चमक उठी, वह झरने के किनारे लेट गया और अपने ओठ झरने के स्तर से मिला दिये, मानो वह झरने की सुन्दरी के ओठ चूमना चाहता हो। हां यह एक दीर्घ चुम्बन ही तो था। उसी तरह मीठा, सुखकर, उल्लासयुक्त! उस चुम्बन ने उसकी प्यास बुझा दी और वह उठकर बैठ गया, फिर उठकर खड़ा हो गया। अभी तक वे दोनों शिकारी न लौटे थे, न जाने कब तक लौटेंगे? एकाएक उसका जी घूमने को चाहा और उसके पांव आप ही आप निचली पगडंडी की ओर मुड़ गये।

यह मार्ग एक भयानक ढलान पर चक्कर काटता हुआ नीचे जाता था। कुछ समय तक वह घने जंगल में चलता गया। वृक्ष इतने घने थे कि कुछ ही गज से परे कुछ दिखाई न देता था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसके मन में किसी अज्ञात भय की आशंका जागृत हो उठती और उसकी गरदन के पिछले भाग पर च्यूंटियां सी रेंगने लगतीं और उसे आभास होता मानो उसके कान किसी विचित्र शब्द, किसी अज्ञात भयानक आवाज़ को सुनने के लिये खड़े हो रहे हैं। जैसे उसके पीछे-पीछे कोई हरी आंखोंवाला भयानक चीता दबे-पांव चला आ रहा है और वह एक दम पीछे मुड़कर देखता। परन्तु वहां कोई न था। आगे और पीछे दोनों ओर मार्ग निर्जन था। तो क्या यह केवल उसका भ्रममात्र ही था? नहीं—वह अब एक सभ्य मनुष्य न था वरन् जंगल ही का एक पशु, आज से हज़ारों वर्ष पूर्व जो कुछ वह वास्तव में था। उसके अंग-अंग में वही वहशी मानव पुनः जागरूक हो उठा था! यह जंगल ही का चमत्कार था। इसके साथ ही उसे यह भी ज्ञात हुआ कि शताब्दियों के परिश्रम से प्राप्त हुई उसकी सभ्यता का खोल कितना पतला था!

अब वृक्ष छिदरे होने लगे। फिर छिदरे होते-होते समाप्त हो गये। और अब मार्ग घास में से गुज़र रहा था। आगे चलकर यह मार्ग चक्कर काटता हुआ झाड़ियों के एक झुंड में गायब हो जाता था। फिर झाड़ियों के झुंड के नीचे से कुछ अन्तर पर उसे वही पुराना मार्ग दृष्टिगोचर हुआ, इस मार्ग से वह मन्दिर में आया था। उत्तर-पूरब में मन्दिर की नदी थी और उसके पार उसका घर। अब उसका जी वापिस किनारे पर जाने को न चाहा। उसने सोचा कि वह कुछ देर झाड़ियों के झुंड के नीचे घास पर आराम करेगा। और वहीं [illegible] मन्दिर के आने पर वह उसके साथ [illegible] कैसा [illegible] वापिस घर जा रहा है—

यह सोचकर वह तेज़-तेज़ कदमों से नीचे उतरने लगा लेकिन झाड़ियों के झुंड के निकट पहुंच कर वह ठिठक कर रह गया। नीचे बादलों से एक पुरुष और एक स्त्री की बातों की आवाज़ आ रही थी। दोनों आवाज़ें उसे परिचित सी प्रतीत हुईं। उसने धीरे से झांक कर देखा। पुरुष वही मोहनसिंह था और स्त्री वही लड़की थी जिससे पहली बार इधर आते हुए उसकी भेंट हुई थी।

लड़की कह रही थी, "मुझे इसकी चिंता नहीं कि दुनियां क्या कहती है। मेरी मां खुश होती है या नाराज़। मेरे लिये तुम ही सब कुछ हो। लेकिन याद रखना, यदि तुम झूठे निकले तो मैं अपने हाथों तुम्हारा गला घोंट दूंगी, मुझमें इतनी हिम्मत है।"

मोहनसिंह हंसकर कहने लगा, "जाने-बूझे अनजान बनती हो। सौ बार परख चुकी हो, जब जी चाहे फिर आज़मा लेना। मोहनसिंह राजपूत है, अपने वचन का सच्चा है। उसका प्रेम कोई कच्चा धागा नहीं।"

लड़की बोली, "शायद तुम यह समझते होगे कि मैं अछूत हूं, निर्धन हूं, गांव वालों ने हमें गांव से निकाल रक्खा है, इसलिये तुम मुझसे मीठी-मीठी बातें करके मुझे धोखा दे सकते हो—लेकिन मैं सच कहती हूं—मुझे देवी की सौगन्ध है, यदि कोई ऐसी-वैसी बात हो गई तो मैं तुम्हें और तुम्हारे गांव वालों को कच्चा खा जाऊंगी। समय आने दो, मैं स्वयं इन ब्राह्मणों के लिये काली माता बन जाऊंगी—इन्होंने समझ क्या रक्खा है?"

मोहनसिंह बोला—"तुम यों ही संदेह करती हो, गांव में किसी को इस बात का पता तक नहीं और तुम......"

श्याम खांसा, फिर उसने अपने कदमों से चलने की आवाज़ पैदा की ताकि उन लोगों को अपने आगमन से सूचित कर दे। उसने काफ़ी कुछ सुन लिया था, उसे इससे अधिक सुनने की आवश्यकता नहीं थी।

वही प्यार और मुहब्बत की घिसी हुई बातें—मैं यह करूंगा और तुम वह करोगी। राजपूत पुरुष, अछूत स्त्री, ब्राह्मणों का समाज—परिणाम स्पष्ट है। यह स्त्री एक कलंकित संतान को जन्म देगी और क्या !

मोहनसिंह उसे वहां देख कर हैरान रह गया। लड़की के नेत्र अब भी किसी अज्ञात क्रोध से चमक रहे थे।

श्याम कुछ इस स्वर में बोला मानो वह उन दोनों से क्षमा मांग रहा हो —"भाई, मैं यहां बैठे-बैठे उकता गया था। यों ही इस रास्ते से नीचे उतर आया। अब यहां तक आ गया हूँ तो वापिस जाने को जी नहीं चाहता। तुम नायब तहसीलदार साहब से कह देना, मेरी तरफ से क्षमा मांगना। मैं तो चलता हूं अब...."यह कहकर उसने अपना हाथ हिलाया और नदी की ओर जाने वाले मार्ग पर चल खड़ा हुआ।

मोहनसिंह और वह लड़की देर तक चुपचाप उसकी ओर देखते रहे जब तक वह आंखों से ओझल न हो गया। फिर लड़की बोली, "मेरे ख्याल में उसने सब कुछ सुन लिया है।"

मोहनसिंह अपनी बारीक मूछों पर ताव देता हुआ बोला, "सुन लिया है तो क्या ? मैं कब किसी से डरता हूँ। मैं राजपूत हूं। अपने वचन का सच्चा हूं और........"

लड़की तमक कर बोली, "बस बस ज़्यादा डींग न मारो, रहने दो अपनी राजपूती शान। इस राजपूती शान को भी देख लूंगी। अभी तो [illegible] कर लिये हो, जिस दिन बिरादरी में बात उठेगी उस दिन याद रखना।"

और श्याम चला जा रहा था और सोचता जा रहा था कि जाल-[illegible] की [illegible] के मेल से एक श्रेष्ठ जाति को उत्पन्न हो रही है। [illegible] चमार और ब्राह्मण के [illegible] और [illegible] है। ब्राह्मण का सौन्दर्य, कोमलता और

पवित्रता; चमार की मज़बूती, शोखी, शरारत और क्रोध। किस तरह नए जूते की तरह चुर्र-चुर्र करती है! और इस मोहनसिंह को तो देखो। वहां से नायब तहसीलदार ने किस काम से भेजा था और यहां हज़रत अपनी प्रेमिका से गप्पें लड़ा रहे हैं। फिर वह अपना मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने लगा—अच्छा जी, वास्तव में तुम स्वयं इस युवती और युवक को एक साथ देख कर जल-भुन गये हो। अब अचेतन रूप से तुम अपने आपको मोहनसिंह के स्थान पर बैठा हुआ देखना चाहते हो—क्यों है ना यही बात? और उसके मन का एक भाग, दूसरे भाग की क्षुद्रता पर मुस्कराने लगा!

: ८ :

जब वह घर पहुँचा तो उसे बहुत तेज़ भूख लग रही थी। बाहर नाशपाती की छांव में रवि और निम्मी खेल रहे थे। उसे देखते ही वे सहसा खुशी से चिल्ला उठे, "भाई जी, भाई जी, आपकी मंगनी आई है।"

"मंगनी?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"हां हां"—निम्मी खुशी से ताली बजाते हुए बोली "आपकी सगाई आई है!" और वे दोनों चिल्लाते हुए घर के भीतर भाग गये। वह उनके पीछे-पीछे प्रविष्ट हुआ। चकित था कि यह क्या माजरा है। भीतर आंगन में एक चौकी पर उसकी मां बैठी थी और दूसरे पर दादी। उसे देखकर दोनों के मुख खिल उठे और वे मुस्कराने लगीं। आखिर यह क्या माजरा है—वह जानना चाहता था, लेकिन रवि और निम्मी ने उसे अधिक सोचने का अवसर न दिया। उसे घसीटते हुए [illegible] स्वयं खिसकते हुए भीतर चले गए। कपड़ों वाले [illegible] में एक छोटा-सा बक्स धरा था जो शायद [illegible] की डाक से आया था।

उसने अनजान-सा बनकर निम्मी से पूछा "इसमें क्या है?"

"इसमें [illegible] की मंगनी है।"

रवि बोला, "इसमें सगाई बन्द है।"

"[illegible] मैं [illegible], वह [illegible] में बन्द है?" उसने [illegible] से पूछा।

यह प्रश्न उन दोनों बच्चों के लिए ज़रा टेढ़ा था। एकाएक उसे छाया के हंसने की आवज़ आई। उसने मुड़कर देखा। दरवाज़े की चौखट पर छाया और माता जी खड़ी थीं।

छाया बोली, "नहीं बेटा, इस बक्स में दुल्हन बन्द नहीं, मंगनी का शगुन है। दुल्हन एक और बक्स में आयेगी।"

श्याम की माता मुस्कराते हुए बोली, "एक साल के बाद डोली में बन्द होकर आयेगी।"

"अहा-हा" रवि और निम्मी ताली बजाकर नाचने लगे। "बीबी डोली में बन्द होकर आयेगी, एक साल के बाद—" और उसी तरह नाचते-नाचते कमरे से बाहर चले गये। श्याम ने कहा, "मां मुझे बहुत भूख लगी है।"

"शिकार से बहुत शीघ्र लौट आये ! शिकार किया ?"

"नहीं, मैं तो बहुत पहले ही चला आया। तबियत ठीक न थी।"

छाया बोली—"बधाई हो बेटा। बड़ी शानदार मंगनी आई है। पांच सौ रुपये नकद और एक चान्दी का थाल और—"

"माताजी को बधाई दीजिये, मैं तो बलि का बकरा हूँ।" उसने रूखे स्वर में कहा।

"नही बेटा, ऐसा नहीं कहते अच्छे बेटे !"

छाया बोली—"हंसते हैं बाबू साहब ! जब दुल्हन का मुंह देखेंगे तो—" वह खिलखिला कर हंसने लगी।

"मां मुझे खाना चाहिये," उसने तीखे स्वर में कहा, और खाने के कमरे में चला गया।

खाना खाते हुए उसने अपनी मां से पूछा "यह आपको क्या सूझी ?"

"बेटा! घर बहुत अच्छा है। उसके पिता दो सौ रुपये मासिक वेतन पाते हैं। सम्पन्न घराना है। परिवार बिल्कुल सभ्य है। लड़की मिडिल पास है। हारमोनियम बजाती है।"

हारमोनियम का नाम सुनते ही उसके मस्तिष्क में एक चित्र सा बनने लगा। उसने देखा कि एक आठवीं श्रेणी पास लड़की—जैसी कि एक आठवीं श्रेणी पास लड़की हो सकती है, एक हारमोनियम पर गरदन झुकाये अभ्यास कर रही है। सावन के नज़ारे हैं....लल-लल-ला, लल-लल-ला, लल-लल-ला—और ग्रास उसके मुंह से बाहर जा गिरा। वह खिलखिला कर हंसने लगा—हंसता गया, हंसता गया। हंसी के उस स्रोत ने कमरे के वातावरण में एक कम्पन उत्पन्न कर दिया।

"क्या हुआ, क्या हुआ?" उसकी मां ने हैरान होकर पूछा—"किस बात पर हंस रहे हो! भला इसमें हंसी की क्या बात है? ऐसे घराने कहीं नित मिला करते हैं। आजकल के लड़कों की तो बस बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई है—" वह तनिक क्रोध से बोली "लड़की तुम्हारी बूआ देख चुकी हैं। वह कहती हैं कि लड़कियों जैसी लड़की है। सुघड़, समझदार है। फैशनेबल भी है।"

उसने कठिनता से हंसी रोक कर कहा—"फैशनेबल से आपका क्या अभिप्राय है? शायद ऊंची एड़ी के जूते पहनती होगी। बालों में लम्बे-लम्बे क्लिप लगाती होगी। टेढ़ी मांग निकाल कर बालों को कानों के ऊपर सवांरती होगी। चोटी गूंथ कर पीछे इतना लम्बा सुनहरी लहरिया लगाती होगी कि मील-दो-मील तक लोगों की नज़र आजाए। ओठों पर लाल स्याही जैसी लिपस्टिक—गालों पर लाल गाज़ा, लम्बे लम्बे नाखूनों पर बूट पालिश—'दिल की जलन,' 'प्रीतम के पत्र,' पढ़ती होगी। और सिनेमा का तो अवश्य ही शौक होगा। दिल की आस, पुराना खानदान, निकम्मी दीदी, तो उसने अवश्य देखी होंगी। ठीक ही तो है, और क्या चाहिये। बस चैन ही चैन है।"

"अब तुमसे कौन उलझे ?" श्याम की माता ने अप्रसन्न हो कर कहा, "मैंने अभी पंडित सरूप किशन जी को बुलाया था। सगाई की तीथि पन्द्रह सितम्बर को निकली है। पन्द्रह सितम्बर तक तो तुम्हें छुट्टियां हैं ही। एक-दो दिन बाद भी चले गए तो कौनसा ऐसा हरज हो जायेगा।"

यह जुलाई का अन्तिम सप्ताह था। उसने मन में सोचा—अभी तो बहुत दिन पड़े हैं—देखा जायेगा !

यह सोच अपने मन से उसने इस बात को निकाल दिया और संतोष से खाने में जुट गया।

: ९ :

तीसरे पहर तक वह अपने कुंज में पड़ा ग़ालिब का सचित्र कविता-संग्रह देखता रहा। ग़ालिब के कविता-संग्रह में हर बार उसे एक नया आनन्द मिलता था। बार-बार पढ़ने पर भी ग़ालिब से उसका मन न ऊबता था। अन्य कवियों में यह बात न थी। ग़ालिब की हर पंक्ति उसे एक ऐसे हीरे की टुकड़ी-सी नज़र आती जिसके हर पहलू से एक नई किरण फूटती थी। पुराने अर्थ नये अर्थों में विलीन हो जाते। किरणों का रूप बदल जाता और एक ही पद भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाओं का प्रदर्शन करता। यह गुण उसे बहुत कम कवियों में नज़र आया था। आज उसका मन असाधारणतया उदास हो गया। उस उदासी को ग़ालिब के अध्ययन ने और भी बढ़ावा दिया और वह उस उदासी ही में एक हल्की सी ख़ुशी महसूस करने लगा।

*ढूंडे है फिर मुग़न्नी-ए-आतिश-नफ़स को जी,
जिसकी सदा हो जलवा-ए बर्क़-फ़ना मुझे।

चित्रकार ने अत्यन्त सुन्दर चित्र बनाया है—उसने सचित्र कविता-संग्रह के पन्ने पलटते हुए सोचा, मुझे तो इसे नर्तकी के पायल की हर रुनझुन में अग्नि की ज्वाला प्रतीत होती है। साज़िंदे के साज़ में वह बिजली नहीं जो स्वयं उसकी आंखों में है।

एकाएक उसे ख्याल आया कि इस समय उसका 'आग उगलने वाला गायक' किसी हारमोनियम के निकट बैठा गा रहा होगा—सावन

---

*मेरा मन उस आग उगलने वाले गायक को ढूंढता है जिसके स्वर में मेरे लिये मृत्यु का संदेश (झोंका) हो!

के नज़ारे हैं—लल-लल-ला, लल-लल-ला, लल-लल-ला। और उसका मुख क्रोध से लाल हो उठा। किसी को क्या अधिकार है कि उसे यों किसी के पल्ले से बाँध दे? जैसे वह कोई भेड़, बकरी अथवा दास हो—वास्तव में इस प्रकार का विवाह दासता ही की एक प्रथा थी। अन्यथा स्वतन्त्र देशों में तो इस प्रकार के विवाह को बहुत बुरी कुप्रथा माना जाता है। फिर वह सोचने लगा, नहीं, यह कुप्रथा न थी। और यदि कुप्रथा थी भी तो तत्कालीन व्यवस्था की एक आवश्यक कुप्रथा थी। भला जहां सामाजिक जीवन के दो भाग हों, एक में पुरुष और दूसरे में स्त्रियां रहती हों और एक दूसरे से मिलने-जुलने का कोई अवसर न हो वहां इस प्रकार की रीतियों के अतिरिक्त अन्य कौनसी रीति पनप सकती थी। और फिर दूसरे ढंग के विवाह में भी कौनसा सुख था। पहले लड़की चुनो। अच्छा लड़की भी चुन ली। फिर उससे प्रेम जताओ। संभव है कि वह तुम्हें लुच्चा, बदमाश समझकर तुम्हारे प्रेम को ठुकरा दे और तुम्हें फिर से अपने चुनाव पर दृष्टि डालनी पड़े। अच्छा, यदि यह बात भी बन जाए तो फिर प्रेम करो, कवितायें लिखो। यदि स्वयं न लिख पाओ तो दूसरों से लिखवाओ। पत्र लिखो, सुगन्धित लिफाफे इस्तेमाल करो। अब यदि लड़की मान जाए तो तो उसके माता-पिता को मनाना आसान काम नहीं। चलिये किसी तरह यह समस्या भी हल हो गई और कोर्टशिप (प्रेम-प्रदर्शन) के बाद विवाह भी हो गया—फिर आया हनी-मून! और पता चला कि हम दोनों के स्वभाव में तो धरती-आकाश का अन्तर है। अब कहिये, इससे क्या यह उचित नहीं है कि समाज उन्हीं दो विभागों में बंटा रहे। एक में पुरुष रहें और दूसरे में स्त्रियां। विवाह के लिये एक में हाथ डाला, नाम निकला "श्याम" दूसरे में हाथ डाला और नाम निकला "सुभागिन"। दोनों को धागे से जोड़कर दस व्यक्तियों के सम्मुख बांध दिया। चलिये श्याम और सुभागिन का विवाह हो गया और पीतल का बैंड बाजा बजने लगा—श्याम को जितनी इस पीतल

के बैंड बाजे से फिर भी इतनी शायद हारमोनियम से भी न थी। यह पीतल का बैंड बाजा हर विवाह में अवश्य होगा। चाहे लड़के का पिता उस विवाह में सम्मिलित हो अथवा न हो। चाहे सारे बराती विवाह में सम्मिलित होने से इनकार कर दें परन्तु यह पीतल का बाजा अवश्य बजेगा। दूल्हा आंख से काना हो, चाहे टांग से लुंजा परन्तु बैंड अवश्य यह गायेगा - 'तेरी छवि मनमोहन श्याम, दिल को भाये जाये—दिल को लुभाये जाये।' दुल्हन ऐसी कुरूपा-चुड़ैल हो कि डायन भी लज्जित हो जाये परन्तु बैंड बाजे की ओर देखिये, किस उल्लासयुक्त स्वर में गा रहा है.......तू है मेरे मन की आस, मेरे मन की आस तू है ......सारे बराती खाना खाकर विदा भी हो चुके हैं परन्तु यह बैंड अब भी गाये जा रहा है.......काहे करता देर बराती, देर बराती, देर बराती। इस हृदय-विदारक स्वर में यह बैंड इस प्रश्न को बार-बार दोहराता है कि मनुष्य का मन टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, और वह सोचता है कि काश उसके पास कोई ऐसी सारंगी हो जिसके बजाने पर संसार भर के बैंड बजाने वाले अपने-अपने साज़ लेकर उसके पास दौड़े आयें और वह अपनी सारंगी बजाता हुआ उन्हें समुद्र में ले जाये और वहीं सदैव के लिये उन्हें डुबो दे, उसी तरह जिस तरह उस प्रसिद्ध कहानी में एक सारंगी वाले ने गांव के चूहों को समुद्र में डुबो दिया था। परन्तु शोक ! इस संसार में ऐसी कोई जादूभरी सारंगी नहीं.......और बेचारे श्याम को अपने विवाह के अवसर पर इसी घृणित बैंड के कटु चीत्कार को सुनना ही पड़ेगा ....

वह कुंज से उठकर बाग में घूमने लगा। घूमते-घूमते वह बाग के पश्चिमी कोने में चला गया। यहां एक टीला आगे की ओर निकला हुआ था और यहां से वादी का दृश्य अत्यन्त रमणीक था। नीचे विस्तृत वादी में धान के खेतों के बीचोंबीच बल खाती हुई नदी बहती थी। पश्चिमी क्षितिज में भगवान् भास्कर अस्ताचल की ओर जा रहे थे और प्रतिक्षण हरे जंगल एक गहन अन्धकार में विलीन हुए जा रहे थे। धीरे-धीरे सारी वादी—पर्वत, जंगल, धान के खेत और नदी का चमकीला पानी, उस कालिमा में डूब गए। अब पश्चिमी क्षितिज की लालिमा में पर्वतों की चोटियों की हल्की रेखाएं स्पष्ट दिखाई देती थीं मानो किसी ने आकाश पर पेंसिल से उन चोटियों का चित्र खींच दिया हो। धीरे-धीरे यह चोटियां भी मद्धम होती गईं। पश्चिमी आकाश पर बादलों का रंग मटियाला हो गया। हां, उस स्थान पर जहां सूर्य अस्त हुआ था, बादलों में एक सुनहरी खिड़की-सी बन गई थी। शायद नीले आकाश ने इस संसार के लोगों को निमंत्रित करने के लिये स्वर्ग की खिड़की खोल दी थी। स्वर्ग की महारानी उस स्वर्णिम झरोखे में से इस भूरे भूमंडल को देख रही थी जहां विवाह शादी की तरह किये जाते हैं और शादियां विवाह की-सी धूम-धाम के साथ...जहां परियों के पंख, उनके उत्पन्न होते ही काट दिये जाते हैं और देवलोक से कोई सुन्दर राजकुमार उनकी रक्षा के लिये नहीं आता....जहां सौंदर्य फूलों के माप में तुलने की अपेक्षा धन के माप में तुलता है...

उसे पांच फूलों वाली राजकुमारी की कहानी स्मरण हो उठी जो इतनी सुन्दर और नाज़ुक थी कि यदि एक पलड़े में राजकुमारी हो और दूसरे में पांच फूल तो दोनों पलड़े बराबर होते थे। उसने सोचा स्त्रियां अब भी राजकुमारियां हैं। वह अब भी परियों की तरह सुन्दर हैं। हां उनके तुलने का तराजू बदल गया है। अब स्त्रियां रुपयों के साथ तुलती हैं। कोई औरत पांच रुपये पर तुल जाती है, कोई पांच सौ पर और कोई पांच हज़ार पर। यही हाल पुरुषों का है। केवल माप अलग-अलग हैं। परियों की सभ्यता का माप फूल है—मनुष्य की सभ्यता का माप रुपया है। कौनसा माप श्रेष्ठतर है—फूल या रुपया? यह मूल प्रश्न विचारणीय है—वह अभी यहां तक ही सोच पाया था कि उसके कानों में गुलाम हुसैन की आवाज पड़ी। उसने मुड़कर देखा।

गुलाम हुसैन अपनी कही हुई बात को दोहराने लगा—"हज़ूर, तहसीलदार साहब आपको याद फरमाते हैं।"

: ११ :

रात काफी बीत चुकी थी। गांव में एकाएक शोर सा मच उठा। चारों ओर से नाना प्रकार की आवाज़ें आ रही थीं और तेज़ गति से भागने का शब्द भी। वादी में लोग एक दूसरे को बुला रहे थे और यह विभिन्न बुलावे वादियों में गूंजते हुए, एक भयानक डर-सा उत्पन्न कर रहे थे। श्याम जाग उठा। घर में सब लोग जाग उठे थे। बाहर बाग़ में सोए हुए पशु-पक्षी भी बेचैन होकर शोर मचा रहे थे। किसी की समझ में न आता था कि माजरा क्या है? गुलाम हुसैन जो हमेशा आंगन में सोता था, उठ कर बाहर पता लगाने चला गया था। उसके लौटने पर मालूम हुआ कि वह नायब तहसीलदार साहब शिकार से वापिस आ रहे थे; मोहनसिंह को सवाई के जङ्गल में किसी सूअरनी ने बुरी तरह घायल कर दिया था और लोग उसे उठाये लिये आ रहे थे। श्याम ने उठ कर कपड़े पहिने और अपने पिता के साथ बाहर निकल गया।

बाहर एक विचित्र दृश्य था। आसपास की घाटियों, ढलानों और वादियों की तलहटियों में लोग एक दूसरे को बुलाते हुए मान्दर की नदी की ओर जा रहे थे। अन्धेरे में मार्ग ढूंढने के लिये प्रत्येक के हाथ में बेनियों के गट्ठे थे। यह बेनियां चीड़ के तने में से निकाली जाती हैं और मोमबत्ती की तरह जलती हैं—यह जङ्गली मोमबत्तियां घाटियों के हर कोने से जलती और हिलती हुई दिखाई देती थीं, सैंकड़ों मोमी-दीपक! कोई ऊंची जगह पर और कोई नीची जगह पर और कोई

किसी ढलान पर, जैसे सितारे आकाश से नीचे उतर आये हों। सारी वादी ऊंची आवाजों से गूंज रही थी। नदी पर उन दीपकों की एक पंक्ति सी बनी हुई थी और चेनियों की ज्वालाएं मान्दर के काले पानी में चमक रही थीं—अन्धकार और सोना! उसे दूर घोड़े और खच्चर दिखाई दे रहे थे और एक पालकी जिसे बहुत से लोगों ने उठा रक्खा था। शिकारी का जलूस! शिकारी जो स्वयं शिकार हो गया था!

उसने अपने पिता से कहा, "पिताजी, मैं भी ज़रा नदी तक जाता हूँ।"

उसके पिता बोले, "गुलाम हुसैन को साथ ले जाओ।"

रास्ते में उसे बहुत से लोग मिले जो उसकी तरह नदी की ओर जा रहे थे। कई लोग नदी से होकर लौट रहे थे। यहां-वहां दो-दो चार-चार आदमी खड़े तरह तरह की बातें कर रहे थे। कोई कह रहा था—"यह सब अलीजू नायब तहसीलदार की करतूत है, बेचारे ग़रीब राजपूत को सूअरनी से फड़वा दिया। सुना है, अलीजू चिरकाल से अन्दर ही अन्दर मोहनसिंह के विरुद्ध षडयंत्र कर रहा था।"

कोई कह रहा था "अजी इसमें अलीजू बेचारे का क्या दोष है? यह मोहनसिंह तो है ही ऐसा अड़बैंग, अक्खड़, अहड़ आदमी। वह भला कब किसी का सुनता है। ऐसा है शिकार का शौकीन कि स्वयं तो कभी पनचक्की पर बैठता ही नहीं। नौकर को बिठा रक्खा है, स्याह-सफेद जो चाहे करे। भला कभी नौकर भी इस तरह दयानतदारी से काम करते हैं?"

"अजी, इसमें उसका क्या अक्खड़पन है। सब कुछ तो इस कम्बख्त माथे पर लिखा होता है। मेरे चचा का लड़का था। क्या बताऊं, राधे, तुमने तो उसे देखा ही था। कैसा कड़ियल जवान था।"

[illegible] "[illegible] ...एक सिरगट देना।"

"—तो जनाब, वह भी शिकार का बड़ा शौकीन था। सरकारी रख में छुपके-छुपके शिकार किया करता था। कभी कोई रीछ मार डाला, कभी कोई सूअर। कई लोमड़ियों की खालें उसने अपने घर में लटका रक्खी थी—यह लो सिगरट—बस एक बार जाड़े में जब घुटनों-घुटनों बरफ पड़ी हुई थी, वह रख में शिकार के लिये गया और वहां एक रीछ ने उसे घायल कर दिया। शाम को जब वह घर न आया तो दूसरे दिन खोज शुरू हुई। आखिर गांव के लोग उसे वहां से उठा लाये। दवा-दारू होता रहा, लेकिन घाव बहुत गहरे थे। खून बहुत बह चुका था। कुछ दिन बाद चल बसा!"

श्याम बोला, "लेकिन तुम लोग उसे अस्पताल क्यों नहीं ले गये।"

राधे, सिगरेट का कश लगाते हुए बोला "साहब, यह बात बड़ी टेढ़ी थी क्योंकि मरने वाला रख में शिकार किया करता था—सरकारी रख में! फिर उसके पास शिकार का लाइसेंस भी तो न था। इसी डर से उसके रिशतेदार उसे अस्पताल न ले गये। उसे अस्पताल में ले जाते तो डाक्टर उसके घाव देखता। बस पुलिस को भी पता चल जाता। देखिये ना, यहां कचहरी, पुलिस चौकी, अस्पताल सब साथ-साथ ही तो हैं। उस पर मुकद्दमा बनता—इसी डर से लोग उसे अस्पताल न ले गये और जो कुछ उनसे बन पड़ा घर पर ही करते रहे। उसकी मौत आई थी, मर गया।"

"मोहनसिंह के पास तो लाइसेंस है" एक बोला।

"हां, भाई, होगा।"

"ना भी हो तो क्या हरज है, यह मामला दूसरा है। वह नायब तहसीलदार के साथ शिकार खेलने गया था। हाकिम स्वयं उसे बचा लेंगे।"

"बेचारे की जान बच जाये—अस्पताल में ला रहे हैं शायद।"

"हां डागडर (डाक्टर) भी नदी पर गया था। एक कम्पाउंडर उसके साथ था। वही काला बागदेव—क्या नाम है उसका—आओ हम भी नदी पर चलें।"

"लेकिन वे लोग तो इधर ही आ रहे हैं।"

"फिर भी चलने में क्या हरज है। जो लोग उसे पालकी में उठाये ला रहे हैं उनका हाथ बटायेंगे।"

लेकिन श्याम नदी पर नहीं गया। वहीं मन्दिर की ओर जाने वाले मार्ग पर नाशपाती के टेढ़े-मेढ़े पेड़ के तने से लगकर खड़ा हो गया। गुलाम हुसैन बोला, "यह कम्बख्त सूअरनी बहुत बुरी होती है। यदि गर्भवती हो या बच्चोंवाली तो बस खुदा ही इससे बचाये। देखें बेचारे मोहनसिंह का क्या होता है। सुना है बहुत गहरे घाव आये हैं।"

नदी से लौटने वाले लोगों का शोर बढ़ता गया। बहुत से लोग चेनियों के गट्ठे हाथों में लिये आगे-आगे चले आ रहे थे। उनके पीछे घोड़े और खच्चर सिर झुकाये धीरे-धीरे चढ़ाई चढ़ रहे थे। अलीजू पैदल चल रहा था। उसके घोड़े की बाग ढीली होकर घोड़े के पांव में लटक रही थी। उसने श्याम को नहीं देखा।

अब पालकी बिल्कुल निकट आ गई। एक चारपाई में लम्बे-लम्बे डांड बांध कर यह पालकी बनाई गई थी। श्याम मोहनसिंह का चेहरा न देख पाया क्योंकि उसे पेट के बल लिटा रक्खा था।

पालकी निकल गई। लोग चले गये लेकिन श्याम मौन खड़ा रहा।

गुलाम हुसैन ने धीरे से उसके कंधे पर हाथ रखा "चलिये साहब!"

नीचे घाटी पर से कोई आ रहा था। उसके हाथ में चेनियों का गट्ठा न था। जब वह बिल्कुल निकट आ गया तो श्याम ने उसे पहचाना।

"चन्द्रा"—उसने धीरे से कहा।

यह बावली वाली लड़की थी। वह एक क्षण के लिये ठिठक कर खड़ी हो गई। उसका सांस तेज़-तेज़ चलने लगा और छाती ज़ोर ज़ोर से कांपने लगी। उसने अपने ओंठ दांतों तले दबा लिये और आंसुओं को आंखों में आने से रोक कर बोली, "अस्पताल जाऊंगी, वह जहां जायेगा वहीं जाऊंगी।"

गुलाम हुसैन बोला, "दुनियां क्या कहेगी ?"

"वह दुनिया का नहीं है, वह मेरा है।"

श्याम बोला, "चलो मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा।"

योंही बिना सोचे-समझे उसने यह वाक्य कह दिया था। वह चन्द्रा की आंखों में कृतज्ञता की झलक न देख सका।

: १२ :

वह सीधा ऑप्रेशन-रूम में चला गया। डाक्टर मोहनसिंह के सिरहाने खड़ा उसकी नब्ज़ देख रहा था। वामदेव कम्पाउंडर घाव धो रहा था। दीवार पर टंगी हुई रबर की नली से निकल कर पानी की सफेद धार घावों पर पड़ती थी और रक्त से लाल हो जाती थी। सारी पीठ घावों से भरी पड़ी थी। कमर से लेकर बांये कन्धे तक एक गहरा घाव था। शायद सूअरनी ने यहां सूंड लगाई थी।

वामदेव बोला, "यह सूअरनी भी नीच कम्बख्त होती है। विशेषकर पर जब यह गर्भवती होती है। देखिये सूंड यहां कमर पर लगाई और मास को उधेड़ती हुई कंधे तक चली गई, नीच, कम्बख्त !

वामदेव 'कम्बख्त' की गाली अनजाने ही में हर समय प्रयोग में लाता था और अब यह गालियां उसके जीवन का एक अंग, उसकी टेक बन गई थीं। वह इन शब्दों को अगणित वार दोहराता था, इस तरह कि अब ये गालियां उसके व्यक्तित्व का एक मुख्य अंग बन चुकीं थीं। उसका कद ठिगना था। चेहरा सांवला और लम्बूतरा। गालों की हड्डियां बाहर निकली हुई थीं और उनके नीचे काले गढ़े थे। एक आंख से काना था। शराब खूब पीता था। दिल का बहुत नेक था। रोगियों की सेवा में कोई कसर न उठा रखता था। शायद इसीलिये बहुत से लोग उसकी बकवाद को सहन कर लेते थे।

श्याम ने पूछा "क्या यह बच जायगा ?" उसके स्वर में निराशा थी।

इससे पूर्व कि डाक्टर उत्तर दे, वामदेव कह उठा "अजी, इसमें बचने की क्या बात है। हमने कम्बख्त इससे भी खतरनाक केस अच्छे

होते देखे हैं। यह तो कम्बख्त ऐसा खतरनाक केस भी नहीं, क्यों डाक्टर साहब, क्या ख्याल है आपका ?"

डाक्टर बोला, "सुना है, उस सूअरनी के साथ बच्चों का झुण्ड था। अलीज़ साहब ने जो उस पर गोली चलाई तो वह घायल हो गई, मरी नहीं। उसके बच्चे इधर-उधर बिखर गये और वह घायल हुई एक तरफ हट गयी। अचानक मोहनसिंह सामने आ गया। वह इस तेज़ी के साथ उस पर झपटी कि मोहनसिंह अपने आपको संभाल न सका, पेट के बल नीचे गिर पड़ा। सूअरनी उसे थूंथ से चीरती हुई जंगल में गुम हो गई। नब्ज़ कमजोर है। जल्दी करो। मैं इसे और क्लोरोफार्म नहीं सुंघा सकता, यह इसे सह नहीं सकेगा।"

वामदेव बोला, "अभी लीजिये। मैं अभी सब काम ठीक किये देता हूं। किस तरह इस कड़ियल जवान को कम्बख्त सूअरनी ने कीमा बना डाला है!"

श्याम का जी मितलाने लगा। वह आप्रेशनरूम से बाहर चला आया। बाहर दरवाजे के साथ चन्द्रा खड़ी थी। उसकी अनुनयपूर्ण एवं प्रश्नसूचक मौन दृष्टि—वह प्रश्न जो उन नाज़ुक घड़ियों में जिह्वा पर नहीं आता परन्तु डबडबाई हुई आंखों के हर आंसू में झलक उठता है। वही प्रश्न उस अछूत, असहाय दृढ़-प्रतिज्ञ युवती की आंखों में झलक रहा था। यह वह नाज़ुक क्षण होते हैं जब मनुष्य की सम्पूर्ण वाक् शक्ति आंखों में प्रकट हो जाती है।

श्याम ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर सान्त्वना-भरे स्वर में कहा—"डाक्टर कह रहा है मोहनसिंह अच्छा हो जायगा। और वामदेव कम्पौंडर तो कहता है कि (गाली उसके ओठों पर आते आते रुक गई) चिंता की कोई बात नहीं।"

"मोहन को कहां रक्खेंगे, घर पर या अस्पताल में ?" चन्द्रा ने पूछा।

"शायद अस्पताल ही में, वार्ड में दाखिल करेंगे। घर पर उसकी मरहमपट्टी कैसे होगी ?"

चन्द्रा ने संतोष का सांस लिया।

"तब तो मैं यहां ठहर सकूंगी। घर में तो इसके सम्बन्धी मुझे घुसने न देते।"

"क्या यहां इसका कोई सम्बन्धी भी है ? मैंने तो सुना है कि मोहनसिंह बिलकुल अकेला है। मां-बाप मर चुके हैं।"

"नहीं, उसकी मां का एक भाई है। वह और उसकी घरवाली मौजा धड़े में रहते हैं" फिर वह कानाफूसी के स्वर में बोली, "वह इस समय यहां उपस्थित हैं। बाहर अस्पताल के बरामदे में बैठे हैं—" फिर थोड़ा सा रुककर "वही मोहन के बाद उसकी ज़मीन और पनचक्की के मालिक होंगे। अगर आज मोहन मर जाये तो—" वह सिर से पांव तक कांप उठी।

"चिंता न करो" श्याम ने उसे धीरज बंधाते हुए कहा, "मोहन अच्छा हो जायेगा।"

"मोहन कभी अच्छा न होगा यदि उसकी देख-रेख उसके यह सम्बन्धी करेंगे। मैं इन बातों को खूब जानती हूं"—उसने तीक्ष्ण स्वर में कहा, "मैं इन सम्बन्धियों को खूब समझती हूं। कभी हमारे भी सम्बन्धी थे, आज गांव वालों ने हमें देश-निकाला दे दिया है। क्या वह सम्बन्धी हमारे मीत हैं। हमसे तो वह आंख भी नहीं मिलाते.... चोर, डाकू, कमीने......"

फिर वह निश्चयपूर्ण स्वर में बोली, "मोहन की देखरेख मैं करूंगी।" फिर वह श्याम के आगे हाथ जोड़ कर कहने लगी, "तुमने मुझ पर जो उपकार किया है उसका बदला मैं आयु भर नहीं चुका सकती। मुझ पर एक उपकार और कर दो। डाक्टर से कहकर मुझे

यहां मोहन की देखभाल करने की आज्ञा दिलवा दो।"

"लेकिन" श्याम कहने लगा "यह कैसे होगा। उसके सम्बन्धी कैसे मानेंगे। गांव वाले शोर मचायेंगे। यह ब्राह्मणों का गांव है। पंडित सरूपकिशन........जग-हंसाई होगी, स्वयं तुम्हारी मां—"

"मेरी मां की आप चिंता न करें। उससे मैं स्वयं मिल लूंगी। जग-हंसाई की मैं परवाह नहीं करती और यदि पंडित सरूपकिशन कुछ कहेगा तो मैं उसका मुंह झुलस दूंगी.......हां, इसके सम्बन्धियों की बात ज़रा टेढ़ी है लेकिन आप—" वह पुनः श्याम की ओर अनुनयपूर्ण दृष्टि से देखने लगी। उसके ओंठ थोड़े-से खुले थे। एक लट गाल पर लहरा रही थी। बड़ी-बड़ी काली आंखों में आकर्षक चमक थी जिनमें अश्रुओं की सजलता थी।

श्याम को जैसे अपने कण्ठ में कोई वस्तु फंसी हुई सी अनुभव हुई। कम्बख्त यह लड़की नहीं जानती कि वह कितनी सुन्दर है। ऐसा सौन्दर्य बड़ा भयानक होता है........स्टीला सब कुछ जानती है। उसे अपने सौन्दर्य का सम्पूर्ण अनुभव है। अपने सौन्दर्य के आकर्षण, लावण्यता आदि से वह कदापि अनभिज्ञ नहीं। वह यह भी जानती है कि उसकी पहुँच कहां तक है और किस सीमा से आगे बढ़ना उसके लिये मूर्खता सिद्ध होगी। परन्तु इस सादे सौंदर्य की अज्ञानता, इसका अनजानपन ही इसे सबसे अधिक खतरनाक बना देता है। स्टीला का सौन्दर्य अलजेब्रा है, चन्द्रा का सौन्दर्य ईथर की लहर, सूर्य की किरण, सूर्यास्त का स्वर्ण!

चन्द्रा घबराकर बोली, "इस तरह क्या देख रहे हैं आप, क्या सोच रहे हैं?"

श्याम अपने विचारों, अपनी मनोभावनाओं पर स्वयं ही लज्जित हो उठा। धीरे से बोला, "घबराओ नहीं, मैं पूरी कोशिश करूंगा। आज की रात तो तुम यहीं रह सकती हो। मैं वामदेव से कहूंगा और कल डाक्टर से भी बात करूंगा।"

: १३ :

श्याम ने पहले डाक्टर से बात की। डाक्टर टालमटोल करने लगा "बड़ा टेढ़ा मामला है। हर किसी को देख-रेख की आज्ञा नहीं दी जा सकती। इस नियम को मैं तोड़ भी सकता हूं लेकिन यह मामला कुछ अधिक वेढब है। मोहनसिंह की मां का भाई उसका असली उत्तराधिकारी है। अगर वह इसकी देख-रेख करना चाहें तो मैं कैसे इनकार कर सकता हूं, आप ही सोचिये। फिर यह लड़की अछूत है। गांव वालों ने इनका वहिष्कार कर रखा है। मोहनसिंह के सम्बन्धी विरोध कर सकते हैं कि एक राजपूत का धर्म भ्रष्ट हो रहा है। ब्राह्मण विरोध करेंगे। अर्जी देंगे। मेरे विरुद्ध कार्रवाई होगी। देखिये ना, इस मामले को आप इतना आसान न समझिये, और फिर मैं ठहरा मुसलमान! यही समझा जायगा कि इस आदमी ने जान-बूझकर धार्मिक अड़चन डाली। देखिये न, आप स्वयं इस मामले की गम्भीरता को समझते हैं—"

फिर श्याम ने वामदेव से बात की। वह बोला—"अजी इसमें हरज ही क्या है। मैं कम्बख्त अभी इस मामले को सुलझाता हूं। यह लड़की भी रहे और क्या नाम........कम्बख्त इसके सम्बन्धी भी रहें। आप बिलकुल चिन्ता न करें।"

श्याम ने कहा, "एक बात विचार करने की और है, हो सकता है मोहनसिंह के उत्तराधिकारी उसकी देखभाल अच्छी तरह न करें बल्कि उल्टा उसे कष्ट पहुँचाने की सोचें, क्योंकि इसकी मौत से उन्हें बहुत सा आर्थिक लाभ होगा। दूसरी ओर चन्द्रा—" श्याम ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

डाक्टर भी इस मामले को समझ गया और वामदेव भी। लेकिन दोनों अपनी ओर से कोई फैसला देने से कतराते थे। आखिर दूसरे दिन दोपहर के बाद जब मोहनसिंह को होश आई तो उसने स्वयं इस बात का फैसला किया। वह चाहता था कि केवल चन्द्रा ही उसकी देख-रेख करे। वह अपने आपको अन्य किसी के हाथ में सौंपने के लिये तय्यार न था। परिणाम यह हुआ कि उसके संबन्धी गालियां बकते चले गये और चन्द्रा ने अपनी चारपाई वार्ड में मोहनसिंह के निकट बिछा ली।

: १४ :

इस घटना के तीन-चार दिन बाद उसकी अलीजू से भें हुई। अलीजू उसे देखते ही बोला "मुबारिक हो, अब मिठा खिलाओ ना!"

"क्यों?"

"हमसे छुपाते हो। सुना है तुम्हारी संगनी हुई है, किसी ब अच्छे घराने में! सुना है मंगली में पाँच सौ रुपये आये हैं।"

श्याम ने चिन्तातुर होकर कहा, "नायब तहसीलदार साहब आप से क्या परदा, मुझे तो इसमें प्रसन्नता का कोई कारण नः दिखाई देता। पांच सौ रुपये से जीवन नहीं बिताया जा सकता, जीव तो प्रेम चाहता है, और मैं उस लड़की को जानता तक नहीं। उसः शकल तक से अपरिचित हूँ। अब बताइये यह भी कोई तरीका है?"

नायब तहसीलदार ने कहा, "अभी बच्चे हो, इन बातों को तु क्या समझोगे। सैकड़ों बरसों के आज़माये हुए रसम और रिवा दो-चार पुस्तकों के पढ़ लेने से झूठे नहीं किए जा सकते। तुम्ह दिमाग़ में शायद पश्चिमी कोर्टशिप की अठखेलियां घूम रही है बात असल में यह है श्याम साहब, कि पश्चिम में भी इसी तः विवाह होते हैं जिस तरह यहां। यह कोई अचम्भे की बात नहीं। व भी घर, खानदान, जात-पात इसी तरह मौजूद हैं। ऐसा बहुत क होता है कि किसी लार्ड का लड़का किसी मज़दूर की लड़की से शा कर ले। एक बार मेरी भेंट एक अमेरिकन पादरी से हुई थी। व कहता था कि अमेरिका में भी विवाह के समय खानदान का ब

ध्यान रखा जाता है। हर कस्बे और हर शहर में कुछ खानदान रईसों के होते हैं, कुछ उनसे छोटे दर्जे के। और फिर पंसारी, कुंजड़े, कसाई, नाई, धोबी इत्यादि का नम्बर आता है। ये सब लोग अपने-अपने क्षेत्र में रहकर शादी-ब्याह करते हैं। बात असल में यह है श्याम साहब, कि खानदान बड़ी चीज़ है। जो सैयद है, वह सैयद है। उसका यह बड़प्पन सैकड़ों सालों से चला आ रहा है। इसे दो-चार उल्टी-सीधी बातों से नहीं झुठलाया जा सकता। जो चमार है, वह चमार है। अब क्या किया जाये। संसार का नियम ही यही है। उधर पश्चिम में भी लाखों शादियां इन वर्ग-सीमाओं के अन्दर रहकर ही, मां-बाप की इच्छा ही से होती हैं। केवल इतना है कि वहां कोर्टशिप शादी से पहले होती है यहां शादी के बाद। श्याम साहब, मेरे ख्याल में तो दूसरा ढंग पहले ढंग से ज्यादा सुरक्षित और श्रेष्ठ है। आखिर केवल कोर्टशिप से तो किसी का स्वभाव नहीं बदला जा सकता। मैं कहता हूं, अपने दायरे में रहकर शादी करना बहुत अच्छा होता है। देखिये, हमारे यहां मुसलमानों में यह रसम है कि हम अपने ही खानदान में शादी कर लेते हैं। इसका सबसे बड़ा फायदा यह होता है कि हमें एक दूसरे के स्वभाव का पहले ही से पता होता है। जीवन आराम से कट जाता है। अब मोहनसिंह को लीजिये। राजपूत है, सुन्दर है, अच्छे घराने का है। उसके पास काफी जायदाद भी है, लेकिन अपना जीवन अपने हाथों नष्ट कर रहा है। उस अछूत लड़की से प्रेम कर रहा है जिसे सारी बिरादरी मुंह नहीं लगाती। क्या इसका कोई अच्छा परिणाम निकल सकता है? बात असल में यह है श्याम साहब, कि समाज एक बड़ी भारी शक्ति है। समाज मनुष्य की संगठित बुद्धि और संगठित शक्ति का दूसरा नाम है। समाज से विद्रोह किसी तरह भी हितकर सिद्ध नहीं हो सकता। मैं आपसे कहे देता हूं कि ब्राह्मण लोग अभी से कटाक्ष कर रहे हैं। वह सोच रहे हैं कि किसी तरह मोहनसिंह और चन्द्रा को अलग कर दिया जाये। यदि मोहन-

सिंह को इस गांव में रहना है तो उसे बिरादरी के सामने सिर झुकाना ही होगा। और बात असल में यह है श्याम साहब, कि दुनिया में मनुष्य को जिन्दा रहने के लिये, पेट पालने के लिये, आगे बढ़ने के लिये किसी-न-किसी के आगे सिर झुकाना ही पड़ता है। यह वह कीमत है जो एक व्यक्ति अपने अस्तित्व को स्थिर रखने के लिये समाज की भेंट करता है। छाया ही के मामले को लीजिए। बिरादरी से अलग होकर उसे क्या मिला? मैं प्रेम को जरूर मानता हूं, यदि उसे एक मुसलमान से प्रेम है तो और भी कमाल है। लेकिन वह हिन्दू है, हिन्दू रहना चाहती है। उस अवस्था में जब धर्म और प्रेम में ठन जाये तो मैं हमेशा धर्म ही को महत्व दूंगा। प्रेम! साहब, आखिर एक घटिया किसम की काम-वासना ही तो है। और धर्म एक अलौकिक दिव्य वस्तु है। मैं तो इस प्रकार के प्रेम को बुरा मानता हूं चाहे ऐसा प्रेम कोई मुसलमान औरत करे अथवा हिन्दू स्त्री। आखिर ऐसे प्रेम का लाभ भी क्या? मैंने तो आजतक ऐसा कोई प्रेम फूलते-फलते नहीं देखा। हां अगर दोनों प्रेमी एक धर्म में आ जायें तब और बात है। लेकिन आपके यहां तो इस बात की भी आज्ञा नहीं। बात असल में यह है श्याम साहब कि जिन्दगी इन दिनों कुछ ऐसी पेचीदा हो गई है कि जो आदमी ज़िन्दा रहना चाहता है उसे समाज की बनाई हुई चारदीवारी के अन्दर रहना पड़ता है। मैंने तो छाया को कई बार सलाह दी है कि वह बिरादरी का कहना मानकर अपनी लड़की की शादी पंडित सरूपकिशन के लड़के से कर दे। बस सारे झगड़े मिट जायंगे। फिर उसकी तरफ कोई आंख उठाकर भी देखे या उसकी किसी बात पर कटाक्ष करे तो मेरा ज़िम्मा। पंडित सरूप किशन बड़ा धूर्त ब्राह्मण है। गांव के सब ब्राह्मण उसकी मुट्ठी में है। मैं उसे खूब समझता हूँ। मगर साहब, उससे बिगाड़ी नहीं जा सकती और वह छाया है कि मेरी बात मानती ही नहीं। त्रियाहठ है, और क्या?"

"आखिर यह चाहती क्या है?" श्याम ने पूछा।

"असल में वह बन्ती को कहीं और ब्याहना चाहती है। वह एक लड़का है बलभद्र। है तो वह भी ब्राह्मण ही लेकिन ग़रीब है। जाय-दाद वगैरह भी कुछ इतनी नहीं।"

"फिर ऐसी मूर्खता क्यों करना चाहती है?"

"बात असल में यह है श्याम साहब कि छाया बड़ी हठी स्त्री है। अपनी मनमानी करना चाहती है और वह जो बलभद्र है, वह ज़रा सुन्दर जवान है और मैट्रिक पास है और यहां स्कूल में पढ़ाता है। किसी दिन आपको मैं उससे मिलाऊंगा। वह बन्ती पर बुरी तरह मरता है। गांव के कई और लौंडे भी मरते होंगे लेकिन उसका प्रेम सबसे ज़्यादा बदनाम है........कुछ इस कारण से और कुछ यह भी कारण है कि बन्ती को भी इस लड़के से थोड़ा बहुत लगाव है; छाया उसकी शादी बलभद्र से करना चाहती है। बलभद्र के मां-बाप मर चुके हैं। छाया का ख्याल होगा कि वह उसे घर-जंवाई बनाकर रक्खेगी। इसके मुकाबले में पंडित सरूप किशन का लड़का बड़ा बद-सूरत और मूर्ख है। मगर साहब, आखिर है तो पंडित सरूप किशन का लड़का। बात असल में यह है श्याम साहब कि......"

श्याम ने घबराकर जल्दी से हाथ मिलाया और कहा "माफ़ कीजिये नायब तहसीलदार साहब, मुझे एक बहुत जरूरी काम याद आ गया है। फिर कभी हाजिर हूंगा। आज्ञा दीजिये।"

अलीज़ बोला, "अच्छा-अच्छा! कोई बात नहीं। मेरा भी अब नमाज़ का वक्त हो रहा है।"

: १५ :

और श्याम चलते-चलते सोचने लगा—अलीजू की बातें कितनी ठोस होती हैं लेकिन इनमें कार्यशीलता नहीं। क्या मनुष्य क्रांति और विद्रोह के बिना उन्नति कर सकता है? स्वयं मानव-समाज ने पिछले कुछ हज़ार वर्षों में जो उन्नति की है क्या इसी क्रांति और विद्रोह का परिणाम नहीं? धर्म के अवतार क्या विद्रोही न थे? क्या उन्होंने अपने समाज से विद्रोह न किया था? क्या वह अपने समय में नास्तिक न समझे जाते थे? यदि जीवन एक स्थान पर जुट कर बैठे रहने का नाम है तो फिर—मृत्यु किसे कहते हैं? यदि मनुष्य के मन में इस नैसर्गिक विद्रोह की ज्वाला उत्पन्न न होती तो संभवतः वह आज भी उसी तरह जंगलों में लंगूर की तरह दुम लटकाये वृक्षों पर छलांगे मारता फिरता—जो भी हो, अलीजू में आत्म-विश्वास तो है। मेरी धारणाएं तो अभी बिल्कुल ही कच्ची हैं। मैं किसी भी धारा में बह सकता हूं। मैं कभी कुछ सोचता हूं, कभी कुछ। अर्धचेतन-सी कुछ वृत्तियां उभर रही हैं। न जाने किस रूप में सामने आयेंगी? इनका प्रवाह किधर उन्मुख होगा? जीवन की कहानी क्या रूप धारण करेगी?

एकाएक वह ठिठक गया। सामने की ओर से वंती चली आ रही थी। उसके हाथ में फलों की टोकरी थी। जिसमें से लाल-लाल सेब झांक रहे थे। उसे देख कर वंती की चाल धीमी पड़ गई। वे दोनों उस तंग मार्ग पर एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। एक ओर सुम्बलों की झाड़ियां थीं, दूसरी ओर तरनारि की बेल। श्याम ने देखा कि वंती ने सफेद नॉन का दुपट्टा ओढ़ रक्खा है जिसकी उज्वल ओट में कंधों पर लहराये हुए काले केश झांक रहे हैं। चेहरे पर ताज़गी थी और रस

भरे ओंठ किसी अज्ञात भाव से कांप रहे थे। श्याम की दृष्टि उसके पांव की ओर गई। बोला, "फीता अब तो तंग नहीं करता?"

वह हंसी। उसकी हंसी एक अलौकिक प्रकार की थी। उस हंसी में केवल साधारण स्त्रियों की हंसी की-सी मृदुलता, कोमलता और चान्दी ही घुली हुई न थी वरन् उसे अनुभव हुआ कि उस हंसी में किसी सुन्दरतम संगीत का अमृतमय रस विद्यमान् था। उसके मन में उस हंसी को बार-बार सुनने की इच्छा जागृत हो उठी।

वह शोखी से कहने लगा, "अगर वह कम्बख्त फीता तुम्हें फिर कभी तंग करे तो—"।

वह फिर हंसने लगी, "सेब खाइये ना—आपके बाग के हैं।"

वह बोला, "मैं अपने बाग के सेब नहीं खाया करता।"

और फिर श्याम ने वंती के गालों पर गुलाब के फूल खिलते देखे। वह अपने ननॉन के पतले दुपट्टे से अपने वक्षस्थल को ढांपने का प्रयत्न करने लगी, जहां मानों दो बेचैन पक्षी सगर्व ऊपर की ओर मुंह उठाए हुए थे....या शायद नीचे की ओर झुके जाते थे, पके हुए फलों की भांति। और श्याम के मन में उन फलों को तोड़ लेने की चाह तड़पने लगी—एक हठी बालक की तरह—'मैं चन्दा मामा लूंगा—मैं चन्दा मामा लूंगा। मैं वह मोटर लूंगा। मुझे वह लाल चिड़िया ला दो'—श्याम के लिये यह अनुभव नया न था। इसे दबाने में वह सदैव सफल भी हो जाता था लेकिन अपने इस अनुभव की हठी उत्पत्ति पर उसे हर बार आश्चर्य भी होता था। बार-बार दबाये जाने पर भी यह अनुभव मन के किसी कोने में से फिर उभर आता। वह इस नारी-आकर्षण से पूर्णतया परिचित था। बल्कि स्टीला के साथ बैठकर उसने कई बार इस आकर्षण का अत्यन्त निरपेक्ष भाव से विश्लेषण भी किया था। सोचता था कि इस प्रकार विश्लेषण कर के वह इस उत्तेजना पर काबू पा लेगा लेकिन यह आकर्षण हर बार एक ज़िद्दी बालक की तरह मचल उठता

था। क्या कारण है कि दो युवा स्त्री-पुरुष एक दूसरे से अपरिचित होते हुए भी, एक दूसरे से प्रेम न करते हुए भी एक दूसरे के इतने निकट हो जाते हैं कि धरती और आकाश घूम-घूम कर एक होते हुए मालूम होते हैं। और धरती आकाश का यह स्वर्णिम संगम उन दो हृदयों की धड़कनों में कुछ इस प्रकार समा जाता है कि वे यह समझ नहीं पाते कि वह दो हैं अथवा एक, एक हैं अथवा दो........?

वंती ने धीरे से कहा "आप यों अचरज से क्यों देख रहे हैं?"

"मैं यह सोच रहा था" श्याम ने लजाते हुए कहा—"तरनारि के यह सफेद फूल कितने भले लगते हैं। कितनी विचित्र सुगंधि है इनकी।"

वंती बोली "हां, मैं तो भूल ही गई थी। मैं आज तरनारि के फूल अपने जूड़े में लगाऊंगी। आपको यदि कष्ट न हो तो ज़रा इन फूलों को चुन दीजिये। इनकी कंटीली डालियों से मुझे डर लगता है।"

श्याम ने इधर-उधर देखा। झाड़-फूंस से घिरी हुई वह पग-डंडी बिल्कुल निर्जन थी। वह धीरे-धीरे फूलों के गुच्छे उतारने लगा और वंती-वहीं घास पर बैठ कर अपना जूड़ा संवारने लगी। थोड़े समय के बाद बोली—"बस"। उसने अपने जूड़े में फूल टिका लिये थे और गजरे बनाने के लिये अपने दुपट्टे में भी फूल भर लिये थे। श्याम को ऐसा अनुभव हुआ मानो वंती स्वयं तरनारि की बेल बन गई हो। वही लचक, वही हलका सा झुकाव, वही फूल। काले केशों के जूड़े में तरनारि के सफेद फूल इस तरह चमक रहे थे जैसे अंधेरी रात में तारों का समूह, और वह मन्त्रमुग्ध नेत्रों से श्याम की ओर देख रही थी।

श्याम मुस्कराकर बोला, "*गेसूए ताबदार को और भी ताबदार

---

*चमकीले केशों को और भी चमकीला बना।

कर,—लेकिन संभवतः आप इसका अर्थ न समझ सकेंगी। बलभद्र से पूछ लीजियेगा।"

परन्तु वंती ने शायद इस का अर्थ समझ लिया था क्योंकि उसने लजाकर आंखें झुका ली थीं और अब गुलाबी की नोक से धरती कुरेद रही थी।

वह बोला, "मालूम होता है यह कम्बख्त फीता फिर तंग कर रहा है—लाइये।" और वह उसके पांव की ओर झुका।

लेकिन वंती हंसते हुए एक जंगली हिरनी की तरह चौकड़ी भर कर भाग गई।

संध्या के धूमिल अंधकार में श्याम ने बाग के पश्चिमी टीले पर बैठे-बैठे अनुभव किया कि आज वह अकेला नहीं है। जैसे वंती अब भी उसके साथ है। जैसे वह उसके मृदुल, मधुमय श्वास का अब भी अपने माथे पर अनुभव कर रहा है। जैसे उसकी गुलाबी उंगलियों के स्पर्श से उसके हृदय के मरुस्थल में गुलाब के फूल खिलते जा रहे हैं, जैसे उसकी हंसी का मनोरम संगीत समस्त संसार पर छा गया है। जैसे यह सुगंधित वातावरण, नदी का यह कलकल निनाद करता हुआ जल, धान के यह सुगंधित खेत, उसी रहस्यमयी हंसी की लय पर कांप रहे हैं। जैसे तरनारि के लाखों सफेद फूल उस बेल से उड़-उड़कर आकाश की ओर जा रहे हैं और उन्होंने रात के काले जूड़े में तारों से आकाश-गंगा बना डाली है। वायुमंडल के कण-कण में एक नया जीवन और आत्मा के कोने-कोने में एक नव-परिचित प्राणी के कोमल स्पर्श का अनुभव हो रहा था। इससे पूर्व आज तक कभी ऐसा न हुआ था। और श्याम का मन किसी अज्ञात भय, किसी अज्ञात सौन्दर्य के अनुभव से कांप उठा और वह धीरे-धीरे कहने लगा—"ठहर, ऐ दिल.......ठहर, ऐ दिल......."

द्वितीय परिच्छेद

रंगन्यास

: १६ :

पंडित सरूप किशन का दो-मञ्जिला मकान मान्दर और मौंजा धड़ा के बीच की घाटी में एक ऊंचे स्थान पर स्थित था, जहां से सारी वादी का दृश्य साफ़ दिखाई देता था। वादी में यह सबसे ऊंचा स्थान था और ब्राह्मणों का सरदार होने के कारण उसकी शान के उपयुक्त भी। आसपास कई अन्य ब्राह्मणों और धनी महाजनों के घर थे। इस मकान से एक ओर रोड़ी नाला, उसका तल्ला और मान्दर का बाज़ार दिखाई देता था और दूसरी ओर तहसील और अन्य सरकारी दफ़्तर; इसके बाद यह घाटी ढलते-ढलते मान्दर की नदी से जा मिलती थी। खेत, मैदान और पर्वत-श्रेणी—उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम तक सारी वादी से बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देती थी। इस मकान के निचले भाग से मिला हुआ एक कच्चा सा कोठा भी था जिसे "बांडी" कहते थे, अर्थात् पशु बांधने की जगह। इस बांडी के सामने एक खेत था जिस के किनारे-किनारे बड़ी ऊंची बाड़ खड़ी की गई थी। इस खेत में बैंगन, हरी मिर्चें, भिंडी, तोरी, काशीफल और अन्य तरकारियां बीज रखी थीं। इससे उधर पण्डित सरूप किशन के छोटे भाई बसंत किशन का घर था। बसंतकिशन को पण्डित जी और गांव के लोग अच्छा न समझते थे। उसकी बातें, उसका चाल-चलन उन्हें पसन्द न था। फिर बड़े भाई की तरह वह धनी भी न था। इसलिये वह लोगों से अलग-थलग रहता था। पंडित सरूप किशन के मकान के उत्तर-पश्चिम में दूर तक उसके मक्की के खेत फैले हुए थे। इन खेतों से परे वृक्षों की ओट में एक धर्मशाला थी जहां एक ऊंचे मन्नो की चोटी पर केसरी रंग का झंडा लहरा रहा था। पंडित सरूप किशन साधारण-सा जागीर-

दार भी था। वास्तव में इसके पूर्वजों को यह जागीर इस धर्मशाला ही के सम्बन्ध में मिली थी ताकि धर्मशाला का खर्च इससे चलता रहे। लेकिन अब उस धर्मशाला में पंडित सरूप किशन ने एक पुजारी रख छोड़ा था, जो प्रायः बीमार रहता था, इसलिए पुजारी की माता ही प्रातः उठकर पूजा-पाठ किया करती थी। यह पुजारी स्वयं तो सिख था परन्तु इसकी माता सनातन धर्म में विश्वास रखती थी। धर्मशाला के एक कमरे में यह पुजारी, जब कभी वह स्वस्थ होता, गुरु ग्रन्थसाहब का पाठ किया करता था और उसका क्षीण स्वर एक अरुचिकर निरन्तरता के साथ उस पगडंडी पर आने-जानेवाले पथिकों को सुनाई देता जो धर्मशाला के निकट से नीचे बाजार की ओर जाती थी। धर्मशाला के एक कमरे में शिवजी की पूजा होती थी, जहां प्रातः और संध्या के समय पुजारी की माता या कोई अन्य भक्त आकर घंटा बजाता था। बाहर मन्नो के वृक्ष के नीचे कुछ पत्थर की मूर्तियां पड़ी थीं। उन मूर्तियों को देखकर श्याम चकित रह गया था। उसने भारत के भिन्न-भिन्न मन्दिरों में अनेक मूर्तियां देखी थीं—आधुनिक शिल्पकारों द्वारा बनी हुई, परन्तु वह सदैव उन मूर्तियों के कुरूप आकार और बेढंगेपन को देखकर दुःखी हो जाया करता था। लेकिन इस अज्ञात स्थान में पड़ी हुई इन मूर्तियों को देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। ये मूर्तियां सैकड़ों वर्षों के शिल्पकारों ने बनाई थीं और अब बिल्कुल भग्नावस्था में थीं और कोई इन पर ध्यान न देता था। शायद इन पर कभी कोई जल भी न चढ़ाता था—मन्नो के वृक्ष के नीचे बिखरी पड़ी मूर्तियों से कहीं अधिक उस पत्थर की पूजा होती थी जिस पर किसी अनाड़ी शिल्पकार ने एक नाग और उसका फन बना रखा था। गांव की स्त्रियां उसे प्रतिदिन दूध से धोती थीं।

इन टूटी-फूटी मूर्तियों में देवी का एक सिर भी था, इतना सुन्दर कि उस पर यूनानी शिल्पकला का भ्रम होता था। वास्तव में उसकी

बनावट स्पष्ट रूप से कह रही थी कि इस मूर्ति के शिल्पकार की कला पर यूनानी शिल्पकारों का विशेष प्रभाव पड़ा है। बालों के बांधने का ढंग तो सर्वथा विदेशी था। उसने पुजारी से पूछा—"यह मूर्ति यहां कैसे आई?"

"जी, यह पंडित सरूपकिशन के दादा को ज़मीन खोदते समय मिली थी। ये सभी मूर्तियां उन्हें यहीं से मिली थीं। इस खेत में से," उसने साथ के खेत की ओर संकेत करते हुए कहा, "मेंढ़ को चौड़ा करने के लिए ज़मीन खोद रहे थे कि उनकी कुदाल किसी सख्त चीज़ से टकराई और साथ ही पृथ्वी से रुधिर की धारा बह निकली। वह कांप उठे और धीरे-धीरे मिट्टी हटाने लगे। जब मिट्टी हटा चुके तो उन्हें यह सिर नज़र आया जो खून में लथ-पथ था।"

"लेकिन यह सिर तो पत्थर का है" श्याम ने हैरान होकर पूछा "इसमें से खून की धारा कैसे......."

"जी हां, लेकिन यह तो देवी का सिर था। पंडित सरूप किशन के दादा से अनजाने में यह खून हुआ। खैर, वह ज़मीन खोदते गए ताकि देवी के धड़ को भी निकाल लें। ज़मीन खोदते-खोदते उन्हें और बहुत-सी वस्तुएं मिलीं। उनमें एक वह चित्र भी है, जब राम, सीता और लछमण वनवास को जा रहे थे। और भी बहुत-सी छोटी-छोटी मूर्तियाँ निकलीं, लेकिन देवी का धड़ न मिला। देवी लोप हो गई थी।"

"वह क्यों?"

पुजारी ने श्याम के प्रश्न का उत्तर न दिया, और अपनी ही कहता चला गया "तब पंडित सरूप किशन के दादा बहुत घबराये। वह बड़े ईश्वर-भक्त प्राणी थे। जब उन्होंने देखा कि उनसे अपराध हुआ है और देवी लोप हो गई है तो उन्होंने प्रायश्चित्त किया और चालीस दिन तक व्रत रखा। उसी व्रत में उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। इसी

मन्नों के पेड़ के नीचे उनकी समाधि है। दूर-दूर से लोग इसकी पूजा को आते हैं।"

समाधि की पूजा होती थी और मूर्तियाँ आश्चर्यान्वित उसी भग्नावस्था में पड़ी थीं। देवी कितनी पवित्र, कितनी सुन्दर प्रतीत होती थी। ओठों पर अब भी वही अमिट मुस्कान थी। निस्संदेह इस सुराही जैसी नाज़ुक और बिलौरी गरदन से रक्त बहा होगा! जब यह सिर धड़ से पृथक हुआ होगा, तो शायद उस शिल्पकार का हृदय भी उस समय टुकड़े-टुकड़े हुआ होगा जिसने अपनी आत्मा का समस्त सौंदर्य तथा माधुर्य इस पत्थर की मूर्ति में ढाल दिया था। न जाने इस संसार में प्रत्येक सुन्दर वस्तु क्यों टुकड़े-टुकड़े हो जाती है और ये समाधिएं, कबरें और अनाड़ी शिल्पकारों द्वारा घड़ी हुई मूर्तियां और पत्थर की शिलाएं जिन पर चौड़े फन वाले नाग बने होते हैं क्यों शताब्दियों तक ज्यों-की-त्यों बनी रहती हैं? इन्हें दूध में नहलाया जाता है। इन पर फूल चढ़ाये जाते हैं। गांव की कुमारियां और बहुएं अपने जीवन की सर्वोच्च कामनायें इनसे मांगती हैं और वह जो अमिट सौंदर्य की स्वामिनी है, वह जिसके ओठों की मुस्कान में अबोध बालक की-सी सरलता झलक रही है, जिसका माथा किसी अलौकिक तेज से चमक रहा है, धूल-धूसरित हो रही है, उसे ऐसा आभास हुआ जैसे उस मूर्ति की गरदन से अब भी रक्त बह रहा है और यह रक्त उस समय तक बहता रहेगा जब तक बर्बर मानव के हृदय में उस प्रकाश की किरण नहीं फूटती जिसने उस पत्थर के टुकड़े के कण-कण में अपार सौंदर्य और मोहनी फूंक दी थी.......

पंडित सरूप किशन उस धर्मशाला का सरकारी पुरोहित था। आयु चालीस के लगभग होगी। कद असाधारणतया लम्बा जो उसके ब्राह्मणी ठाठ में और भी वृद्धि करता था। चौड़ा माथा, पतले ओंठ, जिन पर आत्माभिमान की छाप थी। निचला जबड़ा बहुत मज़बूत था और भवें ऊपर की ओर मुड़ी हुई थीं, जिस तरह पश्चिमी चित्रकार

'शैतान' की भवें दिखाते हैं और पूरबी चित्रकार किसी सुन्दर नर्तक की। आँखों के ऊपर के पपोटे पतले थे और भीतर एक बेचैन-सी चमक थी। ठोढ़ी नीचे की ओर झुकी हुई, गरदन ऊंची और कंधे चौड़े थे। अचकन के नीचे धोती और पांवों में चप्पल या खड़ावें। माथे पर चन्दन का चौड़ा तिलक और दोनों भवों के बीच चन्दन की रेखा त्रिशूल जैसी। कानों पर भी चन्दन की बिंदियां नज़र आती थीं जिनके बीच उसने चान्दी के जड़ाऊ बुन्दे पहिन रखे थे। अचकन के ऊपर लम्बी गरदन के दोनों ओर, छाती पर सफेद साफा लटका रहता था। उसकी सुन्दरता अजंता के एक देवता की-सी सुन्दरता थी और श्याम हैरान था कि उस सुन्दरता के भीतर इतना कपट कैसे रह सकता है? हां एक दो बातें उसे अवश्य संदेह में डाल देती थीं। एक तो सरूप किशन की आँखों की व्याकुल चमक थी, उसकी पुतलियों का रह-रह कर इधर-उधर घूमना था, जैसे वह हर समय अपने आस-पास के वाता-वरण को भेदपूर्ण दृष्टि से देख रहा हो और दूसरे उसके ओठों की वह स्थिर मुस्कान और आत्माभिमान था। सरूप किशन के ओंठ हर समय मुस्कराते रहते थे चाहे उसकी मनःस्थिति कैसी ही क्यों न हो, उस स्थायी मुस्कान से मन की शांति का नहीं वरन् धूर्त स्वभाव का पता चलता था। श्याम जानता था कि ऐसे व्यक्ति जो हर समय मुस्कराते रहते हैं या मुस्कराते रहें, वे कितने भयंकर होते हैं।

यदि सरूप किशन के रंग-रूप में अजंता के चित्रों का-सा आकर्षण था तो उसकी पत्नी दुर्गा में मिश्र देश की ममियों (रक्षित मृतक शरीर) जैसी निर्जीव शुष्कता थी। यद्यपि उसकी कमर काफी चौड़ी थी परन्तु कमर से ऊपर वह बिलकुल सूखी, मुरझाई हुई, और मृतक मम्मी की तरह नज़र आती थी। गालों की हड्डियां बाहर निकली हुई थीं और उन पर पीली, मटियाली-सी खाल मंढी हुई मालूम होती थी। ओंठ अत्यन्त पतले और आंखें छोटी-छोटी। ठोढ़ी छोटी और माथा बहुत

चौड़ा। मुंह तिकोना था। दांतों पर मस्सी घिसने और ओठ अखरोट की छाल से रंगने की बहुत शौकीन थी। दांत अच्छे थे लेकिन उसके चेहरे पर भद्दे मालूम होते थे। ऐसा लगता कि बाकी सारा चेहरा तो अच्छा-खासा है मगर दांत बुरे हैं या यों अनुभव होता कि ये दांत अच्छे हैं लेकिन यदि चेहरा बदल दिया जाता तो क्या ही अच्छा होता। आवाज़ भारी थी और कभी-कभी वह नाक में गुनगुनाती थी। कानों में सदैव मोर के पंखों के काले कुंडल पहिना करती थी। मोर के पंखों के काले कुंडल बहुत सुन्दर होते हैं और किसी सुन्दर स्त्री के कानों में उन्हें झूमते देखकर दिल पर नशा-सा छा जाता है। लेकिन यहां तो केवल कुंडल ही सुन्दर थे और ऐसा मालूम होता था कि जैसे कुंडल उसके चेहरे के साथ नहीं लटक रहे वरन् उन सुन्दर कुंडलों के साथ उसका चेहरा लटका दिया गया है। दुर्गा को देखकर एक विचित्र प्रकार की घृणा और कुरूपता का अनुभव होता था।

दुर्गा की छोटी-छोटी आंखों और पतले ओंठों पर हर समय एक अतृपित वासना की चमक मौजूद रहती थी और यह चमक पहली दृष्टि ही में हर किसी के दिल में इसके प्रति घृणा उत्पन्न कर देती थी। यद्यपि वह पूरी तरह अधेड़ हो चुकी थी लेकिन अभी तक उसके सारे तौर-तरीके कुवांरियों जैसे थे, या यों कहिये (यदि इससे अधिक स्पष्ट कहना हो तो) कि नई-नवेली बहुओं जैसे थे। उसके उन हाव-भावों से कइयों को घिनौनी आती थी और शायद उनमें सरूप किशन भी शामिल था। लेकिन दुर्गा की उन अदाओं और उसकी अतृपित वासना ने उसे पुलिस के सिपाहियों, कचहरी के प्यादों, बाज़ार के गरीब सुनारों, मालियों आदि में बहुत ख्याति दे दी थी। क्या हुआ यदि उसके धड़ के ऊपर का भाग मिश्र देश की मम्मियों जैसा था, उसके कूल्हे तो काफी चौड़े थे।

अजंता के चित्र और मिश्र की मम्मी ने मिलकर दुर्गादास को जन्म

दिया था। क्रॉस-ब्रीडिंग (Cross-Breeding) का इससे बुरा उदाहरण शायद कहीं और न मिल सकता था। कम-से-कम श्याम को तो ऐसे किसी उदाहरण का पता न था। दुर्गादास के कंधे चौड़े थे परन्तु धड़ सूखा हुआ था, किसी सूखे हुए वृक्ष की जड़ों की तरह जिसके पत्ते अभी तक हरे हों। बाईं टांग से लंगड़ा, एक आंख से काना। और काना भी कुछ इस प्रकार कि एक आंख अन्दर को धंसी हुई थी और उसमें से हर समय पानी सा रिसता रहता था। ऊपर का ओठ पतला और सुन्दर, निचला अत्यन्त भद्दा और मोटा। दो दांत हर वक्त बाहिर निकले रहते थे। ठोडी गोल थी जिसके मध्य में एक काला भद्दा मस्सा था। चेहरा तिकोना, गाल भरे और फूले हुए जिससे गोल ठोडी और भी छोटी बल्कि नाममात्र दिखाई देती थी। घुटे हुए माथे पर बाल हमेशा बिखरे रहते थे। गरदन छोटी थी लेकिन हाथ तकड़े थे और उंगलियां लम्बी थीं। छड़ी रखने पर भी घिसटता हुआ चलता था। बातें करते समय इस खोखले ढंग से हंसता था कि अकसर शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते थे। चाल में ही नहीं, सारे शरीर में घृणास्पद बेतुकापन था।

: १७ :

अगस्त के आरम्भ की एक संध्या को पंडित सरूप किशन ने अपनी बैठक में गांव के मुख्य-मुख्य ब्राह्मणों और महाजनों को एक आवश्यक मामले पर विचार करने के लिये बुलाया। लगभग चालीस-पचास लोग होंगे। इस बैठक में लाला बांशीराम, लाला हुकमचन्द, लाला फूलचन्द, लाला दीपचन्द, विसाखा मल, गज्जा मल, फंजी मल, और कोंहूराम महाजनों की ओर से सम्मिलित हुए थे। ये लोग अपने श्याम रंग वल्कि अधिकतर काले रंग, लम्बी नाक और दीन स्वर से पहचाने जा सकते थे। स्वर में रेशम की-सी कोमलता थी परन्तु शब्दों के अर्थ पर विचार करने से प्रत्येक शब्द दोधारी तलवार की तरह दोनों ओर काट करता हुआ मालूम होता था।

इस बुद्धिमत्ता ही ने इन महाजनों को इतना धनी बना दिया था और ये लोग अपनी जातीय-विशेषता को किसी प्रकार भी छोड़ने के लिये तैयार न थे। इन्होंने बड़ी-बड़ी पगड़ियां बांध रखी थीं। हाथों में सोने की बहुमूल्य अंगूठियों का प्रदर्शन कर रहे थे जिनमें लाल-लाल नगीने जड़े हुए थे। बल्कि लाला बांशीराम के पास तो सोने की घड़ी भी थी जिसमें सोने की जंजीर लगी हुई थी। वह बार-बार ज़ञ्जीर खींच कर घड़ी में समय देखता था। माथे पर बल डालकर अपनी मूंछों को सवांरने लगता था जो बार-बार ओंठों के कोनों में आ गिरती थीं। सोने की घड़ी के अतिरिक्त उनकी मोटी तोंद ने भी उसे अन्य महाजनों से श्रेष्ठतर कर दिया था जिनमें से किसी की भी उतनी मोटी तोंद न थी।

इस सभा में गांव के सिक्खों की ओर से भी कुछ एक प्रतिनिधि थे। ये लोग वास्तव में आधे सिक्ख और आधे सनातन धर्मी थे, जैसा

अवसर देखा वैसे हो गये। यह कुछ उन्हीं तक सीमित न था, गांव के अधिकतर निवासी इसी ढङ्ग के थे। वहगुरु का नाम भी लेते थे और शिवजी की पूजा भी करते थे। जिस तरह मन चाहा भक्ति कर ली। इन सिक्खों में सरदार केशरसिंह, सरदार वचत्तरसिंह और सरदार कलियारीसिंह प्रमुख थे।

मौजा घड़ा से भी कुछ लोग आये हुए थे। पंडित रुद्रभान जी, गंगू मिशर, बुद्ध पुरोहित और पंडित पेड़ाराम हजामत बनाये, नई कमीज़ें पहने, माथे पर तिलक लगाये, गले में मालायें डाले, कंधों पर अंगोछे रक्खे, आलती-पालती मारे विराजमान थे। वास्तव में ये लोग किसान थे। ऋतु, बीज, पानी, खाद, जगल की जड़ी-बूटियों आदि के विषय में आप इनसे बात कर लीजिये, आप इनकी बातों को अत्यन्त रोचक और लाभप्रद पायेंगे, परन्तु ये वेद शास्त्रों और इस प्रकार की सूक्ष्म धार्मिक बातों से सर्वथा अनभिज्ञ थे। परन्तु चूंकि हज़ारों वर्षों से ब्राह्मण चले आ रहे थे इसलिये अब अपनी पंडिताई का अस्तित्व रखने के लिये इस सभा में बड़े गण्य-मान्य बने बैठे थे। लेकिन इनकी मुख-मुद्राओं से इनके कोरेपन का पूरा-पूरा अनुमान हो जाता था। इस कृत्रिम गम्भीरता के होते हुए भी यह लोग मजलिस में बार-बार बेचैन हो उठते थे। करवट बदलते, एक दूसरे से कानाफूसी करते। कभी आंखें बन्द करके कोई अन्ट-शन्ट श्लोक गुनगुनाने लगते, ताकि दूसरे ब्राह्मणों पर उनका प्रभाव पड़ सके। पंडित-समाज की आचारविधि और अज्ञानता यहां पूर्णतया स्पष्ट हो रही थी। दुर्गादास इस मजलिस में इधर-उधर घिसटता हुआ लोगों को शर्बत, पानी आदि के लिये पूछ रहा था। उसकी खोखली हंसी बार-बार कमरे में गूंज उठती थी।

"पंडित सरूपकिशन जी कहां हैं?" लाला बांशीराम ने अपनी सोने की घड़ी को जेब से दसवीं बार निकालते हुए पूछा.

"अभी आते हैं।" दुर्गादास ने क्षमाप्रार्थी होकर कहा "ऊपर

ध्यान में मग्न हैं–खी-खी-खी।" वह हंसते हुए अपने दोनों हाथ मलने लगा।

लाला कोंडूराम बोले "लोहे का भाव चढ़ गया है।"

छाया का भाई रोशनलाल बोला "पीर के मेले में कितने दिन रह गये हैं?"

दुर्गादास बोला, "बारह दिन—खी, खी, खी—अबकी बहुत रौनक होगी। हम सब लोग मेले पर चलेंगे। खी, खी, खी—पंडित रोशनलाल जी आप सब लोग भी मेले पर चलेंगे ना! खी, खी, खी।"

"सब लोग" से दुर्गादास का क्या अभिप्राय था, इसे सब लोग समझते थे। बैठक में एक कहकहा पड़ा। रोशन लज्जित हो गया। दुर्गादास के मुंह से हंसी की चीखें निकल रही थीं। उसके विचार में उसने कोई बहुत अच्छा मज़ाक किया था जिस पर सब लोग यों प्रसन्न होकर कहकहे लगा रहे थे।

"हो, हो, हो–खी, खी, खी–" वह हंस रहा था और झूम रहा था। उसका निचला ओंठ और भी लटक गया था और उसके सामने के दो दांत इस तरह बाहर दिखाई दे रहे थे जिस तरह हिन्दू चित्रकार अपनी देवमाला के चित्रों में राक्षसों के दांत दिखाया करते हैं। वह सचमुच उस समय राक्षस ही दिखाई देता था।

ठीक उसी समय पंडित सरूप किशन जी ने बैठक में प्रवेश किया। सब लोगों ने उठकर उन्हें नमस्कार किया। बैठक "पालागन महाराज, पालागन महाराज" की आवाज़ों से गूंज उठी। पंडितजी मुस्कराये। मुस्कान उनके ओंठों से फिसलकर सारे चेहरे पर फैल गई। वह एक शान के साथ आगे बढ़े और अपने खाली सिंहासन पर जहां तकिया लगा था, बैठ गये। उनके बैठने के बाद गांव के लोग भी अपने-अपने स्थान पर बैठ गये और सारी सभा में सन्नाटा छा गया। पंडित जी के सिंहासन के निकट दो लकड़ी की चौकियां लगी थीं। इनमें एक पर

योग वशिष्ट पड़ा था और दूसरी पर एक पीतल की थाली जिसमें घी का दिया जल रहा था और अगरबत्ती भी। अगरबत्ती का सुवासित धुंआ कमरे के वायुमण्डल में चक्कर काटता हुआ चारों ओर फैल रहा था।

सब लोग कान लगाये बैठे थे। पंडित जी बोले "सज्जनों! आज मैंने आपको एक अत्यंत जटिल विषय पर विचार करने के लिए बुलाया है। पिछले कई दिनों से मैं इस विषय के हर भले-बुरे दृष्टिकोण पर विचार कर रहा था। मन में सौ प्रकार की बातें उठती थीं। दुनियादारी और धर्म संकट की। कभी एक का पलड़ा भारी हो जाता था तो कभी दूसरे का। इसी दुविधा में दिन निकलते जा रहे थे कि आप को बुलाऊं या न बुलाऊं। परन्तु कल रात जब मैं स्वस्तिवाचन करके योग वशिष्ट पढ़ने लगा तो मेरे सामने यह मंत्र आया" और इतना कह पंडितजी ने योग वशिष्ट को खोलकर उसके पन्ने उलटने आरंभ किये।

कमरे में गहरा सन्नाटा था। केवल पन्ने उलटने की आवाज़ सुनाई देती थी। बिरादरी वालों ने जैसे अपने श्वास तक भी रोक रक्खे थे।

"हां, यही मंत्र था" पंडित जी ने ऊंची आवाज़ में कहा और फिर उन्होंने मंत्र का उच्चारण किया। उच्चारण के बाद महाजन तो चुपचाप बैठे रहे लेकिन कई ब्राह्मणों ने ऊंचे स्वर में वाह-वाह की, किसी ने सिर हिलाया मानो कह रहा हो—इस मंत्र का अर्थ केवल मैं ही समझता हूँ। किसी ने दीर्घ श्वास भर कर इस प्रकार राम-राम किया मानो कह रहा हो—अंधा क्या जाने वसंत की बहार! इस मंत्र में वेदांत का जो सागर बन्द है उसे मेरे अतिरिक्त अन्य कौन समझ सकता है! मंत्र तो पंडित पेड़ाराम की समझ में भी न आया था परन्तु यहां कुछ-न-कुछ कहना आवश्यक था अन्यथा सारी पंडिताई धरी-की-धरी रह जाती। आंखें बन्द कर वह ऊंचे स्वर में बोले—"हे भगवान्, तेरी लीला अपर-

प्यार है। अब इसका अर्थ जो चाहे ले लीजिये।

दुर्गादास अपनी खोखली हंसी हंसने लगा परन्तु किसी ने उस पर ध्यान न दिया।

गंगू मिशर बोला—"वाह गुरुजी! योग वशिष्ट तो बस योग वशिष्ट ही है, जो इसका पठन-पाठन कर ले उसका तीनों लोक में भला होता है।"

पंडित सरूप किशन मुस्कराते हुए बोले—"इस मंत्र का अर्थ यह है कि जीवन दो दिन का मेला है।"

दुर्गादास अपनी खोखली हंसी हंसते हुए बोला—"खी, खी, खी-पीर का मेला......"

"दुर्गादास!" पंडितजी ने गरज कर कहा—"चुप रहो।"

दुर्गादास की हंसी उसके कण्ठ में गड़गड़ाहट-सी उत्पन्न करती हुई दब गई। उसका निचला ओंठ फिर लटक आया और वह अपनी कानी आंख में बहते हुए पानी को अंगोछे से पोंछने लगा।

पंडित जी ने अपनी मुस्कान को पुनः अपने मुख पर धारण कर लिया। बोले "सज्जनो! इसका अर्थ यह है कि जीवन दो दिन का मेला है, इसे प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत करो परन्तु...." एक-दो क्षण चुप रहने के बाद उन्होंने मंत्र का दूसरा श्लोक पढ़ा और फिर बोले "परन्तु इसके साथ ही तुम्हारा यह कर्तव्य है कि जीवन के मेले में धर्म से कभी विमुख न हो क्योंकि धर्म ही से मुक्ति प्राप्त होती है।"

"सत्य है, बिल्कुल सत्य है" कई ब्राह्मणों ने एक साथ कहा।

लाला बांशीराम बोले "पंडित जी, आपकी वाणी में अमृत घुला हुआ है।"

पंडित सरूपकिशन ने कृतज्ञतापूर्वक लाला बांशीराम की ओर देखा।

"परन्तु अब यह बताइये" लाला बांशीराम ने बात जारी रखते हुए कहा "कि आपने आज हमें क्यों याद किया है ?"

लाला फंजीमल सुनार बोले, "मैं पंडित जी के बुलावे पर दुकान बन्द करके चला आया। आज एक गूजर ने अपनी बीबी की हंसली ले जाने को कहा था। आकर लौट गया होगा बेचारा।"

वृद्ध परोहित ने अपनी कठमाला संवारते हुए "सतनाम, सतनाम" कहा।

सरदार बच्चत्तरसिंह ने सरदार खेशरसिंह के कान में कहा, "बिल्कुल ऐसा ही एक श्लोक हमारे सच्चे पादशाह बाबा नानक ने कहा है" यह कह उन्होंने एक श्लोक सरदार खेशरसिंह के कान में फूंका।

सरदार खेशरसिंह गांव के पटवारी थे और दिनभर खेतों में जरीब* लिये फिरते थे या खतूनी और खेवट की रट लगाते रहते थे। जपजी साहब उन्होंने बिल्कुल ऊटपटांग रूप से रट रखा था और स्नान करते समय उसका पाठ वह इस तेज़ी से किया करते थे मानो सिर पर से कोई बला टाल रहे हों। वे इस श्लोक का तो क्या संसार के किसी श्लोक का भी अर्थ न समझ सकते थे। उन्हें केवल एक ही श्लोक आता था—सबसे पहला नाम रुपये का, दूसरा नाम रुपये का और सबसे अंतिम और सबसे सच्चा नाम रुपये का। परन्तु इस समय वह भी ज्ञान-ध्यान की बातें करने लगे। अपनी लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेर कर बोले, "बिलकिल, बिलकिल, (वे सदैव बिल्कुल को बिलकिल कहते थे) यह बाबा जी का ही श्लोक है जिसे इन हिन्दुओं ने चुराकर योग वशिष्ट में रख लिया है।" और इतना कह वह मुस्कराये। बच्चत्तरसिंह भी उनके अपार ज्ञान पर मुस्कराने लगे और सरदार गुल्हाटीसिंह ने जो इस वार्तालाप से सर्वथा स्वतन्त्र रहे थे

---

* भूमि मापने का पैमाना

स्पार है। अब इसका अर्थ जो चाहे ले लीजिये।

दुर्गादास अपनी खोखली हंसी हंसने लगा परन्तु किसी ने उस पर ध्यान न दिया।

गंगू मिशर बोला—"वाह गुरुजी! योग वशिष्ट तो बस योग वशिष्ट ही है, जो इसका पठन-पाठन कर ले उसका तीनों लोक में भला होता है।"

पंडित सरूप किशन मुस्कराते हुए बोले—"इस मंत्र का अर्थ यह है कि जीवन दो दिन का मेला है।"

दुर्गादास अपनी खोखली हंसी हंसते हुए बोला—"खी, खी, खी-पीर का मेला......"

"दुर्गादास!" पंडितजी ने गरज कर कहा—"चुप रहो।"

दुर्गादास की हंसी उसके कण्ठ में गड़गड़ाहट-सी उत्पन्न करती हुई दब गई। उसका निचला ओंठ फिर लटक आया और वह अपनी कानी आंख में बहते हुए पानी को अंगोछे से पोंछने लगा।

पंडित जी ने अपनी मुस्कान को पुनः अपने मुख पर धारण कर लिया। बोले "सज्जनो! इसका अर्थ यह है कि जीवन दो दिन का मेला है, इसे प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत करो परन्तु...." एक-दो क्षण चुप रहने के बाद उन्होंने मंत्र का दूसरा श्लोक पढ़ा और फिर बोले "परन्तु इसके साथ ही तुम्हारा यह कर्तव्य है कि जीवन के मेले में धर्म से कभी विमुख न हो क्योंकि धर्म ही से मुक्ति प्राप्त होती है।"

"सत्य है, बिल्कुल सत्य है" कई ब्राह्मणों ने एक साथ कहा।

लाला बांशीराम बोले "पंडित जी, आपकी वाणी में अमृत घुला हुआ है।"

पंडित सरूपकिशन ने कृतज्ञतापूर्वक लाला बांशीराम की ओर देखा।

"परन्तु अब यह बताइये" लाला बांशीराम ने बात जारी रखते हुए कहा "कि आपने आज हमें क्यों याद किया है ?"

लाला फंजीमल सुनार बोले, "मैं पंडित जी के बुलाने पर दुकान बन्द करके चला आया। आज एक गूजर ने अपनी बीवी की हंसली ले जाने को कहा था। आकर लौट गया होगा बेचारा।"

वृद्ध परोहित ने अपनी कंठमाला संवारते हुए "सतनाम, सतनाम" कहा।

सरदार बच्चत्तरसिंह ने सरदार केशरसिंह के कान में कहा, "बिल्कुल ऐसा ही एक श्लोक हमारे सच्चे पादशाह बाबा नानक ने कहा है" यह कह उन्होंने एक श्लोक सरदार केशरसिंह के कान में फूंका।

सरदार केशरसिंह गांव के पटवारी थे और दिनभर खेतों में जरीबक्ष लिये फिरते थे या खतूनी और खेवट की रट लगाते रहते थे। जपजी साहब उन्होंने बिल्कुल ऊटपटांग रूप से रट रखा था और स्नान करते समय उसका पाठ वह इस तेज़ी से किया करते थे मानो सिर पर से कोई बला टाल रहे हों। वे इस श्लोक का तो क्या संसार के किसी श्लोक का भी अर्थ न समझ सकते थे। उन्हें केवल एक ही श्लोक आता था—सबसे पहला नाम रुपये का, दूसरा नाम रुपये का और सबसे अंतिम और सबसे सच्चा नाम रुपये का। परन्तु इस समय वह भी ज्ञान-ध्यान की बातें करने लगे। अपनी लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेर कर बोले, "बिलकिल, बिलकिल, (वे सदैव बिल्कुल को बिलकिल कहते थे) यह बाबा जी का ही श्लोक है जिसे इन हिन्दुओं ने चुराकर योग वशिष्ट में रख लिया है।" और इतना कह वह मुस्कराये। बच्चत्तरसिंह भी उनके अपार ज्ञान पर मुस्कराने लगे और सरदार गुरुदासिंह ने जो इस वार्तालाप से सर्वथा स्वतन्त्र रहे थे

भूमि मापने का पैमाना

जब अपने दोनों भाइयों को मुस्कराते देखा तो वह भी उस मुस्कान में सम्मिलित हो गये। पंडित सरूपकिशन ने जब इन तीनों को मुस्कराते देखा तो उन्हें भी अपने प्रशंसकों में मिला लिया। मुस्कराते हुए बोले, "सरदार बच्चत्तरसिंह जी, आज मैंने आपको और बाकी सब भाइयों को इसलिये कष्ट दिया है कि आप लोग एक अत्यन्त दुखदायक बात का फैसला कर दें।"

सरदार गुल्हाटीसिंह बोले "वाहगुरु किरपा करेंगे। कहिये कौनसी ऐसी दुखदायक बात है?"

पंडित सरूपकिशन की भवें और भी तन गईं। बारीक पपोटों के नीचे आंखें और भी बेचैन हो उठीं। चन्दन का टीका जैसे अग्नि की ज्वाला बन चमकने लगा। बोले, "धर्म की रत्ता करना मेरा, आपका, सबका कर्तव्य है। कल जब मैं योग वशिष्ट का यह मंत्र पढ़कर सोया तो मैंने स्वप्न में अपने दादा जी को देखा।"

"सतनाम, सतनाम" मिशर गंगू ने कहा।

"मैं उनके चरणों में गिर पड़ा। दादा जी कहने लगे बेटा, धर्म की रचा में यदि तुम्हें प्राण भी देने पड़ें तो भी संकोच न करना। जो मामला है स्पष्ट अपनी बिरादरी के सम्मुख रख दे। बिरादरी कभी तेरा कहा न टालेगी, इतना कह दादा जी अलोप हो गये।"

"वाहगुरु-वाहगुरु—सच्चे पादशाह", सरदार बच्चत्तर सिंह ने प्रभावित होकर कहा।

"आपके दादा जी तो संत थे। संतों का कहा कौन टाल सकता है। आज्ञा दीजिये महाराज!" लाला कौड़ूमल ने हाथ बांधकर कहा।

रोशन बोला, "क्या फिर किसी से कोई अपराध हुआ है?"

"हां" पंडित सरूप किशन गरज कर बोले "आपके सामने आपका धर्म नष्ट हुआ जा रहा है और आपको लज्जा नहीं आती। वह बदचलन

चन्द्रा जिसे आपने और सारी बिरादरी ने उसकी मां सहित गाँव से निकाल दिया था, आज फिर इसी गाँव में आकर एक राजपूत का जन्म भ्रष्ट कर रही है। एक राजपूत घराने का सर्वनाश हो रहा है और आप लोग आँखें मूंदे पड़े हैं। वह मुसलमान डाक्टर भी उस अछूत कुलटा के पक्ष में है और डटकर खुले-आम हमारे धर्म पर आक्रमण कर रहा है और आप लोग सब कुछ देख रहे हैं और चुप्पी साधे बैठे हैं। सब कुछ सुन रहे हैं और चूं तक नहीं करते। यदि ऐसा ही होता रहा तो एक दिन इस धरती पर से हमारे धर्म का नाश हो जायेगा और इस गांव पर ऐसा वज्रपात होगा कि आप उस समय हाथ मल-मलकर पछतायेंगे और कुछ न कर सकेंगे।"

सारी सभा कांप रही थी केवल महाजन लोग शांत बैठे थे। लाला बांशीराम बोले, "पंडित जी आपने बिल्कुल सत्य कहा है लेकिन आप ही बताइये, हम क्या कर सकते हैं? मोहनसिंह के स्वभाव को तो आप जानते ही हैं वह किसी की नहीं सुनता और इस समय जब कि वह घावों से बेहोश अस्पताल में पड़ा है और चन्द्रा इतनी तन्मयता से उस की देख-रेख कर रही है, वह कब हमारी सुनेगा। उसे अच्छा हो लेने दीजिये फिर उसे समझायेंगे।"

"हाँ, हाँ" कई लोगों ने लाला बांशीराम की हां में हां मिलाई।

"उसे अच्छा होने दीजिये" पंडित सरूप किशन ने व्यंगपूर्वक मुस्कराते हुए कहा "फिर वह चन्द्रा से विवाह कर लेगा और गांव में एक और ब्राह्मण का जन्म भ्रष्ट हो जायेगा। राक्षसबुद्धि वाले लोग बढ़ते जायंगे और देवताओं का धर्म खतरे में पड़ जायेगा। मैं कहता हूं उसकी देख रेख क्या उसके सम्बन्धी नहीं कर सकते?"

मोहनसिंह का सम्बन्धी भी वहीं बैठा था। वह उठा और हाथ जोड़कर कहने लगा "मैं बिरादरी के सामने हाथ बांध कर प्रार्थना करता हूं कि मेरे सम्बन्धी के धर्म की रक्षा की जाए।"

जब अपने दोनों भाइयों को मुस्कराते देखा तो वह भी उस मुस्कान में सम्मिलित हो गये। पंडित सरूपकिशन ने जब इन तीनों को मुस्कराते देखा तो उन्हें भी अपने प्रशंसकों में मिला लिया। मुस्कराते हुए बोले, "सरदार बच्चत्तरसिंह जी, आज मैंने आपको और बाकी सब भाइयों को इसलिये कष्ट दिया है कि आप लोग एक अत्यन्त दुखदायक बात का फैसला कर दें।"

सरदार गुरुहाटीसिंह बोले "वाहगुरु किरपा करेंगे। कहिये कौनसी ऐसी दुखदायक बात है ?"

पंडित सरूपकिशन की भवें और भी तन गईं। बारीक पपोटों के नीचे आंखें और भी बेचैन हो उठीं। चन्दन का टीका जैसे अग्नि की ज्वाला बन चमकने लगा। बोले, "धर्म की रक्षा करना मेरा, आपका, सबका कर्तव्य है। कल जब मैं योग वशिष्ट का यह मंत्र पढ़कर सोया तो मैंने स्वप्न में अपने दादा जी को देखा।"

"सतनाम, सतनाम" मिशर गंगू ने कहा।

"मैं उनके चरणों में गिर पड़ा। दादा जी कहने लगे बेटा, धर्म की रक्षा में यदि तुम्हें प्राण भी देने पड़ें तो भी संकोच न करना। जो मामला है स्पष्ट अपनी बिरादरी के सम्मुख रख दे। बिरादरी कभी तेरा कहा न टालेगी, इतना कह दादा जी अलोप हो गये।"

"वाहगुरु-वाहगुरु—सच्चे पादशाह", सरदार बच्चत्तर सिंह ने प्रभावित होकर कहा।

"आपके दादा जी तो संत थे। संतों का कहा कौन टाल सकता है। आज्ञा दीजिये महाराज!" लाला कौड़ूमल ने हाथ बांधकर कहा।

रोशन बोला, "क्या फिर किसी से कोई अपराध हुआ है ?"

"हां" पंडित सरूप किशन गरज कर बोले "आपके सामने आपका धर्म नष्ट हुआ जा रहा है और आपको

चन्द्रा जिसे आपने और सारी बिरादरी ने उसकी मां सहित गाँव से निकाल दिया था, आज फिर इसी गाँव में आकर एक राजपूत का जन्म भ्रष्ट कर रही है। एक राजपूत घराने का सर्वनाश हो रहा है और आप लोग आँखें मूंदे पड़े हैं। वह मुसलमान डाक्टर भी उस अछूत कुलटा के पक्ष में है और डटकर खुले-आम हमारे धर्म पर आक्रमण कर रहा है और आप लोग सब कुछ देख रहे हैं और चुप्पी साधे बैठे हैं। सब कुछ सुन रहे हैं और चूं तक नहीं करते। यदि ऐसा ही होता रहा तो एक दिन इस धरती पर से हमारे धर्म का नाश हो जायेगा और इस गांव पर ऐसा वज्रपात होगा कि आप उस समय हाथ मल-मलकर पछतायेंगे और कुछ न कर सकेंगे।"

सारी सभा कांप रही थी केवल महाजन लोग शांत बैठे थे। लाला बांशीराम बोले, "पंडित जी आपने बिल्कुल सत्य कहा है लेकिन आप ही बताइये, हम क्या कर सकते हैं? मोहनसिंह के स्वभाव को तो आप जानते ही हैं वह किसी की नहीं सुनता और इस समय जब कि वह घावों से बेहोश अस्पताल में पड़ा है और चन्द्रा इतनी तन्मयता से उस की देख-रेख कर रही है, वह कब हमारी सुनेगा। उसे अच्छा हो लेने दीजिये फिर उसे समझायेंगे।"

"हाँ, हाँ" कई लोगों ने लाला बांशीराम की हां में हां मिलाई।

"उसे अच्छा होने दीजिये" पंडित सरूप किशन ने व्यंगपूर्वक मुस्कराते हुए कहा "फिर वह चन्द्रा से विवाह कर लेगा और गांव में एक और ब्राह्मण का जन्म भ्रष्ट हो जायेगा। राक्षसबुद्धि वाले लोग बढ़ते जायंगे और देवताओं का धर्म खतरे में पड़ जायेगा। मैं कहता हूं उसकी देख रेख क्या उसके सम्बन्धी नहीं कर सकते?"

मोहनसिंह का सम्बन्धी भी वहीं बैठा था। वह उठा और हाथ जोड़कर कहने लगा "मैं बिरादरी के सामने हाथ बांध कर प्रार्थना करता हूं कि मेरे सम्बन्धी के धर्म की रक्षा की जाए।"

"लेकिन" लाला भंजीमल सुनार बोले "यह बड़ी कठिन बात है। डाक्टर बड़ा भलामानस और शरीफ़ है। आज तक उसने कभी—" वह चुप हो गये क्योंकि पंडित जी के माथे पर बल आ गया था और वह उसकी ओर क्रुद्ध नेत्रों से देख रहे थे।

पंडित जी बोले "मैं आपको एक उपाय बताता हूं। डाक्टर साहब के विरुद्ध तो इसी समय अर्जी दे देनी चाहिये। बाकी रह गई चन्द्रा, तो उसके सम्बन्ध में भी मैंने एक योजना सोच ली है—" यह कह कर उन्होंने दुर्गादास को इशारा किया और कहा, "चन्द्रा की मां को बुलाओ।"

"चन्द्रा की मां"—कई आवाजें एक साथ आईं।

पंडित जी ने विजयी दृष्टि से चारों ओर देखा और बोले "मैंने आज प्रातः चन्द्रा की मां को बुलाया था। वह भी चन्द्रा की इस हरकत पर प्रसन्न नहीं है। बातों-बातों में उससे पता चला कि चन्द्रा अभी नाबालिग़ है। यदि चन्द्रा की मां चाहे तो—परन्तु ठहरिये, अभी आपके सामने सब बातें हो जाती हैं। मैंने आज प्रातः से उसको यहाँ बैठा रखा है।"

दुर्गादास हंसता हुआ चन्द्रा की मां को अपने साथ ले आया। चन्द्रा की मां बैठक की दहलीज़ में लग कर खड़ी हो गई।

बैठक में एक शोर मच गया। लोग तरह-तरह की बातें करने लगे। हर व्यक्ति इस मामले में दिलचस्पी ले रहा था, कुछ इस हद तक मानो यह मामला केवल उन्हीं के कुटुम्ब से सम्बन्ध रखता हो। खूब चमक-चमक कर इस मामले के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर विचार प्रकट किये जाने लगे।

पंडित जी ऊंचे स्वर में बोले, "अब बात यह है चन्द्रा की मां............."

जब चन्द्रा की मां दुर्गा के पास से उठकर भीतर चली गई तो दुर्गा जल्दी-जल्दी आंगन में से होती हुई बाहिर निकल गई और इधर-उधर देखती हुई घर की पश्चिमी दीवार के साथ-साथ उस कोने पर जा पहुँची जहां से मक्की के खेत शुरू होते थे। उसके पहुँचते ही खेत में सरसराहट उत्पन्न हुई और एक लम्बा मुसंडा गूजर खेत में से निकल आया और उसका हाथ पकड़ कर बोला "मैं कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

"हाय, हाय" दुर्गा अपने ओठों पर उंगली रखकर लज्जाते हुए नाक में गुनगुनाई "मैं क्या करती, देखते नहीं घर में कितने मेहमान आये हुए हैं।"

: १८ :

श्याम बाग में अपने कुंज में विचार-निमग्न बैठा था कि सैयदां ने आकर उसे सलाम किया।

"सलाम बीबी सैयदां" उसने मुस्करा कर कहा "क्या अब सौंफ के बाकी पौधों को भी काटने की इच्छा है?"

सैयदां के हाथ में दरांती थी—परन्तु सैयदां के हाथ में तो सदैव ही कुछ-न-कुछ होता था—कभी दरांती, कभी कुदाली, कभी ढोरों के लिये, घास कभी मक्की के पौदों का गट्ठा, चरी, साग कुछ न कुछ अवश्य होता था, क्योंकि वह मज़दूर थी। उसका कुरता कुहनियों से फटा हुआ था। निरंतर काम करने से हाथ बेढब और कुरूप हो गये थे। भूरे मटियाले, मेंढक के हाथ-पांव की तरह घिनौने। परन्तु कुहनियों के निकट जहां से कुरता फटा हुआ था चमड़ी का रंग दूध की तरह सफेद दिखाई देता था। बेचारी सैयदां! एक मज़दूर औरत का यौवन उसकी हांडी की तरह दो दिन में सारी चमक जाती रहती है। हालांकि होना यह चाहिये कि मज़दूर औरत का यौवन और सौन्दर्य देर तक स्थिर रहे क्योंकि प्राकृतिक सौन्दर्य कृत्रिम टीप-टाप पर इतना अश्रित नहीं होता। मज़दूर यौवन उच्च वर्ग की स्त्रियों की तरह दिन भर दपन्दानों, साड़ियों, ग़ाज़े पौडर आदि में नहीं डूबी रहती।

श्याम कुछ देर सोचने लगा कि यदि ऐसी औरत को दिन-भर परिश्रम करने के बाद पेट भरकर खाना भी न मिले तो फिर क्या हो? श्याम ने आज तक ऐसी कोई स्त्री न देखी थी जो खाना खाये बिना अपने सौन्दर्य को स्थिर बनाए रख सकती हो। यद्यपि कुछ एक व्यक्तियों के

मस्तिष्क में सच्चे सौंदर्य की यही चरम-सीमा है। कहा जाता है कि कवि बॉयरन किसी सुन्दर स्त्री को खाना खाते न देख सकता था। बॉयरन के सम्बन्ध में बहुत सी बातें योंही घड़ ली गई हैं, आत्म-प्रवंचना ही के लिये, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि बहुत से लोग पूर्ण विश्वास और पूर्ण अज्ञानता के साथ इस धारणा में आस्था रखते हैं। बहुत से कवियों का यदि वश चले तो बेचारी सुन्दर स्त्री को केवल हवा पर ही जीने दें। संभवतः इसीलिये बहुत से कवियों ने सुन्दर स्त्री की कमर ही ग़ायब कर दी थी। उसने आजतक कोई ऐसी स्त्री न देखी थी जिसकी कमर न हो। फिर एक और अचम्भे की बात तो यह थी कि सुन्दर स्त्री की आंखों, केशों, कपोलों, ओठों, बाहों, पावों, टखनों, पिंडलियों, रानों आदि प्रत्येक अंग का वर्णन किया जाता था और इन अंगों की प्रशंसा में धरती-आकाश मिलाये जाते थे परन्तु बेचारे पेट का कहीं वर्णन ही न था। शायद कभी सुन्दर स्त्री का पेट न होता होगा। कम-से-कम उन कवियों के शब्द-कोश में तो इस नाम की कोई चीज़ न थी। ये कवि लोग अपने आपको सौंदर्य के उपासक मानते थे और यद्यपि स्वयं खाना खाये बिना एक क्षण भी जीवित न रह सकते थे परन्तु सुन्दर स्त्री के सम्बन्ध में वह इस 'बेहूदगी' की कल्पना न कर सकते थे। उन के विचार में सौंदर्य—पेट, बच्चे, रोग, सामाजिक व्यवस्था और इस प्रकार की अन्य बेहूदा बातों पर आश्रित नहीं होता। इसलिये यदि वे कभी भूले-भटके अपनी कविता में किसी मज़दूर स्त्री का चित्र खींचते भी थे तो उस के चिन्तातुर सौंदर्य का वर्णन ऐसे मनोहर ढंग से करते थे कि वह मज़दूर स्त्री अन्य स्त्रियों से भी अधिक सुन्दर प्रतीत होती थी। और चाहे वह मजदूर स्त्री पत्थर ही क्यों न कूट रही हो वे उसके हाथ गुलाबी दिखलाते थे। गुलाबी हाथ! सैयदां के हाथ उसके सामने थे यद्यपि उन हाथों को कभी पत्थर कूटने नहीं पड़े थे। गुलाबी हाथ और गुलाबी कपोल! जब दिन भर खेत में काम करना पड़े, सुबह-शाम खाना पकाना पड़े, रात को पति की सेवा, बच्चे,

नींद भी पूरी प्राप्त न हो —और यदि इस अथनक परिश्रम के बाद खाना भी प्राप्त न हो तो ऐसी अवस्था में गुलाबी हाथों और गुलाबी कपोलों की जो दुर्दशा बनती है उसे यह कवि लोग कैसे जान सकते हैं ? श्याम का मुख लाल होने लगा। फिर अपने मन की कल्पना पर वह स्वयं ही मुस्करा उठा। उसने सोचा – मैं कुछ कम विलासी और सौंदर्य का पुजारी नहीं हूँ। मेरा भी तो यही जी चाहता है कि इन मजदूर स्त्रियों का सौंदर्य जो सचमुच ही मध्य वर्ग और उच्च श्रेणी की स्त्रियों से कहीं अधिक मनोहर, रमणीक एवं स्वस्थ होता है, वर्षों तक इसी तरह स्थिर रहे। परन्तु इस काम के लिये शायद इस समाज की सारी व्यवस्था को बदलना होगा। यदि संसार में वह सौंदर्य चाहता है तो समाज की वर्तमान अन्यायपूर्ण व्यवस्था का परिवर्तन किये बिना प्राप्त नहीं हो सकता। सुन्दर स्त्री के सुन्दर ओठों का वर्णन करते समय उन ओठों के भीतर छिपी हुई भूख का वर्णन भी आवश्यक होगा........ अरे, वह कहां-से-कहां भटक गया था।

सैयदां कह रही थी, "मैं इधर तरकारी की क्यारियों में निलाई करने आई थी। सोचा, आपको भी सलाम करती चलूं।"

सलाम ! इस सलाम शब्द ने उसे बहुत चिढ़ थी। चिढ़ थी ? क्या सचमुच उसे चिढ़ थी ? क्या अपने हृदय पर हाथ रख कर वह विश्वास के साथ कह सकता था कि उसे "सलाम" से चिढ़ थी ? झूठा ! वह चिढ़ वास्तविक न थी, कल्पित थी। यदि उसे सलाम से चिढ़ थी तो जब लोग उसे सलाम करते थे तो वह मन-ही-मन में प्रसन्न क्यों होता था ? यह ऊंच-नीच ! यह जंजीर की दो कड़ियां— वह क्या इन से मुक्त था ? सैयदां उस पर लुब्ध तो न थी जो उसे सलाम करने चली आई थी ? सैयदां उसके गांव की बहू थी। वह नम्बरदार का लड़का था। परन्तु यदि वह यह कहे कि उसे इस जन्जीर की दोनों कड़ियों से घृणा थी तो उसे इसके लिए प्रत्यक्ष क्रियात्मक प्रमाण देना होगा। क्रियात्मक प्रमाण क्या दूं ? श्याम के मन में कोई सोच-

पूर्वक कहने लगा 'क्या सैयदां को अपने कंधे पर बिठा लूं ? क्या इसकी गरदन में अपनी बाहें डाल दूं और रोकर कहूं—कामरेड सैयदां, मुझे क्षमा कर दो। समाज ने तुम पर जो अत्याचार किये हैं उनके लिए मैं तुम से क्षमा चाहता हूं। एक प्रकार से मैं ही इन अत्याचारों के लिए उत्तरदायी हूं, इसलिए ऐ कामरेड सैयदां मेरे मुंह पर थूक ! मेरे माथे पर थूक ! मेरे बालों में थूक ! इनक़लाब ज़िन्दाबाद !—'एकाएक वह जोर-जोरसे हंसने लगा।

सैयदां हैरानी से उसकी ओर देखने लगी। बोली, "क्या बात है साहब, क्या बात है ?"

वह हंसते हुए कहने लगा। "कुछ नहीं, कुछ नहीं। यों ही हृदय में एक तरंग आ गई थी" उसकी प्रसन्नता फिर उभर आई। बोला, "बैठो, बैठो, कोई नई बात सुनाओ—बात असल में यह है सैयदां..." वह इतना कह कर रुक गया। "बात असल में यह है" यह तो अलीजू की टेक थी। वह रुक-रुककर बोला "सैयदां छुट्टियों में काम-काज तो होता नहीं, बस विचारों के सपनों में रहता हूं।"

सैयदां ने एक दीर्घ श्वास लेते हुए कहा "अपना-अपना भाग्य है। हमें इतना काम होता है कि सोचने की फुरसत ही नहीं होती।"

"ठीक है" श्याम ने बात टालने के लिये कहा "अपना-अपना भाग्य है" वह पुनः उस विचार-धारा में न बहना चाहता था।

यह सुनकर सैयदां को मानो किसी से शिकायत न रही। प्रसन्नता-पूर्वक बोली "क्या आपको मालूम है कि इन दिनों गांव में बड़ी हल-चल मची हुई है ?"

"नहीं तो, क्या बात है ?"

"वही मोहनसिंह और चन्द्रा वाला मामला है।"

श्याम ने यह प्रकट करने के लिये कि वह तन्मयता से सुन रहा है अपना सिर हिलाया।

सैयदां ने अपनी शलवार के नेफे से नसवार की डिबिया निकाली। टीन की छोटी सी डिबिया, जिसके ढकने पर चेहरा देखने के लिये एक गोल शीशा लगा हुआ था। सैयदां ने उस शीशे में दायें-बायें मुड़कर अपना मुख देखा, फिर बालों को ठीक किया, फिर डिबिया खोल कर उसमें से नसवार की चुटकी भरी और अपने मुंह से दायें-बायें, ऊपर-नीचे मसूढ़ों पर अच्छी तरह मल ली।

"ऊं-ऊं हूं" उसने अपना निचला जबड़ा ऊपर उठाते हुए पान की पीक की तरह नसवार की थूक फेंकते हुए कहा "बात यों हुई कि..." वह फिर थूकने लगी।

श्याम सोचने लगा "कम-से-कम औरतों को नसवार नहीं चढ़ानी चाहिए और यह खाने की नसवार तो और भी घृणायुक्त है। कम-से-कम औरतों को नसवार नहीं खानी चाहिए—या उन्हें नसवार खाते नहीं देखना चाहिए!"

शायद सैयदां ने श्याम के मुख पर से इस भाव को भांप लिया था। बोली, "मैं नसवार बहुत कम इस्तेमाल करती हूं। असल में मेरी दाढ़ में दर्द है और फिर जब काम अधिक हो या थकान ज्यादा हो तो यह नसवार ऐसे अवसर पर बहुत फायदा करती है। बड़ा नशा आता है।"

कुछ देर तक चुप रहने के बाद सैयदां पुनः बोली, "गांव के ब्राह्मणों और महाजनों ने मिलकर मुसलमान डाक्टर के विरुद्ध अर्जी दी है। बड़े हाकिमों को जांच के लिए बुलाया है। कहते हैं चन्द्रा मोहन-सिंह की तरफदारी क्यों करती है जबकि वह एक अछूत, आवारा, बदमाश लौंडा है। गांव से निकाला जा चुका है और जब कि मोहनसिंह के सम्बन्धी उसकी सेवा करने को तैयार हैं। गांव में इसकी बड़ी चर्चा है। पंडित मकन्द किशन ने कुछ दिन हुए बिरादरी को इकट्ठा किया था। इस बात

का निश्चय हुआ कि डाक्टर के विरुद्ध अर्जी दी जाये। यह पंडित सरूप किशन बड़ा चालाक आदमी है। जो चाहे, जिस तरह चाहे, बिरादरी से मनवा लेता है।"

श्याम बोला "बड़े हाकिम मूर्ख नहीं हैं जो इस अर्जी के पहुँचते ही दौड़े आयेंगे। ऐसी सैकड़ों अर्जियां उनके पास आती रहती हैं। स्वयं मेरे पिता के विरुद्ध कई अर्जियां जा चुकी हैं। कभी कुछ नहीं हुआ। विश्वास रखो, डाक्टर का कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा और न ही कोई चन्द्रा को मोहनसिंह की सेवा करने से रोक सकेगा। मोहनसिंह की मर्जी ही से तो वह वहाँ रहती है।

सैयदां बोली, "लेकिन मैंने एक और बात भी सुनी है, वह यह है कि वे लोग चन्द्रा की मां को फुसलाने का यत्न कर रहे हैं। सुना है चन्द्रा अभी नाबालिग़ है। उमर पक्की होने में अभी एक साल और है।"

श्याम ने ज़ोर से कहा, "वह नाबालिग़ नहीं है, यह झूठ है।"

"और वे लोग चन्द्रा की मां से मोहनसिंह के ख़िलाफ दावा करवायेंगे। यह अग़वा का दावा होगा। डाक्टर भी ज़रूर इसमें फंसेगा और नौकरी से निकाला जायेगा। मोहनसिंह को भी सज़ा मिलेगी, अग़वा का मुकदमा बड़ा सख्त होता है—मैं अच्छी तरह जानती हूं जी।"

श्याम सन्न सा रह गया। यह बात उसे पहले न सूझी थी।

सैयदां ने एक बड़ी बूढ़ी, बुद्धिमती स्त्री की तरह सिर हिलाकर कहा "मैं अच्छी तरह जानती हूं साहब! यह पंडित सरूपकिशन बड़ा चालाक है। ऐसा षड़यन्त्र करता है कि उसके जाल में से कोई नहीं निकल पाता। मैं आज चन्द्रा से मिली थी। अस्पताल में मोहनसिंह को देखने जा रही थी। बड़ी चिन्तित नज़र आती थी बेचारी।"

"उसे...."श्याम ने कुछ पूछना चाहा।

"हां उसे सब पता चल गया है, बड़ी उदास थी बेचारी।"

"क्या उसने इस षड़यन्त्र के बारे में मोहनसिंह को कुछ नहीं बताया है?"

"जी नहीं, मोहनसिंह के घाव अभी कच्चे हैं। यद्यपि अब वह खतरे से बाहर है लेकिन अभी हिल-जुल नहीं सकता, बहुत कमजोर है। ऐसी हालत में अगर उसे यह बात बताई गई तो न जाने उस पर क्या असर हो।"

श्याम ने सिर हिलाकर कहा "हां, यह तो ठीक है, सचमुच कितनी नीच चाल चली गई है!"

सैयदां बोली "मेरा ख्याल है अभी तो वे चन्द्रा को डरायें धमकायेंगे और उसे मोहनसिंह से अलग रहने पर मजबूर करेंगे। मेरे विचार में यदि चन्द्रा को विश्वास हो गया कि उसके साथ रहने से मोहनसिंह पर अगवा का मुकद्दमा चलेगा और वह जेल जायेगा तो वह उसे छोड़ देगी—क्या करेगी बेचारी।"

श्याम ने सोचा कि कल या परसों वह अवश्य मोहनसिंह को देखने अस्पताल जायेगा। चन्द्रा भी वहां होगी। उसीसे सब हाल मालूम होगा। फिर वह सैयदां को संबोधित करके कहने लगा "तुमने बहुत बुरी खबर सुनाई है। मैं आज शाम को पिताजी से इस बारे में बात करूंगा।"

सैयदां उठकर चलने लगी परन्तु थोड़ा रुक कर और आंखें झुका कर, दयनीय स्वर में बोली, "यदि आपके पास एक रुपया हो तो—बड़ी मेहरबानी होगी। मुझे अपनी छोटी लड़की के लिये एक कुर्ते का कपड़ा....।"

उसकी बात समाप्त होने से पूर्व ही श्याम ने अपने बटुए में से एक रुपया निकाल कर दे दिया।

"सलाम साहब!"

"सलाम !"

जब श्याम ने घर आकर अपनी माता से इस बात का ज़िक्र किया तो वह बोली "बेटा, संसार में इस प्रकार की बातें हुआ ही करती हैं। यह लोग मूर्ख और उजड्ड हैं। सभ्यता इन्हें छू तक नहीं गई। न इन्हें ऊंच-नीच का कुछ ज्ञान है। तुम्हें इन लोगों की बातों में न आना चाहिये और ना ही इन नीच लोगों के साथ अधिक उठना-बैठना चाहिये।"

और जब रात के समय उसने अपने पिता से बात की तो उन्होंने भी इस पर कोई विशेष ध्यान न दिया। पहले तो कुछ ध्यान से सुनते रहे परन्तु जब बात समाप्त हो गई तो उनके मुंह से एक बार "ऊहं" भर निकली फिर वह बिस्तर पर करवट बदल कर सो गये।

लेकिन श्याम काफ़ी रात तक जागता रहा। फीकी-फीकी-सी चांदनी थी जिस पर मैले बादलों का गिलाफ़ चढ़ा हुआ था। न अंधकार था, न प्रकाश। बाग के वृक्षों पर भी यही हल्का अन्धकार और हल्का प्रकाश छाया हुआ था। ऐसा मालूम होता था मानो चांदनी का असर कई स्थानों से उखड़ गया हो। वायु बिल्कुल बन्द थी और वृक्षों के फल, पत्ते और डालियां बिल्कुल निश्चेष्ट। श्याम को इस निस्तब्धता का अनुभव इस उग्रता से हुआ कि उसे यह सारा दृश्य बनावटी-सा प्रतीत होने लगा। उसने खिड़की की ओर से अपनी दृष्टि हटा ली और फिर करवट बदल कर सोने का प्रयत्न करने लगा परन्तु अलसाई आंखों में बार-बार चन्द्रा की निडर और सुन्दर आकृति सामने आ जाती। वह चन्द्रा से एक विशेष प्रकार का सान्निध्य अनुभव कर रहा था। पहले ही दिन से, जब उसने चन्द्रा को देखा था उसे उसके एक असाधारण प्राणी होने का ज्ञान हो गया था। चन्द्रा बिल्कुल अनपढ़ थी लेकिन जो कुछ वह कहती या करती थी, उससे कुछ यह अनुभव होता था कि उसे उस वातावरण से अत्यन्त घृणा थी। ऐसी घृणा जिसका

अनुभव किसी पढ़ी-लिखी लड़की ही को हो सकता था। परन्तु नहीं, ऐसा नहीं था। पढ़ी-लिखी लड़कियों में भी उसने निडरता और विद्रोह के इस भाव को इतने उग्र रूप में कहीं न पाया था जो चन्द्रा के व्यक्तित्व में अत्यधिक विद्यमान् था। वह चन्द्रा के घायल परन्तु निडर और सरल जीवन में उस लड़की का चित्र देख रहा था जो आधुनिक जगत् में प्रायः अप्राप्य है। शायद चन्द्रा से उसकी समीपता का एक कारण यह भी था।

चन्द्रा से उसका मस्तिष्क सरूप किशन की ओर घूम गया। यदि चन्द्रा विद्रोही थी तो सरूप किशन आचारवादी। ऐसा कट्टर आचार-वादी उसने अपने जीवन में कम ही देखा था। सरूप किशन आधुनिक सभ्यता से कहीं भी किसी दशा में भी सुलह करने को तैयार न था। या वह एक वर्बर और पाषाण-हृदय प्राणी था जिसे अपने जैसे प्राणियों को नीचा दिखाने और सताने में मज़ा आता था। वह क्यों उन दो युवा हृदयों के सम्बन्ध का विच्छेद करना चाहता है, भला इसमें इसे क्या लाभ प्राप्त हो सकता है? शायद वह जीवन के बहते हुए प्रवाह के सामने एक चट्टान बन कर खड़ा होना चाहता है और संसार को बता देना चाहता है कि प्राचीन सभ्यता अब भी सत्य-सनातन है, उसी प्रकार जीवित है जिस प्रकार आज से सहस्र वर्ष पूर्व थी—अजंता के चित्रों की तरह—और सरूप किशन उसे अजंता के चित्रों की याद दिलाता था। परन्तु अजंता के चित्रों के आधार पर नए जीवन की नींव नहीं डाली जा सकती। नए जीवन की नींव उन पौराणिक तथा प्रणय-लीलापूर्ण चित्रों पर नहीं रखी जा सकती थी जो दिन-प्रतिदिन अजंता की गुफाओं में मद्धम होते जा रहे थे। फिर सरूप किशन किस लिए यह हारी हुई लड़ाई लड़ रहा था? किस तरह षड्यन्त्र, छल-कपट द्वारा समय की प्रगति को रोकने का व्यर्थ प्रयास कर रहा था, जो एक भयंकर बाढ़ के रूप में जनसाधारण की आत्माओं

: १९:

चन्द्रा अपने घर वापिस लौट रही थी। मां-बेटी में बहुत झगड़ा हुआ था। वर्षों से दुख झेलते रहने से उसकी मां के हृदय में विद्रोह की ज्वाला ठण्डी हो चुकी थी। बिरादरी वालों ने उसे और उसके पति को बहुत दुख पहुंचाए थे और जब उसके पति का देहांत हो गया तो भी उन मुसीबतों में कोई कमी न आई थी, वरन् वे और भी कटु हो गई थीं। धीरे-धीरे उन विपत्तियों ने चन्द्रा की मां का दिल कुचल डाला था। दुख और कष्ट के जीवन ने आत्मा में संघर्ष की शक्ति न रहने दी थी। वह अपने बुढ़ापे के दिन सुख-चैन से व्यतीत करना चाहती थी। पंडित सरूप किशन ने उससे वचन किया था कि यदि वह मोहन सिंह और चन्द्रा को एक दूसरे से अलग करने में उसका हाथ बटाये तो वह रुपये पैसे से उसकी सहायता देगा। चन्द्रा को किसी दूसरे गांव में ब्याहने के लिए भी उसकी पूरी सहायता करेगा—चन्द्रा के विवाह होने और उसके अपने घर जा बसने से उसकी आत्मा का बोझ हल्का होता था और सरूप किशन इस मामले में उसकी मदद को तैयार था। जो भी हो, सरूप किशन अपनी बात का धनी था। यदि वह किसी से कोई वचन कर ले तो यथासंभव उसका पालन करता था। इस बात का चंद्रा की मां को पूरा विश्वास था कि सरूप किशन चाहे दुनिया उलट जाए परन्तु अपने मन की करके रहता है। इससे पहले भी चन्द्रा की मां से उसने जितने वचन किये थे उन्हें खूब निभाया था—यद्यपि वे वायदे कम और धमकियां अधिक थीं—अत्याचार और अनर्थ में डूबे हुए कुकर्म थे। लेकिन सरूप किशन ने उन सब को एक-एक करके पूरा किया था। फिर उन दिनों तो चन्द्रा की मां का दिल भी जवान था। आग में तप

सकता था। वह अपने मान, अपनी आबरू की रक्षा कर सकती थी। उन दिनों उसका पति भी जीवित था। यद्यपि उसे अपने पति की रूखी-सूखी रोटी ही प्राप्त होती थी, फिर भी उस पर सन्तोष कर वह गांव वालों और गांव के पुरोहितों के प्रत्येक अत्याचार का सामना करती थी। और अब...अब तो हालत ही और थी—जैसे उस बूढ़े वृक्ष की जड़ों में धरती से रस खींचने की शक्ति कम हो गई थी। जब रस कम हो जाये तो वृक्ष बूढ़ा, रूखा-सूखा सा दिखाई देने लगता है। यही दशा चन्द्रा की मां की थी। अब उससे पहले जितना परिश्रम न हो सकता था। जीवन रसहीन होता जा रहा था और आग भी बुझती चली जा रही थी। शायद बिल्कुल ही बुझ चुकी थी। अब तो वह यह चाहती थी कि चन्द्रा का विवाह हो जाए, वह अपने घर चली जाए, और पंडित सरूप किशन उसे धान का एक खेत खरीद दे। फिर वह माली रख लेगी और सुख से अपने जीवन के अन्तिम दिन बिता देगी। सुख और चैन, उसकी सारी आयु इन दो परियों को ढूंढ़ते गुज़री थी। सुख और चैन तो अब भी क्या मिलेगा, हां बुढ़ापे के चार दिन फ़ाके करते न कटेंगे।

परन्तु चन्द्रा का दृष्टिकोण यह नहीं था। उसे गांव वालों, बिरादरी, महाजनों, ब्राह्मणों, सरकारी पदाधिकारियों, पंडित सरूप किशन—किसी पर भी विश्वास नहीं था। सब अत्याचारी, चोर-डाकू, दुराचारी थे। उन्होंने जीवन भर उन्हें सताया था, भला वह आज किस तरह उनके हितैषी हो सकते थे? मां मूर्ख थी जो उन लोगों पर विश्वास करती थी जिन्होंने उनकी समस्त आशाओं को अपने निर्दयी पांव तले रौंद डाला था—जैसे बैल मक्की के भुट्टों को पांव तले रौंद डालते हैं। गांव के ये निर्दयी बैल कभी उनके हितैषी न हो सकते थे और सरूप किशन पर विश्वास करना तो मानों सांप पर विश्वास करना था। उसे अपनी मां की मूर्खता पर आश्चर्य हो रहा था। वे लोग अपना उल्लू सीधा करना

चाहते हैं। और वह जानती थी कि एक वार मोहन और उसके बीच विरोध की रेखा खिंच जाने के बाद वे उसे और उसकी मां को जूती सा भी न जानेंगे।

"तुम बच्ची हो, इस मामले को नहीं समझ सकतीं"—उसकी मां कहती।

"यह मेरा मामला है और मैं इसे खूब समझती हूँ"—चन्द्रा उत्तर देती।

"यह उनके धर्म, उनकी बिरादरी, उनकी इज्ज़त का प्रश्न है। इसके लिए वे हर संभव बात कर गुज़रेंगे, बड़ा-से-बड़ा मूल्य देने को भी तैयार हो जायेंगे।"

"वह तुम्हें फूटी कौड़ी न देंगे और अपने कटु जीवन के साथ तुम मेरे जीवन को भी कटु बना दोगी। मोहन जेल में जायगा तो क्या मैं जीवित रहूंगी। मैं तुमसे साफ़-साफ़ कह देती हूँ-मोहन मेरा है, मेरा है, मेरा है। मैं उसे कभी नहीं छोड़ सकती।"

"वह तेरा कैसे हुआ, क्या तेरा और उसका ब्याह हुआ है?"

"हां ब्याह हुआ है। इस धरती के ऊपर, इस आकाश के तले हमारा ब्याह हुआ है। बावली के किनारे हमने प्रेम-बन्धन किया है। यह हमेशा बंधा रहेगा। मृत्यु भी इस सम्बन्ध को नहीं तोड़ सकती। परमात्मा साक्षी है।"

और चन्द्रा की मां को अपनी जवानी के दिन स्मरण हो उठे। कभी उसके मुंह से भी ऐसी ही बातें निकली थीं। कटु स्वर में बोली "यदि परमात्मा साक्षी होता तो बिरादरी हमारी शादी को क्यों स्वीकार न करती, लेकिन परमात्मा की साक्षी को आजकल कोई नहीं मानता। बिरादरी की स्वीकृति चाहिये।"

"बिरादरी जाये चूल्हे में, भाड़ में! बिरादरी ने हमें कौनसा सुख

पहुंचाया है जो मैं उसकी चापलूसी करती फिरूं ? मोहन और मैंने फैसला कर लिया है। जब वह अच्छा हो जायेगा, हम यह गांव छोड़कर किसी और ऐसी जगह जा बसेंगे जहां हमें कोई न जानता हो। हम पार (पंजाब) चले जायंगे। मां, दुनियां बहुत बड़ी है और अब तो सुना है मीरपुर तक लारी भी आ गई है। लारी में बैठे और झट जहां जी चाहा चले गये।"

चन्द्रा के आत्म-गौरव ने क्षण भर के लिये उसकी मां को प्रभावित कर दिया लेकिन फिर वह सिर हिलाने लगी—"बेटा, यह अच्छी बात न होगी। इस दीवार से टकरा टकरा कर मैंने हमेशा के लिए अपना भाग्य फोड़ लिया है। अब क्या तू भी इसी दीवार से टकराना चाहती है। मेरी सन्नो बेटा, चन्द्रा !"

चन्द्रा उठ खड़ी हुई—"नहीं मां, यह लोरियां किसी और को देना। मैं एक बार फिर तुम्हें चेतावनी देती हूं कि पंडित के चंगुल में न फंसना नहीं तो ऐसा पछताओगी, ऐसा पछताओगी कि...."

चन्द्रा अपना वाक्य अधूरा छोड़कर चली आई। क्रोध और घृणा से उसका मुख आग की तरह दहक रहा था। उसे रह-रह कर अपनी मां की मूर्खता पर क्रोध आ रहा था। वह क्यों इस सीधी सी बात को नहीं समझती और जान-बूझकर बिरादरी के फंदे में फंसी जा रही है। लेकिन आज मैंने इसे खूब धमकाया है, आशा है पंडित सरूप किशन और बिरादरी वालों के सम्बन्ध में उसके बहुत से भ्रम उसके मन से धुल जायेंगे। एक-दो बार और समझाऊंगी तो अवश्य सीधे रास्ते पर आ जायेगी, उफ़ ! कितनी गरमी है।"

चन्द्रा नदी पार कर आई। उसे ख्याल आया कि उसने संथाल की डाय के किनारे एक अन्जीर के तने में मोहन के घावों की पट्टियां रखी थीं, धोने के लिए। उसने सोचा आज बहुत गरमी है। सारा शरीर पसीने में तर हो गया है शायद इस क्रोध के कारण। पट्टियां धो लेने के बाद खूब नहाऊंगी।

संथाल की डाव पर इसे नूरां मिल गई। नूरां और चन्द्रा में गहरी मित्रता थी और जब से नूरां ने चन्द्रा और मोहन की बात सुनी थी, वह चन्द्रा से और भी अधिक प्रेम करने लगी थी। संथाल की डाव के उस पार उसका रेवड़ चर रहा था और वह डाव पर नहाने आई थी।

"आज दिन कितना अच्छा है" नूरां ने बाहें फैलाकर जैसे सारे वायुमंडल को अपने बाहुपाश में लेते हुए कहा "कितनी प्यारी धूप है बादलों के उन सफेद टुकड़ों की तरफ़ देखो, डाव में तैरते हुए कितने प्यारे लगते हैं जैसे बतख़ों के सफेद-सफेद बच्चे हों। चन्द्रा, आज तो मैं एक साँस में संथाल को पार कर जाऊंगी। आओ, आज मुकाबिला रहे। उस दिन तो जीत गई थीं तुम लेकिन आज!" नूरां हंसी। उसने अपनी बाहें फैला दीं और नदी की रेत पर लट्टू की तरह घूम गई।

चन्द्रा पट्टियां धो रही थी, बोली "मैं ज़रा इनसे निपट लूं फिर दोनों इकट्ठी नहायेंगी। कुछ देर के लिए ठहर जा।"

नूरां कुछ देर तक चुप बैठी रही और रेत खोद-खोद कर अपने पांव पर जमाती रही। अच्छी तरह थपथपाने के बाद जब उसने देखा कि रेत की तह काफ़ी मजबूत हो गई है तो उसने अपने दोनों पांव बाहर निकाल लिये। रेत की दो महराबें बन गई थीं जिनके बीच में रेत की एक पतली सी दीवार खड़ी थी।

"अहा-हा" नूरां ताली बजाकर बोली "अहा-हा" दोनों महराबें बन गईं—चन्द्रा इधर देखो।"

चन्द्रा मुस्कराती हुई उधर देखने लगी। वास्तव में दोनों महराबों का एक साथ बन जाना बहुत कठिन होता है और फिर रेत की महराबें! बचपन से लेकर अब तक वे नदी के किनारे ये महराबें बनाती चली आ रही थीं। कभी दायें पांव की महराब बनती तो कभी बायें पांव की। कभी ही ऐसा होता था कि दोनों महराबें एक साथ बनी हों। जिसकी दोनों महराबें एक साथ बन जातीं वह शर्त जीत जाती और शर्त की

जाती थी अखरोटों, अन्जीरों, और मक्की के भुट्टों पर। और कभी-कभी जब बहुत ही प्यार आ रहा हो तो गाल और ओठ चूमने पर। लेकिन यह अन्तिम शर्त बहुत कम की जाती थी। हां यह रोचक अवश्य थी क्योंकि जब एक लड़की यह शर्त जीत लेती तो हारी हुई लड़की नदी के किनारे-किनारे किलकारियां मारती दूर तक भागती चली जाती और दूसरी लड़की उसके पीछे-पीछे उसे पकड़ने के लिये। हाथ आ जाने पर जीती हुई लड़की उसे अपनी बाहों में जकड़ लेती। कभी ऐसा होता कि दोनों लड़कियां भागती-भागती डाब में जा गिरतीं और फिर वहीं तैरते-तैरते उस शर्त का फैसला किया जाता। शायद मन ही मन लड़कियाँ उस समय प्रेमी-प्रेमिका का खेल खेल रही होती थीं। यह वही पुराना खेल था। दुल्हा-दुल्हन बनना, गुड्डे-गुड्डी का ब्याह, आंख मिचौली!

चन्द्रा मुस्कराते हुए बोली "नूरां, तू बड़ी भाग्यवान् है तूने दोनों महरावें बना लीं। एक अपनी, एक अपने मियां की। बस अब तो चैन ही चैन है।"

नूरां ने दिखावे के क्रोध से लात मार कर दोनों महरावें गिरा दीं और भागती हुई चन्द्रा की ओर आई। चन्द्रा ने अपने शरीर से लिपटी हुई चादर उतारकर अलग रख दी और झट से पानी में कूद गई। थोड़ी देर बाद नूरां भी कपड़े उतार कर डाब में घुस गई। दोनों तैरती हुईं, हाथों से पानी को चीरती हुईं और टांगों से पानी की सफेद झाग उड़ाती हुईं एक दूसरी का पीछा करने लगीं।

और यदि उस समय डाब की ऊंची चट्टानों पर खड़ा होकर कोई यह दृश्य देखता तो उसे अपने चारों ओर एक सोई हुई सी वादी नजर आती। खिली हुई धूप नजर आती। दूर मकानों की छतों से धीरे-धीरे निकल कर वायुमंडल में विलीन होता हुआ धुआँ नजर आता। फिर उसे उस प्रसुप्त वातावरण में संथाल की डाब नीलम के नगीने की तरह जड़ी हुई नजर आती जिसके स्तर पर श्वेत बादलों के कमल

खिले हुए थे और किनारे के वृक्षों की टहनियों का प्रतिबिम्ब जल में कांपता हुआ नज़र आता। वह देखता कि उस नीले जल के कांपते हुए स्तर पर दो जलपरियां केश खोले, दूध जैसी बाहें एक-दूसरी की गरदन में डाले धीरे-धीरे तैर रही हैं और वह सोचता कि उसे तुरंत चट्टानों के नीचे दुबक जाना चाहिये क्योंकि कहावत प्रसिद्ध है कि यदि किसी मनुष्य की दृष्टि जलपरियों पर पड़ जाये तो उसी क्षण वे डुबकी लगा कर समुद्र की तह में, नीली झील की तह में या डाव की तह में चली जाती हैं, जहाँ उनके लिए हीरे और जवाहर के महल बने होते हैं, जिनके दरवाज़ों पर पतली और बारीक, रेशम से भी अधिक बारीक और मुलायम काई के हरे परदे सरसराते हैं, जहाँ महलों के बाहर रंग बिरंगे घूघों के बाग हैं, जिनमें सरू की तरह स्पंच के बूटे खड़े हैं, जिनकी सड़कों पर नीली बजरी बिछी है और उन पर सुन्दर मछलियाँ धीरे-धीरे इठलाती हुई चल रही हैं...........इठलाती हुई, जैसे ये दो परियां जो अब संथाल के स्तर पर केश खोले, दूध जैसी बाहें एक-दूसरी की गरदन में डाले धीरे-धीरे तैर रही हैं।

परन्तु उस समय आसपास, दूर तक कोई भी मौजूद न था जो उन जलपरियों को देख सकता। ये जलपरियां देर तक मनुष्य की दृष्टि से सुरक्षित पानी के कांपते हुए नीले स्तर पर तैरती रहीं।

पट्टियों को अपनी चादर में डाले, दोनों बाहें हिलाती और गुन-गुनाती हुई चन्द्रा धान के खेतों को पार कर घाटी पर चढ़ने लगी। उसे अपना शरीर बहुत हल्का मालूम हो रहा था जैसे वह वायु में उड़ी जा रही हो, जैसे मांदर की मन्द लहरों पर बही जा रही हो। उसने ऊपर आकाश की ओर देखा। अब बादलों के टुकड़े भी गायब हो गये थे। नीचे पगडण्डी पर उसके पांव के आगे घास के टिड्डे उड़ उड़कर उसकी चादर पर आ बैठते और फिर फुदक कर लम्बी घास की टहनियों पर झूलने लगते। वह दोनों ओर बढ़ी हुई घास पर हाथ फेरती गई। लम्बी और कोमल घास अब पीली पड़ गई थी। भुट्टों के सिरों से भूरी-भूरी तुरियां लटक रही थीं और उनमें से एक विचित्र प्रकार की सुगन्धि उठ रही थी। विचित्र, गरम-गरम सी सुगन्धि जो घाटी के वातावरण में फैली हुई थी। उसने सोचा, कुछ ही दिनों में यह घास काटने योग्य हो जायगी। फिर यहां लतौरी (कटाई) होगी। ढोल बजेंगे और गांव के स्त्री-पुरुष हाथों में दरांतियां लिए इस घास को काटना शुरू कर देंगे। इसे लतौरी के दिन बहुत पसन्द थे। उसने सोचा, यह घाटी कचहरी की ज़मीन से मिली हुई है, जब तहसीलदार साहब घास को कटवाने के लिए लतौरी लगवाएंगे तो उसमें वह भी ज़रूर आयगी। इसमें हर्ज ही क्या है? उसे सब अधिकारियों से घृणा थी। उसे तहसीलदार साहब से भी अत्यन्त घृणा थी—रिश्वतखोर, धोखेबाज! मैं इन सब लोगों को अच्छी तरह जानती हूं। देखने में कितने कोमल चित्त, शरीफ़ और धर्मात्मा नजर आते हैं, लेकिन जब कभी अवसर हाथ लगे, डंक मारने से नहीं चूकते। किसानों की दुर्दशा

के लिये ये लोग क्या कम जिम्मेदार थे ! स्वयं अपनी निर्धनता और अपमान के लिए क्या वह उन लोगों को बिल्कुल निर्दोष मान सकती थी ? कदापि नहीं। हां श्याम उनसे भिन्न है, उसने सोचा। श्याम में अभी वह अकड़, वह चालाकी और दुष्टता नहीं आई जो इन दूसरे अफसरों की आंखों से झलकती है। उसका बात करने का ढङ्ग भी ऐसा है जैसे वह किसी अपने जैसे मनुष्य से बातें कर रहा हो। श्याम से बातें करते समय उसने कभी अपने मन में वह बेचैनी, क्रोध, घृणा और प्रतिशोध का भाव नहीं पाया था जो अन्य अफसरों या गांव के बड़े लोगों से बात करते हुए उसके मन में उभर आता था और उसका मुख आप ही आप लाल हो उठता था। और वह चाहने लगती थी कि सम्मुख खड़े व्यक्ति का मुख नोच डाले और चिल्ला-चिल्ला कर कहे, शैतान ! शैतान !! शैतान !!!

एकाएक वह ठिठक गई। सामने से पंडित सरूप किशन का छोटा भाई बसंत किशन सीटी बजाता हुआ चला आ रहा था। बसंत किशन बहुत आवारा और बदचलन था। दिन भर सीटी बजाते फिरना, यहां वहां नदी-नालों और रास्तों पर लड़कियों को ताकना-झांकना, यही काम है इसका। पंडिताई के गुणों से तो बिल्कुल कोरा है, बेचारा ! गांव में भूले भटके से खानाबदोशों का कोई कबीला आ निकले, बस बसंत किशन के पौबारह हैं। दिन भर उनकी खपरैल में बैठा चरस पीता रहेगा।

बसंतकिशन अपने भाई की तरह विशालकाय था और उसी की तरह हर समय हंसता रहता था लेकिन बस उनकी समानता यहीं तक समाप्त हो जाती थी। न अपने बड़े भाई जैसी उसकी बुद्धि थी और न ही वह उतना सुन्दर था। उतना पढ़ा-लिखा भी न था और अपनी खेती-बाड़ी के काम पर भी विशेष ध्यान न देता था। उसे केवल लड़कियों को घूरने और उनके पीछे मारे-मारे फिरने का काम ही सबसे अधिक प्रिय था। उस समय उसने लट्ठे की सलवार पहिन रखी थी। पांव में बूट

था। लाल धारियों वाला रेशमी कुरता था और सिर पर पगड़ी थी, जिसका एक शमला उसने गरदन के गिर्द लपेट कर बायें कन्धे पर झूलता हुआ छोड़ दिया था और दूसरा पगड़ी के ऊपर से निकल कर दूसरे कान्धे की ओर झूल रहा था। पगड़ी की नोक सीधी न थी बल्कि माथे के दायें कोने में, दाईं आंख के ऊपर तक चली गई थी। इसी नोक के बीच में उसने हरे रंग का "ओं" खुदवा रखा था।

चन्द्रा एक ओर हट गई। बसंत किशन उसके समीप आकर रुक गया और हंसने लगा "हो-हो-हो......चन्द्रा रानी किधर से आई हो?"

चन्द्रा उस दुष्ट से बात भी करना न चाहती थी परन्तु अब बात का उत्तर दिये बिना चारा भी न था बोली, "मोहन की पट्टियां धोने गई थी।"

"हो-हो-हो" बसंत किशन हंसा; फिर उसने अपनी पगड़ी की नोक उंगली से संवारी और दो एक लटों को पगड़ी से बाहर निकाल लिया "अब और कितने दिन मोहन की पट्टियां धोओगी?"

चन्द्रा ने त्योरी चढ़ाते हुए कहा, "ईश्वर की कृपा से अब मोहन जल्दी ही अच्छा हो जायेगा।"

"हा-हा-हा" बसंत किशन कहकहा लगाते हुए बोला "फिर चन्द्रा रानी को कौन पूछेगा? मोहन तो अपने घर चला जायेगा, हा-हा-हा।"

चन्द्रा ने आगे कदम बढ़ाया। बसंत किशन बोला "एक बात सुनती जाओ, मेरी रानी!"

चन्द्रा ने क्रोध से लाल पीली होकर कहा "मैं तुम्हारी रानी नहीं हूं, हरामज़ादे! सूअर के बच्चे तेरी मां.........."

"वाह वाह" बसंत किशन ने चन्द्रा के ऊपर झूलते हुए और अपनी छाती पर हाथ रख कर कहा "गालियां नहीं, गऊ माता की कसम, यह तो चमेली के फूल हैं, चमेली के फूल, रानी!" फिर एकाएक अपनी मुद्रा को बदल कर और इधर-उधर देख कर धीमे स्वर में कहने लगा "एक बात तुमसे कहता हूं, मज़ाक नहीं कर रहा। गांव के ब्राह्मणों ने

तुम्हारे विरुद्ध षड्यन्त्र रचा है। वे तुम्हें और मोहन सिंह को अलग कर देने पर तुले हुए हैं। मैं भी वहां मौजूद था। मैं सब की बातें ध्यान से सुनता रहा। मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूं। मेरे हाथ में एक ऐसी कुंजी आ गई है कि उन सबका किया-कराया धरा रह जायेगा, मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ। तुम जानती हो कि ये लोग मुझे अच्छा नहीं समझते क्योंकि मैं ब्राह्मण, भंगी, चमार सब को एक सा समझता हूँ—हा-हा-हा !" वह फिर ज़ोर ज़ोर से हंसने लगा।

चन्द्रा ने कहा "तुम मेरी सहायता करोगे—बताओ ना, वह क्या बात है ?"

बसंत किशन के तृषित नेत्रों में चमक आ गई, उसका हाथ पकड़ कर बोला "मेरी रानी ! मैं तुम्हारी सहायता न करूंगा तो किसकी करूंगा ? हाय कितनी गोरी मुलायम कलाई है—आह........"

एक ज़ोर का तमांचा उसके मुंह पर पड़ा "यह लो, यह लो" दो चार और तमांचे और घूंसे पड़े और उसकी पगड़ी नीचे आ रही।

इस से पूर्व कि वह अपने आपको संभालता चन्द्रा जा चुकी थी।

बसंत किशन कुछ समय तक क्रोध से उसकी ओर देखता रहा फिर उसकी स्वाभाविक आवारगी उभर आई और वह हंसने लगा "हा-हा-हा मेरी चन्द्रा रानी ! ये तो फूल, ये फूल" और वह उसकी ओर देख कर ऊंचे स्वर में गाने लगा।

"दो पैसे तीर कीते

"मर जान गोरियां रन्ना जिन्हां, मुंडे वी फकीर कीते" (हे भगवान् ये सुन्दर स्त्रियां मर जायें जिन्होंने कई युवकों को फ़कीर बना दिया है)

उसकी भोंडी आवाज़ घाटी के कोने २ में गूंज पैदा करती गई। लेकिन जब चन्द्रा आंखों से ओझल हो गई तो वह भी अपनी गरदन झटका कर नीचे नदी की ओर उतर गया।

वसंत किशन की उस हरकत ने मानो चन्द्रा के अंग-प्रत्यंग में आग सी लगा दी थीं। उसके रक्त की हर बूंद उबल रही थी। वह सिर से पांव तक कांप रही थी। जब वह घाटी को पार कर चुकी तब भी वह सिर से पांव तक कांप रही थी। जब वह कचहरी के जंगले से गुज़री तब भी, जब वह हस्पताल के दरवाजे के भीतर प्रविष्ट हुई तब भी और जब वह अपने वार्ड में प्रविष्ट हुई जहां मोहन सिंह चारपाई पर लेटा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था तब भी वह सिर से पांव तक कांप रही थी। मोहन सिंह को देखते ही उसकी आंखों से अश्रुधारा बह निकली और वह उसकी चारपाई से टेक लगाकर सिसकियां भरने लगी। वह इससे पूर्व कभी इस तरह न रोई थी—मानो उसके मन के अन्तस्तल, उसकी आत्मा की गहराइयों में बरसों से अश्रु जमते रहे थे, बरफ़ की एक सिल बन कर उसके व्यक्तित्व में समा गये थे और वह कभी न रोई थी, वह रो ही न सकती थी। वह हंस सकती थी, मुंह चिढ़ा सकती थी। छुरी की धार की तरह तेज़ घाव पैदा कने वाली बातें करर सकती थी परन्तु रो न सकती थी—परन्तु आज मानो वह वर्षों की बरफ़, वह शताब्दियों के अश्रु किसी बिजली के स्पर्श से उसकी छाती, उसके मन, उसकी आत्मा के अन्तस्तल में पिघले जा रहे थे और वह अपने प्रेमी की चारपाई से लगी सिसक रही थी। और उसके अश्रुओं की आर्द्रता और उनका नमक उसकी चादर को भिगोता हुआ उन पट्टियों में रच रहा था जिन्हें वह अभी अभी नदी से धो कर लाई थी। जैसे उसने अपने ओठों की व्यंगपूर्ण मुस्कान को व्यर्थ समझकर सदैव के लिए उतार फेंका था और अपने वैषम्य तथा घायल जीवन को अपने घायल प्रेमी के सम्मुख नगा कर दिया था। मोहन सिंह ने आश्चर्य से पूछा—"क्या बात है?" परन्तु चन्द्रा उसी तरह चारपाई से लगी रोती रही। मोहन सिंह ने अपना हाथ चन्द्रा के सिर पर रखा और देर तक अपनी उंगलियां उसके बालों में फेरता रहा। आखिर चन्द्रा के अश्रु थम गये

और उसने धीरे-धीरे, रुक-रुक कर और सिसकियां भरते हुए सारी बात कह सुनाई।

मोहन सिंह की आंखें कबूतर की आखों की तरह लाल हो उठीं। मानो वे आंखें अभी लहू रो देंगी। उसका श्वास तेज़-तेज़ चलने लगा—फिर उसने धीरे से अपनी आंखें बन्द कर लीं और अपने दोनों हाथ अपनी छाती पर रख लिये।

"कुछ दिनों की बात है चन्द्रा ! बस कुछ दिनों की बात है"–उसने धीरे से रुक रुक कर कहा।

"वचन दो मोहन कि तुम मुझे छोड़ कर कहीं नहीं जाओगे।" चन्द्रा ने रुंधे हुए कण्ठ से कहा।

मोहन सिंह ने अपना दायां हाथ उसके हाथ में दे दिया और धीरे से बोला, "जब तक ज़िन्दा हूँ तुम्हारे साथ रहूँगा......चिंता न करो, कुछ दिनों के बाद—बस कुछ दिनों के बाद—"

इसके बाद वह मौन हो गया। उसकी आंखें बन्द थीं। चन्द्रा न जान सकी कि वह क्या सोच रहा है। वह धीरे-धीरे उसके पांव दबाने लगी।

: २१ :

अगस्त का महीना आधा बीत चुका। एक दिन सुबह तहसीलदार साहब ने कचहरी की ज़मीन में लतीरी लगवाई। विस्तृत बाग में, खेतों की मेंड़ों पर और सारी घाटी पर पीली-पीली सुनहली घास सरसरा रही थी। आज रवि और निम्मी प्रातःकाल ही जाग उठे थे और बाग में लतीरी वालों की तय्यारियां देख रहे थे। रस्सियां और रस्से बटे जा रहे थे। दरांतियां तेज़ की जा रही थीं। श्याम की माता भी आज बहुत व्यस्त थी। पचास-साठ आदमियों के खाने का प्रबन्ध करना था। पीने के लिए गुड़ का शर्बत और लस्सी भी चाहिये थी। नौकर-चाकर बड़ी तन्मयता के साथ भिन्न-भिन्न कामों में जुटे हुए थे। रवि और निम्मी प्रसन्नतापूर्वक भागते और शोर मचाते यहां-वहां उछल कूद रहे थे।

फिर ढोलची आ गये। काले लाचे (आधी धोतियां) बांधे और दायें हाथ में चमड़े की काली पट्टियां पहने हुए। उन्होंने आकर तहसीलदार साहब को सलाम किया और नाशपाती के पेड़ के नीचे अपने ढोल रखकर बैठ गये।

तहसीलदार साहब ने भीतर जा कर कहा "लो ढोल वाले भी आ गये हैं, श्याम की मां! क्या अब शहनाइयां भी मंगवाऊं?"

श्याम की माता मुस्करा कर बोली, "शहनाइयां भी आ जायेंगी, जब मेरे बेटे का शगन होगा। हर घर में सवा सेर मिसरी भेजूंगी।"

"हम तो ज्यादा लेंगे" छाया ने हंसते हुए कहा "मैं तो लड़के की मौसी हूं—क्यों तहसीलदार साहब, ठीक है ना?"

श्याम की मां बोली "तुम्हारी बात और है, छाया।"

श्याम की मां ने आज छाया और बन्नी को भी बुला भेजा था।

तहसीलदार साहब ने लतीरी के लिये पचास आदमी बुलाये थे परन्तु यदि गांव में एक स्थान पर लतीरी हो और सोंधी-सोंधी सुगन्धि वाली घास काटी जा रही हो, लस्सी और गुड़ का शर्बत बंट रहा हो और ढोल बज रहे हों तो किसका मन नहीं चाहता कि अपनी दरांती तेज़ करके वह भी लतीरी में शामिल न हो जाये। तहसीलदार साहब ने तो केवल पचास आदमियों को बुला भेजा था लेकिन होते-होते इस से दुगुने आदमी वहां एकत्रित हो गये थे। उन में ब्राह्मण भी थे, मुसलान भी और सिक्ख भी। पुरुष भी थे और स्त्रियां भी। स्त्रियों में सैयदां और चन्द्रा भी थीं।

शर्बत और लस्सी आदि पीकर सब लोग तय्यार हो गये। उन्होंने घास काटने का के लिये सब से पहले घाटी को चुना जो एक ढलवान से होकर नीचे धान के खेतों से जा मिलती थी। यहां सारे लतीरी वालों को भागों नें बांटा गया। एक भाग का सरदार गंगू मिशर बना और दूसरे का दुल्ला। दोनों के साथ चालीस-पचास के लगभग आदमी थे। गंगू मिशर के आदमिश्रों को वहां बिठा दिया गया जहां से घाटी शुरू होती थी। और दुल्ले सरदार ने अपने आदमियों को ढलवान के मध्य में फैला दिया। इस प्रकार घास काटने वालों की दो टोलियां बन गईं। गंगू मिशर की टोली का काम यह था कि वह घास काटते हुए घाटी के मध्य में पहुँच जाये और दुल्ला और उसके साथी घाटी के मध्य से जो घास काटते हुए चलें तो नीचे धान के खेतों तक जा पहूँचें।

ढोल बजने लगे और लोग भगवान् का नाम लेकर घास काटने में जुट गये।

ढोलों की आवाज़ सारी वादी में गूंज रही थी। ढोल वाले बड़े जोश-खरोश से ढोल पीट रहे थे। कभी-कभी लै को कुछ मद्धम कर देते और फिर एक दम उसे उठा लेते—दड़ोगर, दगड़-दड़ोगर, दगड़ दड़ोगर-दगड़। धम धम, धमा धम धम, धमा धम धम, धमा धम धम पर आवाज़ बहुत ऊंची हो जाती। यह मानो उसकी अंतरा थी और

दड़ोगर, दगड़ की आवाज़ उसकी स्थायी। कभी कभी ये ढोलिये इतनी देर तक मद्धम दड़ोगड़, दड़ोगड़ करते रहते जब पुनः वे एक साथ 'धमा धम' की धमाचौकड़ी मचाते तो सहसा दिल की गति तेज़ हो जाती और लतीरिये हवा में दरांतियां चमकाते हुए "हक अल्लाहू" या "हर हर" के नारे लगाते हुए और अधिक जोश और तन्मयता के साथ अपने कार्य में निमग्न हो जाते।

श्याम को लतीरी का यह दृश्य बहुत पसंद आया। इन लोगों में हिन्दू भी थे मुसलमान भी, सिक्ख भी और अछूत भी, स्त्रियां भी और पुरुष भी। परन्तु उस समय सब किसान थे। सब के हाथ में दरांतियां थीं। सब घास काट रहे थे। इस एकता का कारण यह दरांती थी, यह घास थी और थी यह धरती। वास्तव में मनुष्य जितना धरती के निकट होता है उतना ही वह अन्य मनुष्यों के निकट हो जाता है। इस समय गंगू मिरासी, करीम माली और मौजू भंगी एक ही पंक्ति में बैठे एक साथ काम कर रहे थे। प्रसन्नतापूर्वक एक दूसरे से बातें कर रहे थे। द्वेष का चिह्न मात्र भी नज़र न आता था। श्याम की माता, छाया, बंती, गुलाम हुसैन और संतराम लवारियों को शर्बत और लस्सी पिलाते जाते थे क्योंकि अब दिन काफ़ी चढ़ आया था और काम करने वालों की प्यास बार-बार चमक उठती थी।

रघि और निम्मी शोर मचाते हुए घास काटने वालों के बिलकुल बीच में आ खड़े होते थे और फिर उन्हें प्यार-पुचकार से दूसरी ओर भगाना पड़ता था। बहुत सी औरतें जो घास नहीं काट रही थीं वे घास के गट्ठों को दूनों (ढेर) में इकट्ठा किये जाती थीं। यह काम भी बड़ी होशियारी का होता है। लवीरिये जल्दी-जल्दी घास काटते हुए उसके छोटे-छोटे गट्ठे अपने पीछे रखते जाते हैं। घास इकट्ठा करने वाली टोली जिस में अधिकतर औरतें होती हैं इन गट्ठों को बड़े-बड़े दूनों में जमा करती जाती है। गट्ठे उस पूरी लम्बाई पर फैले होते हैं

जहां कटाई हो रही होती है। एक पूल दस गट्ठों को मिलाकर बनाई जाती है। पूल बनाने का भी एक विशेष ढंग है। इस तरह की घास का वह सिरा जो काटा जाता है बाहिर की ओर और ऊपर वाला भाग अन्दर की ओर रखा जाता है और यह गट्ठे एक गोलाई के आकार में में पास-पास रखकर पूल तय्यार कर दी जाती है। श्याम ने देखा कि पूल बनाने वाली स्त्रियां इतनी फुरती और कारीगरी से काम ले रही थी कि पूलों के दायरे इतने गोल नज़र आते थे मानो उन का घेरा प्रकार द्वारा खींचा गया हो।

कुछ औरतें गट्ठों को एक सीधी पंक्ति में रखती जाती थीं। कुछ उनके पूले तय्यार कर रही थीं, कुछ पूलों को इकट्ठा करके उनके बड़े गट्ठे बनाने में व्यस्त थीं। यह सब काम एक साथ होता है। बीस या पचीस पूले मिला कर एक बड़ा गट्ठा बनता है। कभी इससे कम में कभी इससे अधिक में। यह अधिकतर कटी हुई घास पर निर्भर होता है। यदि घास अधिक लम्बी या अधिक मोटी हो तो कम पूले इस्तेमाल किये जाते हैं और यदि घास अधिक लम्बी न हो या बहुत पतली और मुलायम हो तो एक गट्ठे में अधिक पूले आते हैं।

श्याम ने गंगू मिशर के लड़के से जो गट्ठे बना रहा था पूछा "इन गट्ठों को बनाने के बाद इन्हें क्या करोगे?"

"यह आप जाने"—लड़के ने चंचलतापूर्वक कहा—"यदि आप चाहें तो हम इन गट्ठों को जोड़कर घाड़ा रच देगें (घाड़ा यों समझिये, घास के खलिहान को कहते हैं) और यदि चाहें तो हम घास के इन गट्ठों को बाग के मन्नुओं पर या दो-तीन बड़े पेड़ों पर लगा देंगे।"

श्याम ने कई बार इस इलाके में भ्रमण करते हुए वृक्षों पर दूर ऊपर तक घास के गट्ठे एक दूसरे के ऊपर लगे देखे थे परन्तु वह यह न समझ सका था कि घास को इतने ऊंचे वृक्षों पर रखने का अभिप्राय क्या है।

उसने लड़के से पूछा "मन्नो के पेड़ों पर इस तरह घास जमा कर देने से क्या फायदा होगा ?"

वह बोला, "इस तरह घास की रक्षा अच्छी तरह हो सकती है। यदि वर्षा आ जाये तो घास गीली ज़मीन से बची रहती है और इस तरह गलने-सड़ने से बच जाती है। इधर-उधर घूमते हुए ढोर डंगर भी उसमें मुंह नहीं मार सकते। फिर किसी चोर के लिये भी यह ज़रा कठिन ही है कि वह रात के वक्त घास के गट्ठे चुराने के लिये पेड़ों की खतरनाक डालियों को फलांगता फिरे।"

गुलाम हुसैन बोला, "साहब हम घाड़ा भी बनायेंगे और दो एक पेड़ों पर भी घास इक्कठी कर देंगे।"

लड़का बोला, "हां, बहुत से किसान ऐसा भी करते हैं लेकिन हम तो अपनी सारी घास अपने अखरोटों के पेड़ों पर जमा कर देते हैं।"

गुलाम हुसैन बोला, "यह तहसीलदार साहब की घास है इसे चुराने की किसमें हिम्मत है। हम एक घाड़ा भी रचेंगे" फिर वह श्याम की तरफ देख कर बोला "साहब घास का ऊंचा घाड़ा इस बंगले की छत से भी ऊंचा हो जायेगा। आप देखियेगा, इस बाग में बड़ा भला मालूम होगा।"

ढोल ज़ोर-ज़ोर से बजने लगे। दुल्ले सरदार ने उठ कर गंगू सिरार को ललकारा और कहा "शर्त रहे, जो टोली अपना हिस्सा पहले ख़त्म कर ले उसका सरदार हारी हुई टोली के सरदार के कन्धे पर चढ़ कर इस सारी घाटी का चक्कर लगाये।"

गंगू सिरार ने दरांती हवा में घुमाते हुए कहा, "स्वीकार है! भगवान ने चाहा तो हमारी टोली बिजली की तरह घास को काटती हुई तुम्हारी टोली से आ मिलेगी।"

ढोलिये ज़ोर-ज़ोर से ढोल पीटने लगे। लावारिये और भी फुर्ती से काम करने लगे। दरांती की चमकती हुई जिह्वा बिजली की लपक की तरह घास पर पड़ती और सर-र सर-र की ध्वनि उत्पन्न करती और

उसे जड़ों से काटती हुई धरती पर बिछा देती। हर पंक्ति में कई ऐसे तगड़े आदमी थे जो बड़ी फुरती से घास काटते थे। ये लोग घास काटते-काटते अन्य किसानों से ज़रा आगे निकल आते और कटी हुई घास की पंक्ति सीधी न रहती, फिर ढोलिये शोर मचा कर पीछे रह जाने वाले किसानों को लज्जित करते और वे लोग पहले से दुगनी फुरती से काम करते हुए पंक्ति को सीधा कर पुनः अपने साथियों में जा मिलते। इन सब शर्तों का फैसला शाम को होता था जब लतीरी समाप्त हो जाती या उस दिन के लिये समाप्त हो जाती।

ढोल ज़ोर-ज़ोर से बज रहे थे।

सैयदां, चन्द्रा और नूरां एक ही पंक्ति में बैठी तेज़ी से दरांती चला रही थीं। बातें कर रही थीं। कभी-कभी उनके हंसने की आवाज़ सारी पंक्ति पर छा जाती और उनके निकट काम करते हुए किसान उन से मज़ाक करने लगते। लेकिन इस समय कोई बुरा न मानता था और यों भी उस मज़ाक में ओछेपन की झलक तक न होती थी।

सैयदां, चन्द्रा और नूरां ने शर्त की थी कि देखें कौन आगे निकलता है। यद्यपि सब जानते थे कि चन्द्रा इस काम में सबसे चुस्त थी लेकिन फिर भी शर्त करने में क्या हर्ज था।

नूरां के साथ काम करने वाले किसान ने दरांती ऊपर उठा कर एक, दो, तीन कहा और तीनों लड़कियां हंसती हुई तेज़ी से घास काटने लगीं।

थोड़ी देर तक तो तीनों एक पंक्ति में चलती रहीं फिर धीरे-धीरे सैयदां का हाथ हल्का पड़ गया। उसकी गति धीमी होती गई और वह अपनी दोनों सहेलियों से बहुत पीछे रह गई।

काफ़ी देर तक नूरां और चन्द्रा साथ-साथ चलती रहीं। उनकी दरांती एक ही लै पर शुरू होती थी और एक ही ताल पर खत्म हो जाती थी—साथ-साथ, साथ-साथ।

फिर सब लोग हैरान रह गये जब चन्द्रा के भी हाथ धीमे पड़ने शुरू हो गये और नूरां और चन्द्रा में थोड़ा थोड़ा-अन्तर छूटने लगा—फिर चन्द्रा बहुत पीछे रह गई और नूरां ने सब से पहले सीमा पार कर ली और वहां पहुँच कर अपनी दरांती रख दी और दोनों सहेलियों की प्रतीक्षा करने लगी।

जब चन्द्रा घास काटती हुई उसके पास पहुंची तो उसके कपोलों और माथे पर पसीने की बूंदें चमक रही थीं और उसकी आंखें नीचे झुकी हुई थीं।

स्वयं नूरां बड़ी हैरान थी। उसने चन्द्रा के चेहरे की ओर देखा। उसके सारे शरीर पर एक तीखी दृष्टि डाली। मुंह पर हाथ रख कर रुकी-रुकी सी हंसी के साथ बोली, "क्या बात है चन्द्रा, कहीं कोई गड़बड़ तो नहीं—" और यह कह कर वह पुनः हंसने लगी।

चन्द्रा का मुख लज्जा और क्रोध से लाल हो उठा "चल हट मुर्ख ल" उसने तेज़ी से कहा।

फिर सैयदां भी आ मिली और वह तीनों घास काटती हुईं माहिया (पंजाबी लोक-गीत) गाने लगीं।

* ढोल जानी,
मार्दा धेले आयाँ थारां मेहरबानी

जी रोए ढोला
ढोल जानी
साडी धेले आवी थारी मेहरवानी
ढोल जानी
क्यों दुर चलयां थारी की निशानी

ढोल ज़ोर-ज़ोर से बज रहे थे और "ढोल जानी" के मनोहर गीत को अपनी गत की तूफ़ानी लहरों पर उठाकर सारी वादी के वातावरण में फैला रहे थे। श्याम का दिल वेचैन हो उठा। उसका जी चाहा कि वह भी उठ कर उन किसानों के दल में जा शामिल हो। हाथ में दरांती लेकर घास काटना शुरू कर दे और धरती की छाती से लगकर अपने जीवन की समस्त मध्यवर्गीय कृत्रिम लाँछनाओं को धो डाले—यह सोचता हुआ वह घर के भीतर चला आया और जल्दी से अपने वस्त्र बदल डाले। खुले कालर का कुरता और निकर पहनी और फिर भागता हुआ गंगू मिशर के पास चला गया और उससे कहने लगा "मुझे भी घास काटना सिखाओ।"

मिशर गंगू ने उसे सिर से पांव तक देखा, मुस्कराया और बोला "बाबू साहब, परमात्मा न करे आपको कभी घास काटना पड़े। भला आपको क्या पड़ी है। आराम से कुरसी पर बैठ कर हमारा तमाशा देखिये।"

"नहीं" श्याम ने मुस्कराते हुए कहा "नहीं, मिशर गंगू, मेहरवानी करके मुझे ज़रूर घास काटना सिखा दो।"

गंगू मिशर ने फिर उसे सिर से पांव तक देखा—कहने लगा, "आप बहुत जल्द थक जायेंगे और असल में यह काम इतना आसान भी नहीं है। मैंने जब पहली बार अपने बाप से घास काटना सीखा था तो आपकी ही तरह मुझे भी इसका बहुत शौक था। उस वक्त मेरी

उम्र पांच छः साल के लगभग होगी और........"

और गंगू मिशर चुप हो गया और उसकी आंखों में अपने बाप का चित्र घूमने लगा—उसका मुस्कराता हुआ चेहरा, सूरज की गरमी से भूरे गुलाबी गाल, कण्ठ में काले मनकों की माला..........उसने नन्हे गंगू को उठा कर अपनी छाती से लगा लिया...और फिर उसे दोनों हाथों में थाम कर अपने मुख के बिल्कुल सामने खड़ा कर लिया...और गंगू को अपने बाप का मुख बहुत बड़ा नज़र आने लगा....फिर उसने गंगू से पूछा, "बेटा दरांती चलाना सीखना चाहते हो?"

और गंगू ने अपनी छोटी सी दरांती हवा में घुमा कर खुशी से कहा, "हां, चाचा।"

और फिर उसके चाचा ने उसे दरांती चलाना सिखाया। घास को मुट्ठी में लाने के लिये किस प्रकार उंगलियों को आगे बढ़ाया जाता है। किस प्रकार उंगलियों की पोरों से आंखों का कार्य लिया जाता है। घास को पकड़ कर किस प्रकार हाथ के नीचे दरांती के गुज़रने के लिये फासला छोड़ा जाता है और फिर किस तरह दरांती मुट्ठी में पकड़ी हुई घास को एक धनुष के रूप में बिल्कुल ज़मीन के ऊपर से काट डालती है। उसका चाचा बड़े प्रेमपूर्वक उसे घास काटना सिखाता रहा था और जब उसने उसे सीख लिया था तो अपनी चाल को तेज़ करने के शौक में उसने किस तरह तेज़ी के साथ, अपने बाप की तरह दरांती चलाई थी। और फिर एकाएक वह चिल्ला उठा था। दरांती उसके हाथ में लग गई थी और वहां से लहू की धारा बह निकली थी। और उसके बाप ने कहा था "परवाह न करो बेटा, इस लहू की परवाह न करो। दरांती चलाये जाओ धीरे, धीरे; ज़्यादा तेज़ी की ज़रूरत नहीं। यह दरांती इसी तरह तुम्हें काटती रहेगी। जब तक तुम इसे अच्छी तरह इस्तेमाल करना नहीं सीख जाओगे।"

और फिर उसकी आंखों के सामने उसके बाप का वह चित्र फिर

गया जब वह सीताराम महाजन का ऋण चुकाते-चुकाते बूढ़ा हो गया था। उसके मुख पर झुरियां बन आई थीं और उसकी कमर दुहरी हो गई थी। वह मृत्युशैय्या पर पड़ा था। उसकी आंखें अन्दर धंस गई थीं और उसने गंगू के सिर पर हाथ रख कर कहा था—"परमात्मा तुझे सुखी रखे बेटा! तेरा कल्याण हो। लेकिन एक बात, केवल एक बात याद रखियो-कभी किसी सूदखोर का विश्वास न कीजो—कभी किसी सूदख़ोर का विश्वास न कीजो"—और फिर उसने धीरे से आंखें बन्द कर ली थीं..........

गंगू मिशर की आंखों में आंसू भर आये। उसने अपनी नंगी बाहों से उन्हें पोंछ कर कहा "ओह, मैं तो बहुत पीछे रह गया हूँ और दुल्ले सरदार से शर्त की हुई है।" फिर श्याम को सिर पर खड़ा देखकर कहने लगा। "माफ़ करना बाबूजी। मैं ज़म्मा चौकीदार को आपके साथ किये देता हूं, वह आपको दरांती चलाना सिखा देगा", और यह कह कर उसने ज़म्मां चौकीदार को आवाज़ दी और श्याम को उसके साथ कर दिया।

ज़म्मां श्याम को घास के एक अलग टुकड़े में ले गया और उसे दरांती चलाना सिखाने लगा। जब तीन-चार बार बताने के बाद श्याम धीरे-धीरे घास काटने लगा और बिलकुल ठीक ढंग से काटने लगा तो जम्मां बोला, "बाबू साहब, अब आप यहां बैठ कर अभ्यास करते जाइये। आपका हाथ इनशा-अल्ला बहुत अच्छी तरह चलेगा। मैं अपनी जगह पर जा कर बैठता हूँ। दुल्ले सरदार से शर्त की हुई है—ऐसा न हो कि शाम को...."कहता हुआ वह चला गया।

श्याम धीरे-धीरे दरांती चलाने लगा। उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे वह एक नई भाषा, नये साहित्य, नई सभ्यता और एक नये जीवन से परिचय पा रहा हो। यह एक नया संसार था। इसके अपने नियम थे। दरांती धीरे-धीरे चल रही थी। क, ख, ग—क ख, ग—दरांती किसान की लेखनी थी। इससे वह धरती की पट्टी पर लिखता था और ऐसे

फूल-बूटे बनाता था कि संसार भर के लेखक, चित्रकार और नीतिज्ञ उसके सामने तुच्छ मालूम होते थे। सर-र, सर-र दरांती चल रही थी—और उसे ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे धरती गीत गा रही है; उसके कंधे पर थपकी देकर कह रही है—शाबाश मेरे बेटे, दरांती चलाये जा। चल, यह तेरी सभ्यता की नींव है, तेरे धर्म की जन्मदात्री है, तेरे शरीर की आत्मा है। इसी से तेरी प्रसन्नताओं की नीव पक्की होती है। इसी से तेरे साहित्य और तेरी दार्शनिकता की सर्वोच्च सीढ़ी प्राप्त होती है। इसी से तेरी जाति की स्वतंत्रता और तेरे नारी-समाज के सतीत्व की रक्षा होती है। संसार में दुख, अकाल, और युद्ध उसी समय प्रविष्ट होते हैं जब मनुष्य दरांती चलाना भूल जाता है।

दरांती चलाते-चलाते श्याम की प्यास चमक उठी। उसने इधर-उधर देखा। परे वंती खड़ी पानी पिला रही थी। वह उसकी ओर एक टक देखने लगा। और वंती ने जैसे अपने मुख पर गढ़ी उसकी दृष्टि का अर्थ समझ लिया। यह शायद स्त्रियों की छठी ज्ञानेन्द्रिय होती है जो उन्हें इस प्रकार अनदेखी दृष्टि का अनुभव करा देती है। जो हो, वंती के मुख पर लाली छा रही थी—फिर उन दोनों की नज़रें मिलीं।

श्याम ने हाथ के संकेत से उसे अपनी ओर आने को कहा—

वंती अगस्त के हल्के-फुल्के बादल की तरह अठखेलियां करती हुई आई। उसके कपोल बिल्कुल गुलाबी हो गये थे और ओठों के कोने कांप रहे थे। और श्याम का जी चाहा कि वह अपने ओठ उन कांपती हुई पंखड़ियों के कोनों पर रख दे।

वंती ने आंखें झुकाते हुए कहा "जी, क्या कहते हैं आप ?"

वंती को देखकर उसे सदैव अपने कण्ठ में कोई चीज़ फँसती हुई सी अनुभव होती थी। वह रुक कर कहने लगा, "प्यास लगी है, भई !"

वंती मुस्कराई। बोली, "क्या पीयेंगे आप ? शर्बत, लस्सी या ठंडा पानी।"

वह क्षण भर के लिये मौन रहा, फिर बोला, "ठंडा पानी ठीक

रहेगा।"

"तो ठहरिये, मैं अभी लाती हूँ।"

वह एक गिलास में पानी ले आई।

श्याम ने इन्कार में सिर हिलाया। "देखती नहीं, मेरे हाथ में दरांती है। आज मैं हाथों से पानी पीऊंगा और इस एक गिलास से मेरा क्या होगा भला ?"

वंती फिर वापिस गई और अब एक बड़ी बाल्टी में पानी भर लाई।

श्याम हाथों से पानी पीने लगा—'पिला दे ओक से साकी जो मुझसे नफ़रत है।' लेकिन साकी बेचारा तो गिलास में पिला रहा था, और वह स्वयं ही ओक में पीना चाहता था—इसमें साकी का क्या दोष ? इस समय गालिब का यह शेर कुछ योंही उसके मस्तिष्क में घुसा आ रहा था—पिला दे ओक से साकी...........

वह पानी पीता रहा और जब उसकी प्यास बुझ गई तो उसने पानी पीना तो बन्द कर दिया परन्तु ओक को उसी तरह मुंह से लगाये रखा। ओक लबालब भरी हुई थी और पानी छलक-छलक कर बाहर गिर रहा था।

वंती ने पूछा "बस ?"

"नहीं तो" उसने हाथ हटाते हुए कहा "जी चाहता है इसी तरह ओक में पानी गिरता रहे, छलकता रहे और मैं पीता रहूँ।"

वंती ने चंचलता से कहा "तो पीते रहिये ना शौक से, हमारे यहां ठंडे पानी की कमी नहीं। लेकिन देखना, यह घास ज़रा ढंग से काटना नहीं तो शाम को खाना नहीं मिलेगा।"

और वे दोनों हंसने लगे।

फिर श्याम सिर झुका कर घास काटने लगा। वंती को अब अधिक देर वहां रुकना अनुचित लग रहा था। वह धीरे से बोली, "मैं अब

जाऊं ?'

श्याम ने उसी तरह सिर झुकाये, घास काटते हुए कहा, "वंती !"

"जी"

"वंती !"

"जी"

"वंती !"

"जी"

और फिर एकाएक वह वहाँ से चली गई और श्याम का हृदय किसी अज्ञात प्रसन्नता से भरपूर हो उठा। सहसा उसके मुंह से "सी" की आवाज़ निकली और उसका हाथ रुक गया।

दरांती ने उसे काट खाया था।

उसने दरांती की ओर देखा और फिर हाथ से बहते हुए रक्त की ओर। फिर उसने वंती की ओर देखा जो अब दूर खड़ी नूरां, सैयदां और चन्द्रा से बातें कर रही थी—जाने क्यों उसे अपना घाव भूल गया और वह फिर सिर झुका कर धीरे-धीरे घास काटने लगा।

: २२ :

सूर्यास्त से लगभग एक घंटा पूर्व ढोलिये जो पहले लतीरियों की पंक्तियों के मध्य में खड़े अपने ढोल पीट रहे थे अब दो टोलियों में बँट गये। एक टोली गंगू मिशर की पंक्ति के पीछे और दूसरी दुल्ले की टोली के पीछे खड़ी होकर ढोल बजाने लगी। मुकाबिला बड़ा सख्त था क्योंकि अब तक दोनों टोलियां बराबर नज़र आती थीं और सूर्यास्त तक इस बात का फैसला हो जाना था कि किस टोली ने अपना काम पहले समाप्त किया है।

ढोल ज़ोर२ से बजते रहे और दोनों टोलियां सिर झुकाये तन्मयता से काम करती रहीं। पन्द्रह बीस मिनट निकल गये। लतीरियों के शरीरों से नहीं, ढोलियों के शरीरों से भी पसीना चूने लगा। अब भी दोनों टोलियां बराबर थीं। सूरज पश्चिम को जा रहा था और हल्की-हल्की वायु बहने लगी थी जिसमें चील के जंगलों की सुगन्धि बसी हुई थी। दुल्ले और गंगू मिशर ने पश्चिम की ओर जाते हुए सूरज की तरफ देखा। घास के उस टुकड़े की तरफ देखा जिसे अभी काटना था और फिर दोनों ललकार कर अपनी-अपनी टोलियों को अधिक तेज़ी से काम करने के लिए उकसाने लगे।

दरांतियां अब इतनी तेज़ी से चल रही थीं कि श्याम हैरान रह गया। पांच मिनट, दस मिनट निकल गये। अब भी दोनों टोलियां बराबर थीं। फिर धीरे-धीरे दुल्ले की टोली आगे बढ़ती हुई दिखाई दी। ढोलों की आवाज़ दोनों टोलियोंको उकसाने लगी। दोनों टोलियां ऊंचे स्वरों में नारे लगा रही थीं लेकिन दुल्ले की टोली धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। सूर्य अस्त हो रहा था। सूर्य आधा अस्त हो गया।

अब केवल एक सुनहरी रेखा सी दिखाई दे रही थी। एक अंतिम सुनहरी सी रेखा और फिर सूर्य ने पहाड़ों के पीछे डुबकी लगाई और गुम हो गया। और जैसे ढोल अपनी पूरी शक्ति से बज उठे। दुल्ला अपनी टोली सहित घाटी के अंतिम छोर तक पहुँच गया था जहां से धान के खेत आरंभ होते थे। फिर उसके साथियों ने दरांतियां गट्ठों पर रख दीं और एक दायरा सा बनाकर, ऐड़ियां उछाल-उछाल कर और नारे लगाकर नाचने लगे। दुल्ला सरदार घाटी पर दौड़ता हुआ ऊपर चढ़ आया जहां गंगू की टोली सिर झुकाये घास के अंतिम टुकड़े में काम कर रही थी।

दुल्ला गंगू मिशर के सामने आकर खड़ा हो गया फिर अपने दायें हाथ की मुट्ठी बन्द करके उसके मुख के सामने घुमाते हुए बोला, "तरा-रा-रा-रा, चुग-चुग-चुग।"

सुनने में तो ये बिल्कुल अर्थहीन से स्वर थे परन्तु श्याम को इन्हें सुनकर और दुल्ले की हरकतों को देखकर जो उन अर्थहीन से स्वरों की व्याख्या कर रहे थे, स्पष्ट रूप से मालूम हुआ कि दुल्ला कह रहा है, "बस गंगू मिशर, देख लिया मुकाबिला करके! हार गये ना! अब बताओ?"

गंगू मिशर ने उठकर दुल्ले को गले से लगा लिया, बोला "भाई, तुम जीत गये।"

गंगू मिशर की टोली के लोग भी हंसने लगे।

फिर दुल्ले की टोली के लोग भी आ गये और सब ने मिलकर घास का अंतिम टुकड़ा साफ कर दिया। सूर्यास्त की लालिमा घास के गट्ठों पर इस प्रकार चमक रही थी मानो वे सोने के तिनकों के ढेर हों। लालिमा किसानों की आंखों में और उनके गालों पर जगमगा रही थी, उन गट्ठों पर से फिसलती जा रही थी जिन्हें बाड़ा रचने के लिये एक स्थान पर इकट्ठा किया जा रहा था।

एकाएक दुल्ला बोला "बड़ी तेज़ भूख लग रही है भाई, अब जल्दी से खाने का प्रबन्ध करो।"

गुलाम हुसैन बोला "अभी थोड़ी देर में सब कुछ तैयार हुआ जाता है। बारह आदमी तो केवल लतीरियों का खाना पकाने के लिये लगाये गये हैं।"

दुल्ला बोला "खुदा तुझे ज़िन्दा रखे, अरे जवान, खुदा तुझे ज़िन्दा रखे।"

सब हँसने लगे।

खाना खा चुकने के बाद दुल्ले ने गंगू मिशर के कंधे पर चढ़कर घाटी का एक चक्कर लगाया और फिर पलटते समय उसने गंगू को अपने कंधे पर उठा लिया और भागता हुआ पुनः बाग में आ गया। जब कन्धे पर गंगू मिशर को बिठाये वह वापिस पहुंचा तो सब किसान हंसने लगे।

संतराम बोला, "क्या अब गंगू मिशर ने शर्त जीत ली है?"

दुल्ला बोला "नहीं चाचा, मेरा ख्याल है कि अगली लतीरी गंगू मिशर जीतेगा। मैंने सोचा, अभी से यह बोझ सिर से उतार दूं।"

फिर एक कहकहा पड़ा।

गंगू मिशर बोला "दुल्ले सरदार! सच्ची बात तो यह है कि मेरी टोली में औरतें ज्यादा थीं वरना तुम कभी यह बाजी न ले जा सकते।"

चन्द्रा ने चमक कर कहा "हमने तुम्हारे मुकाबिले में दरांती चलाई है। विश्वास न हो तो अब फिर मुकाबिला कर देखो।"

सब हंसने लगे। यहां तक कि ढोलियों ने भी ढोलों से दगड़-दगड़, दगड़-दगड़ की आवाज़ें निकालीं।

खाना खाकर कुछ लोग तो वहीं घास पर लेट गये क्योंकि सुबह लतीरी फिर शुरू होनी थी। अन्य ने घास के गट्ठों के निकट एक घेरा सा बना लिया और गीत गाने लगे। दुल्ला कान पर हाथ रखकर "चन्ना", "माहिया", "सिपाहिया" और "सैफ उल्मलूक" गा रहा था।

*ओए.......रोए.......रे रे
बागां दे विच रोए, बुलबुल बोले
कसिलयां बोलन पानी ई-ई-ई
जिन्हा साडे सज्जन विछोड़े
सब उन्हां दी जानी-ई-ई-ई

जानी की "ई" को वह अपनी लय में इतनी देर तक खींचता जब तक कि उसके फेफड़ों में दम रहता। दुल्ले ही की बात न थी, सैफ-उल-मलूक गाने वाले सभी इसी तरह करते थे। श्याम ने सोचा, यह गाना भी है और प्राणायाम भी। जो विद्वानों ने कहा है कि गाने वालों को तपेदिक नहीं होती तो उनका अभिप्राय केवल सैफ़-उल-मलूक गाने वालों से होगा अन्यथा ये जो फ़िल्मी गीत आदि होते हैं, इनके गाने वालों का तो कमाल ही यही होता है कि फेफ़ड़े तो क्या गले में भी हरकत न हो। ओठ तक न हिलें और गाना आप ही आप बाहर निकलता रहे—जैसे जादूगर के मुंह से फ़ीता निकलता है।

और जब पुरुष मौन हो जाते तो स्त्रियाँ गाने लगतीं। या कभी यों भी होता कि एक पंक्ति स्त्रियाँ गातीं और दूसरी पुरुष, और बीच बीच में ढोलिये 'दढोगड़, दगड़-दगड़' की आवाज़ निकाल कर सब को हंसा देते हैं।

फिर ढोलियों ने भांडों की तरह मरासियों, जाटों, गूजरों, ब्राह्मणों और महाजनों की नकलें उतारीं। इसके बाद परियों और भूतों की कहानियाँ होने लगीं। गंगू मिशर का लड़का बोला, "इस वक्त संथाल की ढाब पर बौने नाचते हैं, चुड़ैलें रूई के गोले बनकर हवा में उड़ाती हैं और भूत संथाल की ऊंची चट्टानों पर बैठ कर अपने पात्र के सुमों पर आग के नाल लगाते हैं।"

---

* बागों में बुलबुल और नदी, नालों में पानी रो रहा है—जिन्होंने हमारे साजन को हमसे बिछुड़ा दिया उनकी जान को सब करते हैं।

"आग के नाल ?" श्याम ने आश्चर्य से पूछा।

"जी हां, बाबूजी" गोकुल ने कहा "भूतों के सुमों पर आग के नाल लगे होते हैं। एक बार मैं रात को पीर के नाले में से गुज़र रहा था कि मैंने अपने सामने भेड़ का एक सुन्दर सा बच्चा दौड़ता हुआ देखा। मैंने सोचा, शायद यह कहीं रास्ता भूल गया है। बड़ा सुन्दर लेला था। उसे पकड़ने के लिये मैं उसके पीछे दौड़ा लेकिन वह नाले में कहीं गायब हो गया। मेरे दिल में सन्देह हुआ और मैं इधर-उधर देख कर आगे बढ़ने लगा। सहसा मेरे आगे-आगे रुई का एक सफेद, बिलकुल सफ़ेद गोला सा उड़ने लगा और फिर थोड़ी देर बाद गायब हो गया। फिर जैसे किसी के हंसने की आवाज़ आई। बड़ी भयानक आवाज़ थी। मैंने अपने बाजू से अपने गुरु का दिया हुआ मंत्र जो चांदी में मंढा हुआ था (उसने अपने बाजू पर बंधे हुए चांदी के तावीज़ की ओर संकेत किया) उतारकर अपने मुंह में रख लिया क्योंकि मेरे गुरु ने इसी तरह कह रखा था। मैं फिर आगे बढ़ने लगा। फिर दूर नाले के एक तल्ले पर मैंने भूतों को नाचते देखा। उनके सुम्मों से आग के शोले निकल रहे थे। उस तल्ले पर और कुछ नज़र न आता था, सिर्फ आग के शोले नाचते हुए दिखाई देते थे। तब मैंने अपने गुरु के मंत्र का जाप किया और नाले में से गुज़रने लगा। जब मैं नाले को पार कर चुका तो पीछे से आवाज़ आई—ऐ जवान, तू भाग्यवान् था कि अपने गुरु के मंत्र की शक्ति से बच गया नहीं तो आज तेरी लाश यहीं रहती। घर आकर मुझे चार-पांच दिन तक बुखार रहा लेकिन गुरुजी इलाज करते रहे और मैं बच गया।"

गंगू मिशर का लड़का बोला "मैं उस आदमी को पांच रुपये दूंगा जो इस वक्त संथाल की डाब पर जाये।"

नूरां बोली "लाओ एक रुपया ही निकालो। मेरा तो घर ही वहां है। मैं तो वहीं रहती हूँ और अब भी मुझे वहीं जाना है। लाओ, निकालो रुपया।"

सब किसान हंसने लगे और विषय भूतों से संथाल डाब, फिर तैरने की कला और फिर मछलियां पकड़ने के तरीकों पर जा पहुंचा। बहुत देर तक बातें होती रहीं। कभी-कभी कोई बीच में गाने लगता और अन्य लोग भी उसके स्वर में अपना स्वर मिला देते। फिर किसी को कोई नई बात सूझती और वह एक लम्बी-चौड़ी कहानी कहने लगता। और सारा घेरा ध्यानपूर्वक से उसकी कहानी सुनने लगात। इसी तरह रात के बारह बज गये। फिर लोग जमाइयां लेने लगे और घेरा टूटने लगा। कुछ तो वहीं घास का बिस्तर बनाकर सो गये और कुछ अपने घरों को चले गये।

श्याम ने बंगले की ओर जाते-जाते फिर एक नजर उधर डाली जहां दूध जैसी सफेद चांदनी के बिस्तर पर घास के गट्ठे सोये पड़े थे और उनके निकट ही उन्हें काटने वाले किसान भी। उनके चेहरों पर चांद चमक रहा था, ऊपर तारे मुस्करा रहे थे और बाग की सुगन्धित वायु उनके मंद श्वास को सुवासित कर रहा था।

सारी धरती से सुगन्धि उठ रही थी। जैसे धरती ने उन्हें अपनी नरम और मुलायम गोद में ले लिया था और थपक-थपककर कह रही थी "सो जाओ! अपनी मां की गोद में सो जाओ। यहां तुम्हें कोई भय नहीं है।"

और श्याम ने सोचा, "निरसंदेह भय वहीं होता है जहां बंगले बने होते हैं और उनके बाहर चौकीदार पहरा देते हैं!"

पीर के मेले में एक दिन रह गया था और श्याम के पिता थानेदार के साथ मेले के प्रबंध का निरीक्षण करने गये थे। कई और कर्मचारी उनसे पहले जा चुके थे। बहुत से दुकानदारों ने अपनी दुकानें वहां भेज दी थीं। इस मेले में तहसील के लगभग सभी गांवों से लोग इकट्ठे होते थे। दूसरे इलाकों से भी लोग इसमें सम्मिलित होने आते थे। रवि और निम्मी ने तो तीन-चार दिन पूर्व ही से मेले पर जाने की तैयारियां शुरू कर दी थीं। नये बूट, नये फ्रॉक, नई टोपियां, हर चीज़ नई होनी चाहिये।

तीसरे पहर की चाय पीकर श्याम और अलीजू नदी के किनारे सैर को निकल गये। अलीजू डाक्टर के सम्बंध में बहुत चिन्तित था क्योंकि इस बार सचमुच ही बड़े हाकिमों ने डाक्टर से ब्राह्मणों की अर्ज़ी में लगाए गए आरोपों का प्रत्युत्तर मांगा था। उसने बताया कि पंडित सरूप किशन स्वयं हाकिमों से मिलने गया था ताकि गांव के ब्राह्मणों और महाजनों की बातें ज़ुबानी सुना सके। मामला बड़ा बेढब था और उसे भय था कि कहीं बेचारे डाक्टर के विरुद्ध सरकारी जांच-कमीशन न बिठा दिया जाये। अलीजू पूर्णतया जानता था कि इस तरह की जांच का क्या परिणाम निकला करता है।

"लेकिन" श्याम ने कहा, "डाक्टर बिलकुल निर्दोष है। कोई उसका क्या बिगाड़ सकता है? क्या उसने अर्ज़ी के जवाब में हाकिमों को ठीक परिस्थिति नहीं बताई?"

अलीजू ने बताया कि डाक्टर ने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है कि उसने मोहनसिंह के कहने पर ही चन्द्रा को वार्ड में रहने की स्वीकृति

दी थी। वह रोगी की इच्छा के विरुद्ध उसके सम्बन्धियों को उसकी देख रेख के लिये कैसे आज्ञा दे सकता था? बाकी रही चन्द्रा के नाबालिग़ होने की बात तो इसके लिये वह कोई राय देने को तय्यार न था, क्योंकि यह एक मैडिकल मामला था। जब तक वह या कोई और मेडिकल बोर्ड इस बात का फैसला न करे, वह इस बारे में कोई भी परामर्श न दे सकता था।

श्याम ने डाक्टर के उत्तर को सराहते हुए कहा, "ठीक ही तो है, कितना ठोस और उचित जवाब है। मेरे विचार में डाक्टर के बारे में आप को चिन्तित होने की ज़रूरत नहीं।"

अली जू बोला, "बात असल में यह है श्याम साहब कि दुनिया में हर एक ठोस और उचित बात हमेशा ठीक नहीं मानी जाती और जहां हिन्दू-मुसलिम सवाल पैदा हो जाये बदकिसमती से वहां लोग युक्तियों के स्थान पर साम्प्रदायिक भावना से ज़्यादा काम लेते हैं। यह एक कटु सत्य है। आप अभी नौजवान हैं, कालेज में पढ़ते हैं। आपको अभी इन बातों का अनुभव नहीं। अलीजू से पूछिये। पांच साल से मेरी तरक्की रुकी हुई है। सिर्फ मुसलमान होने के कारण मुझे तहसीलदार नहीं बनाया जाता। हालांकि कई नालायक हिन्दू..."

वह चुप हो गया। फिर थोड़ी देर के बाद बोला "मैं मानता हूं कि यह ज़हर दोनों तरफ़ पाया जाता है। हिन्दू मुसलमान का गला काटने से नहीं चूकता और अगर मुसलमान का बस चले तो वह भी उसे नुकसान पहुंचाये बिना नहीं छोड़ता।"

श्याम ने कहा "आप भी युक्तियों की अपेक्षा भावावेश से काम ले रहे हैं। यह मामला धार्मिक नहीं नैतिक और आर्थिक है, यदि ऐसा न होता तो मुसलमान कभी मुसलमान का गला न काटता और हिन्दू कभी हिन्दू के विरुद्ध न होता—नौकरियों की बात ही को लीजिये—"

अलीजू आज बहुत उदास था और इस मामले पर अधिक बहस न करना चाहता था। श्याम को ऐसा लगा कि उसे कोई ताज़ा घाव

लगा है। शायद उसकी तरक्की की बात फिर खटाई में पड़ गई है। उसने पूछा "आप कल मेले में चलेंगे ?"

"नहीं।"

"क्यों ? आप क्यों नहीं जायेंगे ? बाकी सब अफ़सर जा रहे हैं बल्कि कई ऐसे कर्मचारी भी जिनका वहां कोई काम नहीं सरकारी दौरे का बहाना करके मेला देखने जा रहे हैं। आप तो इलाके के मजिस्ट्रेट हैं, जहां और जब चाहें जा सकते हैं।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊंगा"—अली जू ने निश्चित स्वर में कहा "तहसीलदार साहब वहां चले गये हैं, मेरे जाने की अब क्या ज़रूरत है। आप तो जा ही रहे हैं ना ?"

"हां, हमारे यहां से तो सब लोग जा रहे हैं। हम लोग कल प्रातः यहां से चलेंगे। माताजी होंगी, रवि, निम्मी, छाया और उसकी लड़की वंती और दो-एक नौकर। आप भी चलिये ना ! अपनी बेग़म को भी साथ ले चलिये।"

"नहीं साहब"—अली जू ने उदासीन स्वर में कहा, "मुझे यहां कचहरी का काम संभालना है। तहसीलदार साहब के जाने के बाद कम से कम मुझे तो यहां रहना चाहिये। कम से कम एक मजिस्ट्रेट का तो हैड-क्वार्टर पर होना ज़रूरी है।"

थोड़ी दूर तक वह दोनों चुपचाप चलते रहे फिर अलीजू उसकी ओर झुक कर बोला, "बात असल में यह है श्याम साहब कि जिन्दगी में मुहब्बत और नफ़रत से बढ़कर भी एक चीज़ है और वह है रुपया। सचाई, ईमानदारी और योग्यता से बढ़कर भी एक चीज़ है और वह है रुपया। मेरे ख्याल में रुपया ही सबसे बड़ी शक्ति है। अब मैं आपको एक भेद की बात बताता हूं" और वह और भी श्याम के समीप हो गया और झुककर भेदपूर्ण स्वर में कहने लगा, "इन हिन्दू नायब-तहसीलदारों ने बड़े अफसरों को रिश्वत दी है, रुपया खिलाया

है। यहां अलीजू पांच वक्त नमाज़ें पढ़ता रहा है और उस ज़रूरी फ़र्ज़ से बिल्कुल बेख़बर रहा है। यह मुझे अपनी बेख़बरी ही की सज़ा मिल रही है।"

"इसीलिये तो मैंने कहा था कि यह मामला धार्मिक नहीं, आर्थिक है। धर्म की सूक्ष्मताओं को भी इस महाजनी युग ने अपने सुनहरे जाल में जकड़ लिया है। जीवन चाहे हिन्दू का हो चाहे मुसलमान का, आर्थिक दृष्टि ही से परखा जाता है। और एक तरह से यह ज़रूरी भी है। मशीन-युग में इससे अच्छा भला और कौनसा माप होगा? हिन्दू-मुसलिम प्रश्न जब भी हल होगा इसी पैमाने से मापने के बाद होगा। केवल एक दूसरे को भाई-भाई कह देने से यह प्रश्न हल नहीं हो सकता। भाइयों के अधिकार होते हैं। जायदाद, नक़द रुपया-पैसा और बहुत सी ऐसी बातें होती हैं जिनका फ़ैसला करना बहुत ज़रूरी होता है। इस फ़ैसले के बिना तो दो भाई भी चैन से नहीं रह सकते।"

"यह ठीक है" अली जू बोला "लेकिन अगर कोई इस फ़ैसले के बाद भी अलग रहना चाहे जैसा कि भाइयों में प्रायः होता है तो..."

"तो उसे अलग रहने देना चाहिये, उसे अपना घर अलग बनाने दीजिये। इसी में अक्लमंदी है।"

अली जू बोला "तो इसका मतलब यह हुआ कि आप हिन्दू-मुसलमानों को दो अलग-अलग जातियां मानते हैं और उन्हें अलग-अलग रखना चाहते हैं?"

श्याम बोला "नहीं, मैं तो उन्हें भाई-भाई समझता हूं। मैं तो हिन्दू और मुसलमानों ही को नहीं दुनियाभर के इन्सानों को भाई समझता हूं और उन्हें अलग-अलग देखने की बजाय एक साथ मिल-जुलकर, एक नई सभ्यता, एक नई जीवन-व्यवस्था और एक श्रेष्ठ तथ्य-ज्ञान को जन्म देते देखना चाहता हूं। आप कहेंगे कि फिर मैं

हिन्दुओं और मुसलमानों को अलग-अलग रहने का अधिकार क्यों देना चाहता हूँ ? मेरे विचार में यह बहुत आवश्यक है। जब तक एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को वही अधिकार नहीं देगा जो वह अपने लिये सुरक्षित रखना चाहता है, संसार में कभी शांति नहीं हो सकती। इसलिये मेरी दृष्टि में अलग रहने के अधिकार को स्वीकार कर लेना चाहिये। और एक देश के दो या दस या बीस टुकड़े कर दिये जायें तो इससे उस देश के लोगों की मूल समस्यायें हल नहीं होतीं। यूरोप में कई बार ऐसा हो चुका है। वहां एक-एक देश के सात-आठ टुकड़े कर दिये गये और कभी सात-आठ छोटे-छोटे देशों को मिलाकर एक देश बना दिया गया। लेकिन केवल भौगोलिक सीमा-परिवर्तन से तो जनता के दुख दूर नहीं हो सकते। इससे न तो बेकारी का अन्त होगा, न गुलामी का और न भूख का।"

"फिर ?" अलीजू बोला। आज वह स्वयं बातें न करना चाहता था, केवल सुनना ही चाहता था "फिर क्या होना चाहिये ? आप भी अजीब सी बातें करते हैं। कभी कुछ और कभी कुछ। पहले कहते हैं कि अलग घर बना कर रहो, अब कहते हैं कि इससे कुछ लाभ न होगा। अगर इसमें कोई लाभ नहीं है तो आप ऐसी सलाह ही क्यों देते हैं।"

श्याम ने कहा "मैंने कहा था कि अलग रहना पहले एक मानसिक प्रगति है। उदाहरणतया एक भाई अलग रहना चाहता है, दूसरा भाई अलग रहने को बुरा समझता है। मैं यह चाहता हूँ कि बजाय इसके कि दोनों भाई इस सिद्धान्त की बात पर लड़ें और कट मरें, दोनों भाई अलग रहने के अधिकार को स्वीकार कर लें। इस मानसिक प्रगति के बाद क्रिया शुरू होती है। हो सकता है कि जब अलग रहने के अधिकार को स्वीकार कर लिया जाये तो दूसरा भाई उसे क्रिया में न लाये, या उस समय तक क्रिया में न लाए जब तक कि वह अपने जीवन को खतरे में नहीं समझता। अब इसे यों लीजिये कि यदि उस

ने अलग रहने का फैसला कर लिया है तो उसे अलग रहने देना चाहिये। यहां पहुँचकर, मैं केवल यही कहता हूँ कि इतिहास और मनुष्य का तजुर्बा यही बताता है कि अलग रहने से मनुष्य की मूल समस्यायें कभी हल न होंगी। जो आदमी इसमें विश्वास नहीं रखता उसे यह अधिकार दीजिये कि वह तजुर्बा करके देख ले।"

"लेकिन यह तजुर्बे कब तक होते रहेंगे?"

"जब तक हर इंसान दूसरे इंसान को वही अधिकार नहीं देता जो वह अपने लिये सुरक्षित रखना चाहता है।"

बहस समाप्त हो गई लेकिन श्याम के लिये तो अभी बहस का आरंभ हुआ था। वह कई बार इस समस्या पर विचार कर चुका था। आज रह-रहकर अलीज़ की चिंतित मुद्रा उसकी आंखों के सामने घूम रही थी। उस चिंतित मुद्रा ने उस प्रश्न को जैसे फिर उसके सामने ला खड़ा किया। और वह सोचने लगा—शायद इस प्रश्न का हल केवल आर्थिक ही नहीं प्रत्युत भावनाओं पर भी आश्रित है। यह प्रश्न दोनों दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। जातीय और राष्ट्रीय भेद-भाव इस अन्ध-भावुकता ही की नींव पर खड़े होते हैं। एशिया की जातियां युरोपियन जातियों को मूर्ख, विमूढ़, कमीना और धोखेबाज समझती हैं। पश्चिमी जातियां एशिया की जातियों को निष्कर्मण्य और मूर्ख समझती हैं। अनेकों हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से केवल इन्हीं भावों के आधार पर घृणा करते हैं। बहुत से ईसाई चाहे वे किसी देश के रहने वाले हों इन्हीं भावों के वशीभूत यहूदियों से घृणा करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन देशीय, जातीय और धार्मिक भेद-भावों की तह में इस कोरी भावुकता के अतिरिक्त आर्थिक खींचातानी भी होती है। लेकिन इस प्रश्न को हल करने में भावों को बिल्कुल अलग कर देना एक बहुत बड़ी भूल है। इसी कारण से गांधी ने अलग रहने के अधि-

कार को मानव-अधिकार मनवाना चाहते हैं।

लेकिन यदि केवल अलग रहने से जनता की मूल समस्यायें सिद्ध न हो सकती थीं तो चार पांच देशों को इकट्ठा मिला देने से भी यह समस्यायें न सुलझ सकती थीं। यूरोप ने तजुर्बा करके देख लिया था, एशिया ने भी बहुत पहले यह तजुर्बा करके देख लिया था और अब भी यह तजुर्बे हो रहे थे। ये भौगोलिक तजुर्बे जो कोरी आत्म-प्रवंचना सिद्ध होते हैं और उसके बाद फिर वही बेकारी, भूख, परतंत्रता, जातीय भेद। और ये समस्यायें उस समय तक नहीं सुलझ सकती हैं जब तक मनुष्य समष्टि-जीवन और आर्थिक समानता के सिद्धान्तों को नहीं अपना लेता। वह उस समय तक आर्थिक समानता के सिद्धान्त को नहीं मानेगा जब तक वह उन जातीय, राष्ट्रीय, धार्मिक भेद-भावनाओं पर विश्वास रखेगा। तो क्या यह प्रश्न केवल भावना पर आधारित था? क्या इस छोटे से भूमंडल के समस्त दुखों का कारण मनुष्य की बुरी भावनायें थीं?

क्या एशिया के नीतिज्ञ सत्य-मार्ग पर थे? क्या सचमुच पहले उस मानसिक क्रान्ति की आवश्यकता थी ताकि आर्थिक क्रान्ति की नींव रखी जा सके? परन्तु क्या यह सत्य नहीं था कि आर्थिक समानता स्वयं एक ऐसी मानसिक-क्रान्ति का आधार-स्तम्भ है जिसके निर्माण का वह इच्छुक था? तो क्या यह कहना ठीक होगा कि मानसिक और आर्थिक क्रान्ति दोनों साथ-साथ चलती हैं, एक दूसरी पर प्रभाव डालती हुई, एक दूसरी से शक्ति, ग्रहण करती हुई!

समस्या बड़ी जटिल है, उसने सोचा। बिल्कुल सिर-दर्द। मनुष्य क्यों न इस प्रकार की दर्शन-सम्बन्धी बातों से विमुख हो जाये और ऐसी बातों के सम्बन्ध में सोचने की अपेक्षा सुन्दर आकृतियों के बारे में सोचे—सुन्दर, जैसे आकाश के तारे, जैसे तरनारि के महकते हुए फूल, जैसे पतले, मुस्कराते हुए ओंठ जिनके किनारे हर समय किसी अज्ञात भाववश काँपते रहते हैं......

: २४ :

दूसरे दिन वे पीर के मेले को चल पड़े। अभी सूर्योदय न हुआ था और सारी वादी पर एक हल्का-हल्का पीला सा प्रकाश छाया हुआ था। कोहरे से घास सफेद हुई पड़ी थी। कबूतरों के जोड़े हवा में उड़े जा रहे थे और वायुमंडल में चील के झूमरों की भीनी-भीनी सुगन्धि रमी हुई थी। श्याम अपने शरीर को बहुत हल्का अनुभव कर रहा था। उसे अपने शरीर के रोम-रोम में मीठी सर्दी का अनुभव हो रहा था, उसने सोचा, इसीलिये मुझे अगस्त के दिनों की प्रभात इतनी प्यारी लगती है, इनमें मानो किसी कुमारी की सी लावण्यता और माधुर्य हो और ऐसी सुन्दरी की-सी पवित्रता जिसके ओंठ अभी चुम्बन के कोमल आनन्द से अपरिचित हों। वह धीरे-धीरे अपने ओंठों से सीटी बजाने लगा। फिर उसने घोड़े की चाल हल्की कर दी और बाग खेंच कर, पीछे मुड़ कर देखने लगा।

वह अपने काफ़िले से काफ़ी आगे निकल आया था। घोड़ा रोक कर वह उन लोगों की प्रतीक्षा करने लगा। सब से आगे गुलाम हुसैन था। उसके पीछे रवि और निम्मी घोड़ों पर बैठे वादी के दृश्य देखते, एक दूसरे को हाथों से संकेत करते चले आ रहे थे। श्याम की माता को सदैव यह भय लगा रहता था कि कहीं रवि और निम्मी घोड़ों से न गिर पड़ें, यद्यपि वे दोनों अपने आप को घुड़सवार ही नहीं बल्कि शह-सवार समझते थे। श्याम की माता उनके पीछे एक खच्चर पर आ रही थीं, उनके साथ छाया की खच्चर थी और आखिर में बंती की। उनके पीछे दो नौकर थे जो पैदल आ रहे थे और जिन्होंने खाना, फल और दूसरा सामान उठा रखा था।

वह अपना घोड़ा रोके एक ओर खड़ा था और काफ़ला उसके पास से निकल रहा था। गुलाम हुसैन मुस्कराया, रवि और निम्मी चिल्लाये "आपा जी, देखो उस चोटी पर बरफ़ है। है ना बरफ़—सचमुच !"

श्याम ने मुस्करा कर सिर हिलाया।

उसकी माता बोली "भई, तुम हमारे साथ-साथ चलो ना, घोड़ा दौड़ा कर आगे क्यों निकल जाते हो ?"

श्याम ने मुस्कराकर कहा, "इसीलिये तो घोड़ा रोके यहां खड़ा हूं।"

फिर वह वंती के साथ हो लिया और वे दोनों घोड़ों की लगामें, ढीली किये धीरे-धीरे चलने लगे। वंती ने श्वेत रेशम का सूट पहिन रखा था और कमर में श्वेत नॉन का चुना हुआ लहरिया पेटी की तरह बांधा हुआ था। जूड़े में तरनारि के श्वेत सितारे थे जिनकी तेज़ सुगन्धि हवा में फैल रही थी। हाथों में सोने की चूड़ियां थीं, गोल कलाई में गोल सा झुकाव पड़ता था, मानो झील के स्तर पर एक छोटा सा भंवर। लम्बी उंगलियों की पोरों में भी यही गोलाइयां थीं और श्याम को ऐसा आभास हुआ जैसे वह उन भंवरों में तैर कर डूब जायेगा— उसने वंती की ओर देखा और वंती ने उसकी ओर, परन्तु दोनों मौन रहे—किसी-किसी समय कुछ कहना व्यर्थ होता है।

अब वे काफ़िले से बहुत पीछे रह गये थे। खाना और सामान ले जाने वाले नौकर भी दूर निकल गये थे। घोड़े धीरे-धीरे चले जा रहे थे। सूरज अभी उदय न हुआ था, श्याम ने पीछे की ओर मुड़कर देखा— पूर्व में प्रकाश बढ़ रहा था।

श्याम बोला "अब तो किसी भी क्षण सूर्य निकल आएगा और फिर यह सुन्दर प्रभात समाप्त हो जायेगी।"

वंती मौन थी और सिर उठाये काफ़िले की ओर देख रही थी या शायद किसी दूसरी ओर देख रही थी। उसकी लम्बी गरदन की श्वेत कोमलता, वह सुन्दर झुकाव, मानो किसी प्रकाश-मण्डल का

किनारा, मानो प्रथमा के चाँद की रेखा। श्याम के कण्ठ में पुनः कोई चीज़ रुकने लगी।

घोड़े चुपचाप चलते रहे—साथ-साथ। फिर श्याम ने धीरे से अपना हाथ बढ़ाकर वंती का हाथ अपने हाथ में ले लिया—सूरज निकल आया। जैसे सूरज के निकलते समय पूर्वी-आकाश का सुनहला प्रकाश धीरे-धीरे सारे आकाश पर फैल जाता है, उसी तरह श्याम ने वंती के कपोलों की लालिमा को सारे मुख पर फैलते देखा। उसके ओठों के किनारे कांपने लगे और श्याम को लगा मानो कोई पक्षी देवदार की डाली के किनारे पर बैठा पर तोल रहा हो। उस समय सूरज ने जिस प्रकार अपने प्रकाश से वादी को परिपूर्ण कर दिया था उसी प्रकार वंती के हाथ का कोमल स्पर्श एक सुनहरे प्रकाश की तरह श्याम की आत्मा में फैलता चला गया और श्याम कुछ कह न पाया, कुछ सोच न पाया, मानो उसके समस्त भाव उसी प्रकाश में घुल गये थे और चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश था। प्रकाश और मूकता, मूकता और प्रकाश दोनों एक दूसरे की प्रतिध्वनि मालूम होते थे।

घोड़े चुपचाप चलते रहे—साथ-साथ। दोनों हाथ कुछ इस प्रकार आपस में मिले हुए थे मानो अब संसार की कोई शक्ति उन्हें पृथक् न कर सकती थी। दोनों हाथों में एक ही लहर दौड़ रही थी जो उन दोनों के शरीर में एक साथ समा रही थी। दोनों हाथों में एक ही नदी की गति थी, एक ही गीत की लय—और यह अनुमान ही न हो सकता था कि एक हाथ कहां से शुरू होता है और दूसरा कहां समाप्त। दोनों हाथ एक दूसरे के साथ जुड़े हुए प्रतीत होते थे जैसे दो सितारे दो भिन्न-भिन्न केन्द्रों पर घूमते-घूमते एकाएक एक दूसरे पर आ टिके हों और कोई यह न बता सकता था कि वह सितारा यह है और यह वह।

फिर दोनों ने घोड़ों को एड़ी लगाई—दोनों ने आह्लादपूर्ण आंखों से एक दूसरे की ओर देखा—जैसे दोनों के मन में एक साथ ही यह

विचार उत्पन्न हुआ था कि उन्हें घोड़ों को दौड़ाकर क़ाफ़िले के साथ मिल जाना चाहिये।

उन्होंने घोड़ों को सरपट डाल दिया। घोड़े उड़े चले जा रहे थे—साथ-साथ, गरदन के साथ गरदन, काठी के साथ काठी और उनके साथ ही दोनों घुड़सवारों की निरंतर एक जैसी हलचल। एकाएक वंती का घोड़ा एक तने हुए धनुष की तरह अपनी पिछली टांगों पर खड़ा हो गया और श्याम ने उसी क्षण लपक कर उसके मुंह की लगाम से उसे पकड़ लिया।

"छोड़ दो-छोड़ दो—इसे" वंती ने कहा "मैं अभी इस कमबख्त को ठीक किये देती हूं" इतना कह उसने घोड़े की बग़लों में एड़ियाँ चुभोईं, दो-तीन चाबुक लगाये और घोड़ा तीर की तरह हवा को चीरने लगा।

कुछ क्षणों के लिये श्याम उस मिटते हुए चित्र को देखता रहा फिर उसने भी घोड़े के चाबुक लगाया।

एक दूसरे के बाद सरपट घोड़े दौड़ाते हुए वह क़ाफ़िले से जा मिले।

उसकी माता ज़रा चिंतित स्वर में बोली "तुम कभी घोड़ा दौड़ाने के लिये आगे चले जाते हो, और कभी पीछे रह जाते हो कहीं इस शौक में हाथ-पांव न तोड़ बैठना। पहाड़ी सड़क है—और इधर देखो, कितनी गहरी खाई है। मेरे तो देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं और भला इस वंती को क्या शौक कूदा है, मर्दों की तरह घोड़ा दौड़ाती फिर रही है। कहीं गिर पड़ी, चेहरे पर कोई जख़्म आ गया या नाक-वाक बैठ गई तो अच्छा वर भी न मिलेगा, बेटी!"

सब लोग हँसने लगे। छाया बोली, "मेरी बेटी को शुरू ही से घोड़े की सवारी का शौक रहा है। इसके पिता ने इसके लिये सदा घोड़ा या खच्चर रखा और मैंने भी हमेशा इसका यह शौक पूरा किया है। अब तो खैर जवान हो गई है और इसने स्वयं ही यह खेल छोड़ दिया है लेकिन जब यह अभी बच्ची थी तो, दिन-रात घोड़े की पीठ

केनारा, मानो प्रथमा के चाँद की रेखा। श्याम के कण्ठ में पुनः कोई चीज़ रुकने लगी।

घोड़े चुपचाप चलते रहे—साथ-साथ। फिर श्याम ने धीरे से अपना हाथ बढ़ाकर वंती का हाथ अपने हाथ में ले लिया—सूरज निकल आया। जैसे सूरज के निकलते समय पूर्वी-आकाश का सुनहला प्रकाश धीरे-धीरे सारे आकाश पर फैल जाता है, उसी तरह श्याम ने वंती के कपोलों की लालिमा को सारे मुख पर फैलते देखा। उसके ओठों के किनारे कांपने लगे और श्याम को लगा मानो कोई पक्षी देवदार की डाली के किनारे पर बैठा पर तोल रहा हो। उस समय सूरज ने जिस प्रकार अपने प्रकाश से घाटी को परिपूर्ण कर दिया था उसी प्रकार वंती के हाथ का कोमल स्पर्श एक सुनहरे प्रकाश की तरह श्याम की आत्मा में फैलता चला गया और श्याम कुछ कह न पाया, कुछ सोच न पाया, मानो उसके समस्त भाव उसी प्रकाश में घुल गये थे और चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश था। प्रकाश और मूकता, मूकता और प्रकाश दोनों एक दूसरे की प्रतिध्वनि मालूम होते थे।

घोड़े चुपचाप चलते रहे—साथ-साथ। दोनों हाथ कुछ इस प्रकार आपस में मिले हुए थे मानो अब संसार की कोई शक्ति उन्हें पृथक् न कर सकती थी। दोनों हाथों में एक ही लहर दौड़ रही थी जो उन दोनों के शरीर में एक साथ बसा रही थी। दोनों हाथों में एक ही नदी की गति थी, एक ही गति की लय—और यह अनुमान ही न हो सकता था कि एक हाथ कहां से शुरू होता है और दूसरा कहां समाप्त। दोनों हाथ एक दूसरे के साथ जुड़े हुए [illegible] होते थे जैसे दो सितारे दो भिन्न-भिन्न केन्द्रों पर घूमते-घूमते एकाएक एक दूसरे पर आ टिके हों और कोई यह न बता सकता था कि वह सितारा यह है और वह यह।

फिर दोनों ने घोड़ों को एड़ी लगाई—दोनों ने आह्लादपूर्ण आंखों से एक दूसरे की ओर देखा—जैसे दोनों के मन में एक साथ ही यह

मुश्किल से मिलता है। बोला, "इधर समीप तो मुझे कोई चश्मा नज़र नहीं आता।"

नीचे वादी में बहती हुई नदी चांदी के एक फ़ीते की तरह चमक रही थी। सहसा वंती की दृष्टि उस पर पड़ी, बोली "बहुत प्यास लगी है।"

श्याम बोला "आओ ज़रा घोड़े तेज़ कर लें। आगे कहीं कोई नाला या चश्मा मिल ही जायेगा।"

मार्ग ऊपर ही ऊपर जा रहा था, वादी के नीचे मैदान में वृक्षों के झुंड, धान के खेत, बहती हुई नदी और खेतों में काम करते हुए किसान छोटे-छोटे खिलौने से मालूम होते थे।

एक नाला मिला परन्तु उसमें केवल नीले-नीले से पत्थर चमक रहे थे, नीले पानी की चमक गायब थी। आगे बढ़े तो एक किसान मिला। श्याम ने उससे पूछा "क्यों भई, यहां समीप कोई चश्मा भी है?"

किसान बोला, "यह रास्ता छोड़कर इस घाटी के ऊपर कोई दो सौ गज़ चले जाओ। वह जहां चीढ़ का पेड़ खड़ा है—वह जहां झाड़ियों का झुंड सा नज़र आता है—देखा तुमने?"

"हां" श्याम ने सिर हिलाया।

फिर उसने वंती की ओर देखा फिर श्याम की ओर, फिर ज्यों ही उसने उनके कपड़ों पर नज़र डाली उसका स्वर एकदम बदल गया, "आप कहां जा रहे हैं?"

"पीर का मेला देखने" श्याम बोला।

किसान कहने लगा, "तो हजूर रास्ता भूल गये हैं, यह रास्ता तो ऊपर के एक गांव को जाता है। असल रास्ता तो आप नीचे छोड़ आये हैं। खैर, कोई बात नहीं, आप चश्मे पर जाकर पानी पी लें फिर इसी रास्ते पर थोड़ी दूर और ऊपर जाइयेगा। वहां आपको एक पगडंडी

से लगी रहती थी। एक तो यह शौक था इसे और एक था ऊंचे-ऊंचे पेड़ों पर चढ़ने का। कितना ही ऊंचा, टेढ़ा-मेढ़ा खतरनाक पेड़ क्यों न हो यह उस पर गलहरी की तरह चढ़ जाती थी।"

छाया मातृ-गौरव से प्रफुल्लित अपनी बेटी की ओर देख रही थी जिसका मुख सूर्य की तरह लाल हो रहा था और छाती ज़ोर से कांप रही थी।

श्याम रवि और निम्मी के साथ हो गया और उनके कान में कहने लगा "कहो वंती बहिन गलहरी, वंती बहिन गलहरी...."

और दोनों बच्चे प्रसन्नता से चिल्लाते हुए कहने लगे "वंती बहिन गलहरी, वंती बहिन गलहरी।"

और वंती दिखावे के क्रोध से श्याम की माता से कहने लगी "मां जी देखो ना, यह रवि और निम्मी को सिखाकर मुझे गालियां दिलवा रहे हैं" और फिर रवि और निम्मी की ओर हाथ हिला कर बोली "पीटूंगी तुम्हें, ठहरो तो सही।"

रवि और निम्मी पहले से भी अधिक ज़ोर से चिल्लाने लगे "वंती बहिन गलहरी, वंती बहिन गलहरी।"

"न बेटा" माता ने प्यार से कहा "बड़ी बहिन को गलहरी नहीं कहा करते।"

कुछ देर तक काफिले के साथ-साथ चलने के बाद घोड़े दौड़ा कर वे आगे निकल आये थे। धूप खिल चुकी थी। यहां मार्ग बड़ा ऊबड़-खाबड़ था। कभी ढलानें आ जातीं और कभी ऊंची घाटियां। कभी मार्ग इतना तंग हो जाता कि एक समय में केवल एक घोड़ा ही चल सकता। मार्ग के दोनों ओर की घाटियों पर भीकड़ों की झाड़ियां उगी हुई थीं। निस्संदेह यह मार्ग अच्छा न था।

वंती ने कहा "मुझे प्यास लगी है।"

श्याम ने इधर-उधर देखा। घाटी और भीकड़ों की झाड़ियां उगी हुई थीं। और जहां भीकड़ों की झाड़ियां हों वहां पानी का रहना

श्याम ने अपना पूरा ध्यान चश्मे के किनारे खिले हुए नीले फूलों की ओर केन्द्रित कर दिया। इन फूलों का क्या नाम है? कितने सुन्दर फूल हैं। इतने सुन्दर मानो....नहीं नहीं, अब कोई मानो नहीं—वह कोई उपमा नहीं ढूंढेगा। ये फूल सुन्दर हैं और बस। कोई ऐसे, वैसे, जैसे नहीं। जैसे उसके मन में लाखों धड़कनें एक दम से उत्पन्न होने लगीं और वह अपने आप से कहने लगा—मुझे कुछ और सोचना है—इन फूलों का क्या नाम है? इन फूलों का क्या नाम है कमबख्त! इन फूलों का नाम वह सदैव भूल जाता था। उसने कहा "इन फूलों का क्या नाम है?"

उसे अपनी आवाज़ फिर बड़ी विचित्र लगी और उसके अचेतन मन में लाखों नीले-नीले फूल खिलने लगे....।

वंती ने उसी तरह लेटे-लेटे एक गहरे मद्धम, मधुमिश्रित स्वर में कहा "अन्जों, अन्जों के फूल हैं।"

यह अन्जों के फूल थे या लाखों सितारे थे, या लाखों पायलों के सुरीले संगीत थे या लाखों ज्वालाओं के दहकते हुए मोती?

सहसा उसने अपने आप को वंती पर झुका हुआ अनुभव किया।

"वंती" उसने धीरे से कहा।

वंती उसी तरह लेटी रही। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। हां उसके श्वास की लय तेज़ होने लगी। कपोलों पर घनी पलकों की पंक्ति कांपने लगी। ओठों की पंखड़ियों के कोनों में कम्पन उत्पन्न होने लगा और वह वंती पर और भी झुक गया और अपने ओठ उसके ओठों पर रख दिये। उसके ओठों के कांपते हुए कोनों पर, उसकी ठोडी पर, उसकी बिलौर जैसी कोमल और स्वच्छ गरदन पर जहां श्वेत चमड़ी के अन्दर एक नस फड़फड़ा रही थी—जैसे किसी देवदार की डाली के सिरे पर कोई बुलबुल पर तोल रही हो—और उसने उस रग को बार-बार चूमा, चूमता गया। हर बार उसके भीतर अग्नि का एक

। रास्ते की तरफ़ जाती हुई मिलेगी। उस पगडंडी से आप ठीक
ते पर पहुँच जायेंगे, सलाम हुजूर !"

"सलाम !"

किसान चला गया। वे दोनों घोड़ों से उतर पड़े और उनकी बागें
ों में लिये धीरे-धीरे घाटी पर चढ़ने लगे। वंती प्यास से व्याकुल
ूम होती थी।

चीड़ के वृक्ष के नीचे एक प्याले जैसी ढलवान में चश्मा बह रहा
। यहां संबलुओं की झाड़ियों पर नीलाधारी की बेलें लहरा रही थीं।
ी ठण्डी छाया थी। चश्मे के किनारे-किनारे नीले-नीले फूलों के
ारे खिले हुए थे। यहां पहुंचते ही आंखों में ठंडक पहुंचने लगी।

उन दोनों ने पानी पिया, फिर चश्मे के किनारे मखमल जैसी
न पर बैठकर सुस्ताने लगे। वंती ने पांव फैला दिये। बाहें सिर के
े रखकर घास पर लेट गई और आंखों को बन्द कर लिया।

श्याम ने कहा "इस तरह न लेटो, तुम्हारे जूड़े में सजी हुई तरनारि
फूलों की माला टूट जायेगी" वह अपनी आवाज़ सुन कर बड़ा हैरान
ा। उसे अनुभव हुआ जैसे यह आवाज़ उसकी न थी वरन् किसी
न पुरुष की थी।

वह एक दीर्घ श्वास भर कर बोली "कोई परवाह नहीं, और बन
देगी।"

झाड़ियों में छिपी हुई कोई बुलबुल चहक उठी। उस समय वह
ाह के संगीत को न सुनना चाहता था परन्तु वह संगीत मानो
र ही बार उसके अन्तस्तल में गूंजने लगा, जैसे उसके अन्तस्तल
ी की झाड़ियों में लाखों बुलबुलें एक साथ चहचहा उठी हों !

श्याम ने अपना पूरा ध्यान चश्मे के किनारे खिले हुए नीले फूलों की ओर केन्द्रित कर दिया। इन फूलों का क्या नाम है ? कितने सुन्दर फूल हैं। इतने सुन्दर मानो....नहीं नहीं, अब कोई मानो नहीं—वह कोई उपमा नहीं ढूंढेगा। ये फूल सुन्दर हैं और बस। कोई ऐसे, वैसे, जैसे नहीं। जैसे उसके मन नें लाखों धड़कनें एक दम से उत्पन्न होने लगीं और वह अपने आप से कहने लगा—मुझे कुछ और सोचना है—इन फूलों का क्या नाम है ? इन फूलों का क्या नाम है कमबख्त ! इन फूलों का नाम वह सदैव भूल जाता था। उसने कहा "इन फूलों का क्या नाम है ?"

उसे अपनी आवाज़ फिर बड़ी विचित्र लगी और उसके अचेतन मन में लाखों नीले-नीले फूल खिलने लगे....।

वंती ने उसी तरह लेटे-लेटे एक गहरे मद्धम, मधुमिश्रित स्वर में कहा "अन्जों, अन्जों के फूल हैं।"

यह अन्जों के फूल थे या लाखों सितारे थे, या लाखों पायलों के सुरीले संगीत थे या लाखों ज्वालाओं के दहकते हुए मोती ?

सहसा उसने अपने आप को वंती पर झुका हुआ अनुभव किया।

"वंती" उसने धीरे से कहा।

वंती उसी तरह लेटी रही। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। हां उसके श्वास की लय तेज़ होने लगी। कपोलों पर घनी पलकों की पंक्ति कांपने लगी। ओठों की पंखड़ियों के कोनों में कम्पन उत्पन्न होने लगा और वह वंती पर और भी झुक गया और अपने ओठ उसके ओठों पर रख दिये। उसके ओठों के कांपते हुए कोनों पर, उसकी ठोडी पर, उसकी बिलौर जैसी कोमल और स्वच्छ गरदन पर जहां श्वेत चमड़ी के अन्दर एक नस फड़फड़ा रही थी—जैसे किसी देवदार की डाली के सिरे पर कोई बुलबुल पर तोल रही हो—और उसने उस रग को बार-बार चूमा, चूमता गया। हर बार उसके भीतर अग्नि का

तूफ़ान सा उठता गया और फिर उसने उस स्थान को अपने दांतों से एक बार हल्का सा कटकटा कर छोड़ दिया।

नस उसी तरह फड़क रही थी। बुलबुल उसी तरह पर तोल रही थी परन्तु श्वेत चमड़ी के ऊपर एक गुलाबी बिन्दु सा नज़र आ रहा था....गुलाबी बिन्दु....लाल सितारे....नीले फूल....पायलों के गीत....

दूर घाटी के उस पार घाटी की हरियाली पर पगडंडी की कोमल उंगलियां नीलम के नगों की भांति चमक रही थीं और धुंध का गुबार वृक्षों की हरी चोटियों पर फैलता चला जा रहा था—किसी नवयुवती की कोमल उंगलियों के कोमल स्पर्श की तरह!

: २५ :

श्याम की माता ने अपने बेटे पर संदेह भरी-दृष्टि डालते हुए पूछा "इतनी देर तुम कहां रहे ?"

छाया बोली "और तुम तो हम से आगे निकल आये थे, अब पीछे से चले आ रहे हो ?"

श्याम ने उत्तर दिया "मौसी बात यों हुई कि हम रास्ता भूल गये और एक दूसरी पगडंडी से दूर ऊपर घाटी पर चले गये। वहां अगर हमें एक किसान न मिलता तो न जाने हम कहां पहुँच जाते—भला हो उस किसान का।"

श्याम की माता को विश्वास आ गया, बोली, "हां तभी तो मैं हैरान हो रही थी कि पीछे से क्यों चले आ रहे हैं।" फिर भय दिलाने के स्वर में बोली "इन पहाड़ी रास्तों का कोई सिर-पैर तो होता नहीं इसलिये अकेले आगे जाना अच्छा नहीं, साथ-साथ चलना चाहिये।"

श्याम ने भोलेपन से कहा "ठीक है, माता जी।"

और अब वे सब लोग इधर-उधर की बातों में मग्न हो गये। श्याम कभी-कभी नज़र चुराकर वंती की ओर देख लेता जो इस सारे वार्तालाप के दौरान में मौन हो रही थी। जब कभी वह वंती पर अपनी चंचल दृष्टि डालता वंती का मुख लाल हो उठता और वह घबरा कर अपने गले पर हाथ रख लेती जैसे वह उस गुलाबी बिंदु को छिपाना चाहती हो जो इतना छोटा था कि बिना गौर से देखे नज़र न आ सकता था। परन्तु वंती को बार-बार अनुभव होता जैसे सब की दृष्टि उसी बिंदु पर जमी हुई है। ज्योंही छाया, श्याम की माता या काफ़िले का कोई और व्यक्ति उससे कोई सी भी बात करता, या एक उचटती-

की दृष्टि उस पर डालता, त्यों ही आप उसका हाथ गरदन की ओर उठ जाता। चंती को अपनी गरदन पर का वह गुलाबी बिन्दु चिंगारी की तरह जलता हुआ अनुभव हो रहा था।

अब रास्ते में उन्हें किसानों की टोलियां मिलने लगीं। ये टोलियां प्रातः ही अपने गांव से चली थीं। उनमें प्रायः किसानों ने अपनी जूतियां बगलों में दबा रखी थीं। उनके हाथों में मज़बूत छड़ियां थीं, आंखों में काजल था और उन्होंने खद्दर के तहमद और खद्दर ही के कुरते पहिन रखे थे। सिर पर खद्दर की गोल टोपियां या पगड़ियां थीं जिनके शमले ऊपर को उठे हुए थे। उन टोलियों में स्त्रियां भी थीं जो पुरुषों के पीछे-पीछे जुदा हटकर चल रही थीं। लगभग हरेक टोली के साथ

"साहब मेरी उम्र कोई दो वीसी होगी" अर्थात् चालीस वर्ष या पांच और बीस अर्थात् पच्चीस वर्ष। सरकार को लगान देते समय भी वह इसी गिनती से काम लेते हैं। महाजनों से लेन-देन के समय भी इसी गिनती को प्रयोग में लाया जाता है और प्रायः महाजन इस गिनती से लाभ उठाते हैं।)

स्त्रियों ने सोखी के दुपट्टे ओढ़ रखे थे। नीली अथवा काली छींट के कुरते और शलवारें। या सफेद खद्दर के दुपट्टे जिन पर काली या लाल कोर लगी हुई थी और फूलदार सोखी की शलवारें और कुरते। केवल तीन रंग नज़र आते थे। नीला, काला और लाल। क्योंकि सफेद कोई रंग नहीं है। युवतियों ने अधिकतर लाल वस्त्र पहिन रखे थे और अधेड़ और बूढ़ी स्त्रियों ने नीले या काले।

स्त्रियों के हाथों में चान्दी या खोट के कड़े थे। यह खोट वहां के सुनार एक विशेष ढंग से उन स्त्रियों के आभूषणों के लिए तैयार करते थे; इसमें ताम्बा, जिस्त, पीतल, लोहा हर प्रकार की धातु होती थी और जब आभूषण तैयार हो जाते थे तो सुनार उस पर चान्दी का पतरा चढ़ा देते थे। यही आभूषण किसान-औरतें पहनती थीं—कड़े, कानों की बालियां और गले की हंसलियां—जो औरतों के गले में भी डाली जाती है और घोड़ियों और भैंसों के गले में भी। एकाएक श्याम को याद आया कि यहां के बहुत से किसान अपनी औरतों को घोड़ी कहकर भी पुकारते हैं। किसी बांकी जवान औरत को पास से गुज़रते देख कर किसानों के मुंह से निकल जाता था "वाह क्या बढ़िया घोड़ी है—कितनी बांकी चाल है इसकी। सौ-वीसी से क्या कम की होगी"। श्याम को कुछ इस बात से भी पता चला था कि भारतवर्ष में जहां अधिकतर किसान हैं स्त्रियों का समाज में क्या स्थान हैं। और इस सामाजिक स्थान की महिमा इस बात से और-और भी स्पष्ट हो जाती थी कि किसान लोग अपनी औरतों के लिये भी वैसे ही आभूषण

गुलाम हुसैन बोला "साहब, जहां पीर का मेला लगता है वहां से दो-अढ़ाई कोस परे एक और देखने-लायक जगह है। उसे "राम कुण्ड" कहते हैं। ब्राह्मण लोगों का कहना है कि जब रामचन्द्र जी अपने चौदह साल के वनवास में भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न जंगलों में घूम रहे थे तो वे यहां भी आये थे। साहब, वह जगह भी देखने योग्य है। मेरे ख्याल में ठीक यही होगा कि आप लोग पहले वहां चलें, उस के बाद वापिस आकर मेले की रौनक देखें।"

श्याम की माता बोली "हां, यह ठीक है, अभी तो लोग मेले में इकट्ठे हो रहे हैं—चलो पहले हम यही तीर्थ हो आयें।"

और श्याम सोचने लगा—क्या श्री रामचन्द्र जी पूर्वी भारत के जंगलों में भी घूमते रहे हैं? उसने तो यही सुन रखा था कि अपने वनवास के दिनों में वे विन्ध्याचल पर्वत से ऊपर कहीं न गये थे, गोदावरी नदी से नीचे के इलाकों में ही घूमते रहे थे। फिर उसने सोचा, संभव है वे वनवास से पहले यहां आये हों या वनवास के बाद। जो हो, इस बारे में अधिक सोचना व्यर्थ है। प्रत्येक जाति के देवी-देवताओं के निर्माण में अन्धविश्वास और कल्पना का भी बहुत हाथ होता है। ठोस वास्तविकता भी होती है। और उस जीवन की पेचीदा गुत्थियों को सुलझाने में कभी एक, कभी दूसरी और कभी दोनों से काम लेना पड़ता है।

परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं था कि 'रामकुण्ड' का छोटा सा तीर्थ बहुत सुन्दर था। एक छोटी सी वादी में, जो चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पर्वतों से घिरी थी—एक ऊंची चट्टान पर पत्थरों की बड़ी-बड़ी शिलाओं से बना वह प्राचीन मन्दिर खड़ा था। उसकी प्राचीनता का यह कारण ही न था कि पत्थरों का रंग नीला पड़ गया था और दीवारें यहां-वहां से भुरभुरी हो गई थी वरन् मन्दिर की बनावट में भी एक विशेष बात थी और वह बात यह थी कि मन्दिर की दीवारों में कहीं भी चूने, अथवा सुर्खी से काम न लिया गया था। पत्थर की सिलें इस

बनवाते थे जैसे अपनी घोड़ियों और भैंसों के लिये। और विवाह के समय भी इन्हें उसी प्रकार बेचते थे जिस प्रकार घोड़ियां और भैंसें बेची जाती हैं—फिर श्याम को ख्याल आया कि मध्यवर्गीय कुलों में और उससे ऊपर के वर्ग में भी तो यही सौदाबाज़ी होती थी और यद्यपि भारत की सभी श्रेणियों में स्त्री जाति अत्यन्त पद-दलित थी लेकिन किसानों और मजदूरों के वर्ग में अन्य वर्गों की अपेक्षा उनका स्थान ऊँचा था—क्योंकि ये औरतें खेतीबाड़ी के कामों में पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करती थीं—हल चलाती थीं, नलाई करती थीं, धान की खेतों में पानी देती थीं, जंगलों से लकड़ियां काट कर लाती थीं, फसल काटती थीं, रेवड़ चराती थीं और इसके अतिरिक्त घर का सारा काम-काज करती थीं और फिर सबसे बड़ी बात यह कि संतान उत्पन्न करती थीं। यदि वास्तविक रूप से देखा जावे तो शायद किसान औरतें किसान पुरुषों से कहीं अधिक काम करती थीं। उन्हें अपनी उपयुक्तता का भी ज्ञान था। कदाचित इसी कारण से श्याम ने इन औरतों में एक विशेष प्रकार की स्वाधीनता और आत्म-संयम देखा था जिसकी झलक किसी अन्य वर्ग में शायद ही मिलती थी।

इन औरतों के आभूषण बड़े बड़े और भद्दे थे और कलात्मक रुचि को प्रदर्शित नहीं करते थे। परन्तु एक आभूषण तो किसी हद तक ध्यान देने योग्य था। वह नाक की [illegible] था। यह या तो सोने का होता है या इस पर सोने का पानी चढ़ा होता है। किसान-औरतों को [illegible] [illegible]

छाया ने दियासलाई जलाई। श्याम ने जल्दी से वंती का हाथ छोड़ दिया। वह मुस्कराने लगी।

दियासलाई के प्रकाश में उन्होंने देखा कि चट्टान के अन्दर एक बहुत बड़ा कमरा है जिसके बीचोंबीच एक कुण्ड बना है—चारों ओर गहरा अन्धकार था और एक विचित्र प्रसार की उदासी सी। जहां राम और लक्ष्मण के कुण्ड थे वहां तो प्रकाश था, नीला आकाश था और थे यात्रियों और पुजारियों के कहकहे। परन्तु यहां पहुँचकर मन पर एक विचित्र प्रकार का भय छा जाता था और सब यात्री मौन हो जाते थे।

दियासलाई बुझ गई—अब फिर वही गहरा अन्धकार था। श्याम ने अपना हाथ वंती की कमर में डाल दिया।

छाया की आवाज़ उस चट्टान के अन्धकारमय वातावरण में गूँज उठी "यह सीता कुण्ड है।"

दियासलाई जलाने की आवाज़ आई और श्याम ने जल्दी से अपना हाथ खींच लिया।

वन्ती हंसने लगी।

छाया ने उसे घूर कर देखा। कहने लगी "हाय मेरी तोबा, कैसी हैं आजकल की लड़कियां। इस पवित्र स्थान पर आकर भी हंसने से नहीं टलतीं। यदि तुझे इसके सीता कुण्ड होने में कोई सन्देह है तो उस सन्देह को अपने पास रख लेकिन तुझे यहां नहीं हंसना चाहिए।"

वन्ती अपनी हंसी को रोकने लगी।

श्याम ने कहा "मौसी ! यह आजकल की लड़कियां.......भगवान इनसे बचाये। हम तो भई कान पकड़ते हैं। धर्म का तो इन्हें कुछ ख्याल ही नहीं।"

और वन्ती पुनः जोर से हंसने लगी। दियासलाई बुझ गई और कमरे में फिर अन्धेरा छा गया और कोई न देख पाया कि छाया को

छाया ने दियासलाई जलाई। श्याम ने जल्दी से वंती का हाथ छोड़ दिया। वह मुस्कराने लगी।

दियासलाई के प्रकाश में उन्होंने देखा कि चट्टान के अन्दर एक बहुत बड़ा कमरा है जिसके बीचोंबीच एक कुण्ड बना है—चारों ओर गहरा अन्धकार था और एक विचित्र प्रसार की उदासी सी। जहां राम और लक्ष्मण के कुण्ड थे वहां तो प्रकाश था, नीला आकाश था और थे यात्रियों और पुजारियों के कहकहे। परन्तु यहां पहुँचकर मन पर एक विचित्र प्रकार का भय छा जाता था और सब यात्री मौन हो जाते थे।

दियासलाई बुझ गई—अब फिर वही गहरा अन्धकार था। श्याम ने अपना हाथ वंती की कमर में डाल दिया।

छाया की आवाज़ उस चट्टान के अन्धकारमय वातावरण में गूँज उठी "यह सीता कुण्ड है।"

दियासलाई जलाने की आवाज़ आई और श्याम ने जल्दी से अपना हाथ खींच लिया।

वन्ती हंसने लगी।

छाया ने उसे घूर कर देखा। कहने लगी "हाय मेरी तोबा, कैसी हैं आजकल की लड़कियां। इस पवित्र स्थान पर आकर भी हंसने से नहीं टलतीं। यदि तुझे इसके सीता कुण्ड होने में कोई सन्देह है तो उस सन्देह को अपने पास रख लेकिन तुझे यहां नहीं हंसना चाहिए।"

वन्ती अपनी हंसी को रोकने लगी।

श्याम ने कहा "मौसी! यह आजकल की लड़कियां·······भगवान इनसे बचाये। हम तो भई कान पकड़ते हैं। धर्म का तो इन्हें कुछ ख्याल ही नहीं।"

और वन्ती पुनः जोर से हंसने लगी। दियासलाई बुझ गई और कमरे में फिर अन्धेरा छा गया और कोई न देख पाया कि छाया को

शताब्दियों से अन्धकारमय, मौन और उदासीन हैं—और श्याम को अपने अनुभव की कटुता में यह बात बिल्कुल उपयुक्त मालूम हुई कि सीता कुण्ड सबसे नीचे बनाया गया है। नीले आकाश के उज्ज्वल प्रकाश से दूर, एक चट्टान की पथरीली छाती में—पत्थरों की दीवारों के अन्तस्तल में जहां प्रकाश की सूक्ष्मतम रेखा भी नहीं पहुँच सकती—यही भारतीय नारी का उचित स्थान है, सबसे नीचे, पांव में। फिर वहीं खड़े-खड़े न जाने कल्पना लोक में उड़ते या सचमुच ही उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे वह पृथ्वी-पुत्री की आहें सुन रहा हो—उसकी मद्धम सिसकियां जो धरती की छाती चीर कर, उस पापी चट्टान की छाती चीर कर चारों ओर फैल रही हों। जैसे वह आहें भरती हुई कह रही हो—"मेरे राम, मेरे राम !"

एकाएक श्याम को अपनी मां की आवाज़ सुनाई दी। वे पूर्ववत कहे जा रही थीं "सीता देवी तू धन्य है ! सीता देवी तू धन्य है !!"

निस्सन्देह सीता देवी धन्य है ! उसके जीवन को, उसकी आत्मा को हज़ार बार, लाखों बार प्रणाम। क्योंकि सीता पृथ्वीमाता की पुत्री ही नहीं, स्वयं वसुन्धरा है। स्त्री धरती है। वह जीवन का स्रोत है, जीवन का लक्ष्य-स्थान है। उसकी कोई थाह नहीं। वह स्वयं अन्धकार में रहती है परन्तु उस अन्धकार से वह उन चमकते हुए मोतियों को जन्म देती है जिन्हें लोग राम और लक्ष्मण कहते है। वह स्वयं विरक्त है, उदासीन है, उसकी पलकों पर सदैव अश्रु कांपते रहते हैं—वह अपने उदास अश्रुओं की गहराइयों से उस दिव्य ज्योति के उबलते हुए ऐसे कुण्ड निकाल लाती है जिनका निर्मल जल नीले आकाश को भी लज्जित करता है। वह स्वयं मौन है परन्तु अपनी गहन मूकता के वक्षस्थल से उस अमर संगीत का उत्पादन करती है जिसकी हर लय में मानव-जीवन की हर धड़कन अपने समस्त कष्टों और प्रसन्नताओं सहित सुनाई देती है। इस जीवन के निर्माता को हज़ार बार, लाखों बार प्रणाम !

और फिर एकएक श्याम को अनुभव हुआ कि वह इस कल्पना के प्रवाह में बहते-बहते जीवन के कटु सत्यों और वास्तविकताओं को भूलता जा रहा है। उसने छाया से कहा—"मौसी, ज़रा दियासलाई दिखाना वापिस चलें, यहां खड़े-खड़े तो लहू भी जम जायेगा।"

: २६ :

जिस समय वे पीर के स्थान पर पहुँचे, मेला अपने पूरे जोवन पर था। यह मेला पीर और मदान के गांव की निचली घाटी पर जुटा था। यहां एक चौड़ा मैदान था जिसके एक ओर खुबानियों और हाड़ियों का एक बहुत बड़ा झुण्ड था। मैदान के पश्चिम में मान्दर की नदी बहती थी और यहां पहुँच कर उसका पाट बहुत चौड़ा हो गया था। उत्तर-पूरब में पीर का नाला था—और मेले का मैदान मानो पीर के नाले और मान्दर की नदी के संगम पर स्थित था। इस तल्ले के चारों ओर एक बहुत पुरानी भग्न दीवार थी जो कहीं से एक फुट; कहीं से दो फुट और कहीं से तीन चार फुट ऊंची थी। इस दीवार का ढांचा राम-कुण्ड के ढांचे जैसा ही था, शायद ये दोनों इमारतें जो एक दूसरे से पांच मील के फासले पर थीं, एक ही युग में, एक ही निर्माता की कला-कौशलता का परिणाम थीं। दीवारों की मिटती हुई चित्रकारी, पत्थर के चौखटे और टूटे हुए हाथियों को देखने से अनुमान होता था कि किसी समय इस स्थान पर कोई विशाल भवन खड़ा होगा। अब केवल बाहर की एक दीवार ही रह गई थी, टूटी-फूटी, कहीं से एक फुट ऊंची, कहीं से दो फुट और कहीं से बिल्कुल गायब। शायद धरती में उसकी नींव हो परन्तु कई एक स्थान पर तो केवल झाड़ियां ही नज़र आती थीं। यह दीवार एक बहुत बड़े अहाते को घेरे में लिये हुए थी जिसके अन्दर मेला जुटा हुआ था और हज़ारों आदमी एकत्रित थे। अहाते में एक विस्तृत मैदान था जिसमें कहीं-कहीं भवन के विशाल कमरों की दीवारों के चिन्ह मिलते थे।

श्याम, गुलामहुसैन तथा अन्य लोगों को साथ लेकर मैदान के उत्तर-

पूर्वी भाग की ओर चले। जहां भवन की दीवारें अब भी चार-पांच फुट ऊंची खड़ी थीं। इस स्थान पर भवन सबसे अच्छी हालत में था। यहां दीवारें चौड़ाई में अढ़ाई-तीन सौ गज़ और लम्बाई में चार-पांच सौ गज़ के लगभग थीं। और उनके कोनों में धतूरे की बड़ी-बड़ी झाड़ियां फैली हुई थीं। उस अहाते में जिसे इन दीवारों ने घेर रखा था, लम्बी-लम्बी घास उगी हुई थी। यहां एक और इमारत भी खड़ी थी जिस पर पत्थर की सीढ़ियां बनी हुई थीं। ये सीढ़ियां सत्तर अस्सी फुट ऊंची थीं। न जाने यह इमारत क्या थी ? लेकिन अब तो केवल यही पत्थर की सीढ़ियां रह गयी थीं। इन सीढ़ियों पर कोई न चढ़ता था क्योंकि ये बहुत बुरी हालत में थीं और ऐसा लगता था कि इस पर किसी मनुष्य का पांव पड़ते ही सारी की सारी इमारत धड़ाम से नीचे आ रहेगी। और यदि इन भारी-भरकम पत्थरों की लपेट में कोई आ गया तो उसकी हड्डी-पसली एक हो जायगी।

इस जगह एक ओर एक और दिलचस्प चीज़ देखने में आई। दूर से देखने पर ऐसा लगता था कि स्टीम-रोलर का एक पहिया पड़ा है और इस पहिये के एक सिरे पर पत्थर की एक मोटी सी हत्थी लगी हुई है। निकट जाने पर पता चला कि वह पत्थर का एक पुराना गुर्ज था। इतना बड़ा गुर्ज़ उसने अपने जीवन में कभी न देखा था। पांच दस आदमी मिलकर उसे मुश्किल से उठा सकते थे।

एक पंडित बोला "यह भीमसेन का गुर्ज़ है। वह इससे व्यायाम किया करता था।"

श्याम ने कहा "यह किसी मनुष्य का गुर्ज़ तो मालूम नहीं होता।"

और वास्तव में यह गुर्ज था भी बहुत भारी। मेले में जितने पहलवान आते थे वे सदैव इस गुर्ज़ को उठाने का असफल प्रयत्न किया करते थे। कभी कोई पहलवान इसे उठाकर खड़ा कर देता था और कोई इसे धकेल-भर ही सकता था। कहते हैं एक बार एक पहलवान ने इसे ज़मीन से दो इंच ऊपर उठा लिया था। लेकिन ठीक से नहीं कहा

जा सकता कि इस बात में सचाई कहां तक है।

गुलाम हुसैन बोला "यह आदमियों का गुर्ज़ नहीं है, यह देवताओं का गुर्ज़ है। जब आप यह जगह देख चुकेंगे तो मैं आपको पीर साहब की कबर पर ले चलूंगा। वह कबर इतनी लम्बी है कि आप उसे देख कर हैरान रह जायेंगे और सोचेंगे कि क्या कोई आदमी इतना लम्बा भी हो सकता है। लेकिन साहब ये देवता और औलिया लोग आम लोगों जैसे नहीं होते —ये बड़े करामाती बुज़ुर्ग थे।"

श्याम ने पंडित से पूछा "पंडित जी, यह तो बताइये कि पांडवों की राजधानी तो देहली थी, उन्हें यहां महल बनवाने की ज़रूरत क्यों पड़ी। क्या वह भी निर्वासन के दिनों में यहां आये थे?"

"नहीं साहब! पांडव यहां महाभारत के युद्ध के बाद आये थे। जब महाराज युधिष्ठिर का मन इस संसार से उकता गया और वे और उनके चारों भाई, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और उनकी माता कुन्ती कैलाश पर्वत को जा रहे थे तो इसी रास्ते से गुज़रे थे।"

और श्याम को याद आया कि इस इलाके में उसने स्थान-स्थान पर बावलियां देखी थीं बावलियां और खंडहर। उन सब बावलियों और खंडहरों को लोग पांडवों द्वारा बने हुए बताते थे। और उसने सोचा, शायद पांडव इसी रास्ते से गुज़रे हों। और फिर उसे ख्याल आया कि केवल इस इलाके ही में नहीं, बल्कि काश्मीर, कांगड़े और मंडी की रियासतों में भी जहां इस तरह की पुरानी बावलियां और खंडहर थे, लोग उन्हें झट से पांडवों द्वारा बने हुए कह देते थे। ऐसा मालूम होता था कि पांडवों ने पहाड़ों में कोई ऐसा चश्मा न छोड़ा था जहां उन्होंने बावली न बनाई हो। और शायद वे कैलाश पर्वत पर पहुंचने के लिये इतने बेक़रार न थे जितने गांव-गांव में बावलियां बनाने लिये!

और कोई उसके मन में कहने लगा—तुम अपनी धार्मिक प्रतिमाओं

का अपमान करते हो! क्रूर वास्तविकता को क्यों अपनी छाती से लगाये रखना चाहते हो? शायद यह सच है कि ये बावलियां पांडवों ने नहीं बनाई थीं बल्कि अपरिचित लोगों ने इन बावलियों को अपने पूर्वजों के स्मारक के रूप में बनाया था—उन लोगों की तरह नहीं जो किसी अनाथालय को पचास रुपये दान में देकर उसकी इमारत के किसी पत्थर पर अपना नाम खुदवा लेते हैं।

श्याम ने पंडित जी से पूछा—"पंडित जी, ये इतनी ऊंची सीढ़ियां किसलिए बनाई गईं थीं?"

"बेटा! कहते हैं कि जब पांडव हस्तिनापुर से पैदल चलते-चलते यहां पहुँचे तो उनकी माता कुन्ती के मन में अपना देश देखने की इच्छा उत्पन्न हुई और उसने उस समय तक आगे चलने से इनकार कर दिया जब तक कि उसके बेटे उसे उसका मैका न दिखा दें। पहले तो पांडवों ने अपनी माता को बहुत समझाया लेकिन जब वह किसी प्रकार न मानी तो उन्होंने इस स्थान पर यह महल बनवाया जिसके खंडहर तुम अब देख रहे हो। यह सीढ़ियां महल की सबसे ऊपर वाली मन्जिल पर जाती थीं। कहते हैं कि इस आख़िरी मन्ज़िल की छत पर से पांडवों ने अपनी माता को उसका मैका दिखाया, तब कहीं वह आगे चलने के लिये तैयार हुई थी।"

श्याम ने सोचा, हां, हम पुरुष कभी यह महसूस नहीं कर सकते कि स्त्री को अपना मैका कितना प्रिय होता है। चाहे वह बूढ़ी होकर संसार को त्याग दे फिर भी अपने मैके की याद उसके मन में सदैव बनी रहती है। शायद इसी कारण ग्राम्य-गीतों में मैके के गीत सबसे सुन्दर होते हैं। शायद मरते समय भी स्त्री के मन में अपने मैके को एक बार देखने की आकांक्षा तड़प उठती है और कुन्ती की तरह वह चाहती है कि रास्ते की वादियों, जंगलों और पहाड़ों को चीर कर उसकी दृष्टि अपने बाबल के देश तक जा पहुंचे।

श्याम अपनी काल्पनिक उड़ान पर मुस्कराने लगा और उसने

सोचा कि उसने अपने देश की देव माला को समझने और उसे नये रूप से परखने का एक नया ढंग निकाल लिया है। उन प्राचीन कथाओं में भी कथाकारों ने जीवन की मौलिक सचाइयों को सुन्दर परिधानों में उपस्थित किया था। गांव-गांव के किसानों के मस्तिष्क में ये कथायें सदैव ताज़ा रहती हैं परन्तु खेद है कि इन मूर्ख किसानों में उन्हें नये रूप से परखने वाला कोई नहीं! वे उन कथाओं की अतिशयोक्ति पर विश्वास करके भटक जाते हैं और जीवन के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ रहते हैं। और श्याम ने सोचा कि वह अपने देश की देव-माला का, जिसे उसने कूड़ा-करकट समझ कर परे फेंक दिया था फिर से अध्ययन करेगा। नये ढंग से उसमें से नई-नई बातें ढूंढेगा। आखिर किसी देश का अतीत भी तो उसका अपना ही होता है। अतीत, वर्तमान और भविष्य जीवन के एक ही क्रम की कड़ियां हैं। अतीत को ठीक रूप से जाने समझे बिना वर्तमान और भविष्य के सम्बन्ध में कोई उचित कार्य-क्रम तैयार नहीं किया जा सकता।

उजाड़ खंडहरों में थोड़ी देर घूमने के बाद वे मेले में चले गये। सुनारों की दूकानों पर स्त्रियों की बड़ी भीड़ थी जो बड़ी उत्सुकता से आभूषणों को देख-जांच रही थीं। खोट की अंगूठियां, कड़े और बालियां खूब बिक रही थीं। आभूषणों की नुमायश के साथ-साथ सुनार लोग मज़ाक भी करते जाते थे और कड़ों, अंगूठियों, बालियों आदि की प्रशंसा करते-करते अपने ग्राहकों की सुन्दरता की प्रशंसा भी कर डालते या कोई ऐसी गहरी चोट कर जाते कि स्त्रियों के जमघटों में कहकहे गूंज उठते। श्याम ने देखा कि इस अवसर पर गांव की औरतें भी जवाबी हमला करने से न चूकती थीं। कोई भी इस खुले मज़ाक को बुरे अर्थों में न लेता था।

गुलामअली ने इस मेले के लिये विशेष रूप से गिल्ट के आभूषण

मंगवाये थे जो सोने की तरह चमकते थे और जो मूल्य में भी काफ़ी सस्ते थे। उसकी दुकान पर सबसे अधिक जमघट था और अंगूठियां, नाक की कीलें और कानों के गजरे और बालियां धड़ाधड़ बिक रही थीं।

गुलामीअली चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था—"सोने का माल कौड़ियों में जाता है, सोने का माल, सोने का माल...."

और खोट बेचने वाले कह रहे थे—"चान्दी देकर चान्दी लो, कूड़ा-करकट न खरीदो, चान्दी देकर चान्दी लो, कूड़ा-करकट न खरीदो...."

हलवाइयों की दुकानों पर बड़ी रौनक थी, श्याम यह देखकर बहुत हैरान हुआ कि नौजवान किसान और लड़के जो घर में शुद्ध घी और मक्खन खाते थे यहां बड़े शौक से तेल और वनस्पति घी की मिठाई खरीद-खरीद कर खा रहे थे। शक्कर-पारे, जलेबियां, मैदे की खजूरें, पकौड़ियां, और सेवियां.......

वसंत राम की दुकान पर केवल तीन चीज़ें थीं। किशमिश, नारियल और मखाने। ये तीनों चीज़ें इधर की नौजवान लड़कियों का मन-भाता खाजा थीं। यहां बहुत से नौजवान किसान अपनी नौजवान बीवियों को यह 'खाजा' खरीद कर दे रहे थे। कभी-कभी नौजवान किसान के साथ उसकी बीवी के बजाय उसकी प्रेमिका होती थी। वसंत राम इस मामले में इतना निपुण हो चुका था कि एक ही नज़र में सब कुछ भांप लेता था। बीवियां वाले तो बहुत मोल-तोल करते थे परन्तु दूसरे जोड़ों की तो बात ही और थी। वह इन जोड़ों को बड़ी आवभगत करता। उन्हें मज़ेदार चुटकले सुनाता और दो-चार इश्कियां शेर भी; जो शायद किसी ज़माने में उर्दू के शेर होंगे लेकिन यहां तक पहुँचते-

पहुँचते वे इतने विचित्र हो गये थे कि अब उन्हें पहचाना भी न जा सकता था।

बसंत राम एक आह भरकर कहता "ऐ नौजवान, इश्क बुरी बला है। लेकिन अगर नढी (युवती) भी तुझसे मुहब्बत करे तो समझ कि तू सातवें आसमान पर जा पहुँचा है।"

और फिर एक और आह भर कर—

"मज़ा इश्क का तब है, यारो !

हो उधर भी और इधर भी आग बराबर लगी हुई

भगवान इस जोड़ी को रंग लाये—कितने सेर मखाने दूं ? किशमिश—खालिस कंधारी किशमिश है। मज़े करो, जवान ! तुझे ऐसी अकलदार नढी मिली है। इसकी आंखें कहे देती हैं कि बावफा होगी। दिन-रात तेरी खिदमत करेगी। कभी तुझ से जुदा न होगी। आह जवान, जुदाई का डंक बहुत बुरा होता है—

हडलियां बजार ने सर-साम मुझे रुला दिया
सोया हुआ सां चैन से किसने मुझे जगा दिया ..."

और श्याम सोचने लगा कि दूसरे मिसरे का अर्थ तो खैर वह समझ सकता है "सोया हुआ था चैन से किसने मुझे जगा दिया"—परन्तु पहला मिसरा "हंडलियां बजार ने सरसाम मुझे रुला दिया" उसकी समझ में न आता था। सहसा उसे ख्याल आया कि 'सरसाम' से कवि का अभिप्राय कोई मानसिक रोग नहीं था वरन् यह शब्द 'सरे-शाम' था। लेकिन बहुत सोचने और सिर पटकने पर भी वह 'हंडलियां बजार' का अर्थ समझ पाया। फिर जब वह बाजार में इधर-उधर भिन्न-भिन्न दृश्य देखता हुआ घूम रहा था तो एकाएक उसके मस्तिष्क में यह शब्द चमक उठा—"अंदलीबेज़ार" ! "हंडलिया बजार" से कवि का अभिप्राय "अंदलीबेज़ार" * था। वाह !

* बुलबुल का विलाप

वसंतराम एक नये जोड़े के सामने अपनी साहित्यिकता और कवित्व का प्रदर्शन कर रहा था। "जनाब, मिजरा गालब जैसा आसक्मजाज शायर इस देश में और कोई नहीं। वह दिल्ली में रहता है जो हिन्दोस्तान की राजधानी है। तुम कभी दिल्ली गये हो ? चच-चच ! जवान, दिल्ली देखने की चीज़ है। घंटाघर, चान्दनी चौक और मिजरा गालब। मैंने एक वार मिजरा गालब से हाथ जोड़कर कहा—हजूर पहाड़ी हूँ, इतनी दूर से दर्शन करने आया हूँ। एक शेर मिल जाये। तब मिजरा गालब ने यह शेर दिया—सुनना चाहते हो ?"

नौजवान जोड़ा मुंह खोले उसकी ओर देख रहा था। उन दोनों ने सिर हिला दिया।

वह बोला "वह शेर है—

न तड़फन की इजाजत है न फरयाद से है

दम घुटे से मर जाऊं यूं मरजी मेरे जल्लाद की है"

वसंत राम फिर मज़ा ले-लेकर इस शेर को दोहराने लगा और किसान बच्चा बोला "यह नढी भी मुझे इसी तरह तंग करे है।"

लड़की शरमाने लगी। वसंत राम खुश होकर बोला—"इसे मखाने खिलाओ मखाने ! किशमिश और नारियल ! असली वलायती नारियल मंगवाया है, माशूकों का माल है...."

यहां भीड़ बहुत थी। बहुत-से ढोलिये जमा थे। मिरासी नकलें उतार रहे थे।

"तू मेरा शागिर्द बनना चाहता है ?" अशरफ़ मिरासी बोला !

"जी बादशाह"—लड़का बोला !

"अच्छा, तो कहो—या अली"

"या अली"

"या पीर"

"या पीर"

"या अशरफ़ मिरासी"

लड़के ने अशरफ़ मिरासी की पीठ पर ज़ोर से धौल जमाई "मुझे क़ुफर सिखाते हो!"

सब हंसने लगे।

अशरफ़ मिरासी बोला "मैं सबका अफ़सर"

लड़का बोला "मैं सबका अफ़सर"

"अपने बाप का अफ़सर"

"अपने बाप का अफ़सर"

"अपनी मां का अफ़सर"

"अपनी मां का अफ़सर"

"तहसीलदार का अफ़सर"

"तहसीलदार का अफ़सर"

"थानेदार का अफ़सर"

"थानेदार का अफ़सर"

"डाक्टर का अफ़सर"

"डाक्टर का अफ़सर"

"मास्टर का अफ़सर"

"मास्टर का अफ़सर"

"चुंगी वाले का अफ़सर"

"चुंगी वाले का अफ़सर"

"पटवारी का अफ़सर"

लड़के ने फिर ज़ोर से धौल जमाई "मेरी ज़मीन ज़ब्त कराता है, हरामी!"

और सब लोग हंसी से लोट-पोट हो गये।

ढोलिये ज़ोर-ज़ोर से ढोल पीट रहे थे और दंगल हो रहा था। किसान खुशी से चिल्लाते हुए एक दूसरे पर कटाक्ष कर रहे थे और साथ-ही-साथ किशमिश, छुहारे या मखाने चबा रहे थे। शरीरों से पसीने की दुर्गन्ध उठ रही थी।

अब वे अपनी बाहें हिला-हिलाकर नाचने लगे क्योंकि बड़े पहलवान ने बाहर से आये हुए पहलवान को गिरा लिया था। जहां थोड़ी देर पूर्व दंगल हो रहा था वहां अब नाच होने लगा। बच्चे-बूढ़े सब मिलकर नाच रहे थे। नाच रहे थे, चिल्ला रहे थे और गा रहे थे और ढोलिये ज़ोर-ज़ोर से ढोल पीट रहे थे। सारी धरती थरथराती हुई-सी मालूम हो रही थी। और श्याम को कुछ ऐसा अनुभव हुआ जैसे उस की आत्मा पर से शताब्दियों की पुरानी केंचली आप ही आप उतरती जा रही हो और उसके मन में एक उत्कट इच्छा जाग उठी कि वह उस वहशी नाच में शामिल हो जाये परन्तु फिर उन लोगों की टांगों और बाहों की अजीब-अजीब हरकतों को देखकर उसके शरीर में झुरझुरी सी दौड़ गई और वह रुक गया। उसे लगा मानो वह एक ऊंची चट्टान पर बैठा नीचे समुद्र की उभरती हुई लहरों को देख रहा था और जैसे वे लहरें प्रतिक्षण उसके निकटतर होती जा रही थीं और ज्योंही वह उनमें कूदने को हुआ समुद्र की लहरें पीछे की ओर हटती चली गईं। दूर, बहुत दूर। अब वहां केवल तट की रेत चमक रही थी। निराश, निःशब्द, निश्चेष्ट......

: २७ :

मेले से लौटकर श्याम की माता ने अपने पति से परामर्श किया।

"मेरे विचार में तिलक के अवसर पर अपने कुछ सम्बन्धियों को भी बुला भेजना चाहिये। मैं अपनी बहिन और उसके लड़के को पत्र लिखे देती हूँ, आप श्याम के चचा, फूफी और फूफा को पत्र लिख दीजिये।"

"ऐसा भी क्या है" तहसीलदार साहब ने टालने की कोशिश की। वह अपने सम्बन्धियों से मिलने से बहुत घबराते थे।

"जी नहीं, हमारे घर में यह पहला शगुन है। इस अवसर पर अपनी बिरादरी का होना बहुत ज़रूरी है। यहां हमारी बिरादरी का है ही कौन ?"

पत्नी के आग्रह को आखिर उन्हें मानना पड़ा।

श्याम की माता बोलीं, "एक बात और भी है" और इतना कहकर वह चुप हो गईं।

"हूं !" तहसीलदार साहब ने अपने ओंठ सिकोड़ लिये। यह उनकी पुरानी आदत थी।

श्याम की माता हिचकिचाते हुए बोली, "मैं छाया और उसकी लड़की का यहां अधिक आना-जाना पसन्द नहीं करती।"

तहसीलदार साहब हैरान होकर बोले "क्यों, क्या बात है ?"

"कुछ नहीं...बस....मैं उनका आना-जाना पसन्द नहीं करती।"

तहसीलदार साहब ने फिर हैरानी से सिर हिलाया। इन स्त्रियों का भी क्या विचित्र स्वभाव होता है। अब तक तो दोनों सहेलियों में ऐसी गाढ़ी छनती थी और आज एक दम यह क्या से क्या हो गईं।

बोले, "भई, तुम जानो तुम्हारा काम" और इतना कहकर वे कमरे से बाहिर चले गये।

इस बात के पांच-छः दिन बाद श्याम की माता ने अपने बेटे से कहा "बेटा, तुम्हारे शगुन पर तुम्हारे फूफा, फूफी, चचा, चची, मौसी और उसका लड़का आयेंगे। हमने इन सबको पत्र लिख दिये हैं। मैंने सोचा, घर में पहला शगुन है, इस अवसर पर भी अगर अपनी बिरादरी न हो तो जी में कसक-सी रहती है।"

जी में कसक—श्याम के जी में इधर कई दिनों से एक मद्धम, मीठी चुभती-सी कसक मौजूद थी। इतने दिनों से वन्ती इनके यहां न आई थी। न वन्ती, न छाया, न जाने ऐसी क्या बात हो गई थी।

श्याम ने उदास स्वर में कहा, "मां, तुम तो हठ करती हो। मुझे यह मंगनी बिल्कुल पसन्द नहीं।"

"तुम तो पागल हो।"

"मैं पागल ही सही, लेकिन मैं यह ब्याह नहीं करूंगा"—श्याम ने ज़रा साहस से उत्तर दिया।

"क्यों, क्या छाया की लड़की से ब्याह करने का इरादा है?" माता ने कटु स्वर में कहा। और एक भेदती दृष्टि अपने पुत्र पर डाली। वह उस चुभती हुई दृष्टि को सहन न कर सका। सिर झुकाकर चुप हो गया।

माता ने उसी कटु स्वर में कहा, "मुझे क्या मालूम था कि उनका आना-जाना यह रंग लायेगा! मैं तो तुम्हें बड़ा शरीफ़ समझती थी। सोचती थी दूसरी माताओं के बेटे बुरे हों तो हों मेरे लाल में कोई ऐब नहीं।

"मां!"

"चुप रहो, मैं सब समझती हूं। तुम बिल्कुल भोले हो। उन दोनों

मां-बेटियों ने तुम पर जादू कर दिया है······ज़रा सोचो तो, न ज़ात-बिरादरी, न गोत्र-खानदान ! रुपया पैसा, इज़्ज़त कोई चीज़ भी तो नहीं। हमारा उनका निर्वाह कैसे होगा ? गांव की बिरादरी उनसे नाराज़ है। सारे ज़माने में बदनाम हैं वे।"

"मां···· !"

"अपने माता-पिता को कलंक का टीका लगवाना चाहते हो। लोग क्या कहेंगे कि तहसील का हाकिम और अपने बेटे का नाता किया तो कहां ? क्या उन्हें कोई अच्छा घर न मिलता था जो इन चिचोड़ी हुई हड्डियों पर जा गिरे।"

"मां !" श्याम ने गरज कर कहा। उसका सारा शरीर कांपने लगा।

"चिचोड़ी हुई हड्डी, कमीनी, कमज़ात, कुतिया !" माता ने चिल्लाकर कहा और फिर वह बिस्तर पर जा गिरी और दुपट्टे में मुंह छुपाकर रोने लगीं—"मेरे बेटे, मेरे लाल को छीने लिये जाती है।"

और वह उन आंसुओं, उन सिसकियों को सहन न कर सका जैसे उसका दृढ़ संकल्प उन आंसुओं की गरमी से पिघल गया हो। जैसे वह एक ऊंची, काई से ढकी हुई चट्टान पर से फिसल रहा हो और उसके हाथ-पांव कोई आश्रय न पाकर गिरते चले जा रहे हों। उसके सारे शरीर में एक झुरझुरी-सी उत्पन्न हो रही थी। एक विचित्र-सा अनुभव, मानो वह अपने वर्षों को छलांगता हुआ पीछे की ओर लौट रहा हो और अपनी जवानी तथा लड़कपन की मंज़िलों से निकलता हुआ पुनः बालक बन गया हो। जैसे वह बालक मां की छाती में दूध टटोलना चाहता हो, जैसे उसके नन्हे-नन्हे हाथ-पांव फिर अपनी मां की गोदी में मचलने के लिये बेक़रार हो उठे हों···उसका सारा शरीर एक विचित्र प्रकार के अनुभव से कांप रहा था। वह अपने आप

को रोकना चाहता था परन्तु रोक न पाया। वह अपनी माता के पास चला गया और उसके गले में बाहें डाल दीं। उसके आंसू पोंछ दिये और उसकी छाती से लगकर बोला—"मां! मुझे क्षमा कर दो, मुझे क्षमा कर दो मां···"

और उसकी आंखों में आंसू छलकने लगे।

मां उसके सिर पर हाथ फेरने लगी "मेरे लाल, मेरे लाल···"

और अब उसकी आंखों में प्रसन्नता के आंसू उमड़ आये जिन्हें उसने पोंछने की कोशिश न की। आंसू उसके शुष्क, भूरे गालों पर बहते गये। वह कहने लगी—"बेटा, कल गंगू मिशर के लड़के का ब्याह है, तुम्हें भी बुलावा आया है। आज गंगू मिशर की बीवी हमारे यहां न्योता देने आई थी। कितनी खुश थी वह। कल उसके यहां ब्याह है···ढोल बजेंगे, शहनाइयां बजेंगी···मेरा कितना जी चाहता है कि मेरे घर भी खुशी हो···तुम मेरे अपने लाल हो ना···?"

श्याम की वह अनुभूति अब कहीं गायब हो चुकी थी और उसका स्थान एक हृदय-विदारक-निराशा ने ले लिया था और वह बिस्तर पर लेटे-ले अपनी असमर्थता पर अपने आपको कोसने लगा—निरे पाजी हो तुम! गधे! कायर! तुम्हारी इस कायरता ने कई बार तुम्हारे जीवन में बाधा डाली है। इसी कारण तुम उस प्रसन्नता, उस असीमित शाश्वत, प्रसन्नता को प्राप्त करने से सदैव वंचित रहे हो जो इस कटीले मार्ग पर चलने से प्राप्त होती है। तुम सदैव हलवाई के पिल्ले की तरह अपनी अन्धी भावुकता के पीछे 'टयाओं-टयाओं' करते भागते रहोगे और तुम्हारा जीवन खारिशज़दा कुत्ते की खाल का-सा हो जायेगा। उसमें न चमक होगी न सुन्दरता वरन् उससे रक्त और पीप बहती होगी, चिचड़ियां और मक्खियां कुलबुलायेंगी और उस समय तुम पीड़ा से चिल्ला उठोगे और अपनी गन्दी खाल को सहला-सहला

कर और भी ज़ख्मी कर लोगे।

गधे, उल्लू, पाजी, कायर ! सुन रहे हो तुम ! अब भी समय है, बचा लो अपने आपको। एक बार साहस से काम लो, केवल एक बार। आखिर इससे क्या हो जायेगा, तुम्हारे माता-पिता इस दुःख से मर तो न जायेंगे। केवल एक बार, मैं कहता हूं केवल एक बार साहस से काम लो। तुम्हारा टेढ़ा-मेढ़ा, उदास जीवन संगीतमय हो उठेगा। साहस से काम लो, कायर, निकम्मे, भावुक, कल्पना-संसार में उड़ने वाले !

और वह अपने शब्दकोष में से अपने प्रति नई-नई गालियां तलाश करने लगा, परन्तु उसका दिल बैठा जा रहा था। उसे नींद न आती थी, उसकी आंखें जल रही थीं मानो आकाश पर बिखरे हुए सितारे छोटी-छोटी चिनगारियों के रूप में उसकी आंखों में खुबे जा-रहे थे और वह उस कष्टदायक जलन के अनुभव से व्याकुल होकर बिस्तर पर लोटने लगा''।

गंगू मिशर के लड़के का ब्याह था पंडित पेड़ाराम की लड़की से ! दोनों के घर पास-पास थे। दोनों कुटुम्ब मौजा धड़ा के थे। धड़ा गांव खालिस ब्राह्मणों का गांव था। मन्दिर के पश्चिम में एक ऊंची घाटी पर। दोनों गावों में कुछ ज्यादा फासला न था। दोनों गावों के खेतों की सीमायें मिलती थीं बल्कि व्यावहारिक रूप से तो दोनों गांव के निवासी अपने आपको एक ही गांव के समझते थे। अन्तर केवल इतना था कि मान्दर के गांव की आबादी मिली-जुली थी, हिन्दू, सिख, मुसलमान और अछूत सभी थे परन्तु धड़ा में केवल ब्राह्मण ही बसते थे और इसलिए मांदर के ब्राह्मणों को मौजा धड़ा के ब्राह्मणों पर उसी तरह का गर्व था जिस तरह हिन्दोस्तान के हिन्दुओं को नैपाल की रियासत पर और मुसलमानों को हैदराबाद की रियासत पर। उनका ख्याल था कि यदि किसी समय मान्दर के ब्राह्मणों पर कोई आपत्ति आई तो मौजा धड़ा उनके लिये शरण लेने का अन्तिम

स्थान सिद्ध होगा।

गंगू मिशर और पंडित पेड़ाराम के घर एक ऊंचे तल्ले पर स्थित थे। दोनों घरों के बीच अखरोट के वृक्षों की एक पंक्ति बनी हुई थी। इस पंक्ति के नीचे दोनों घरों के खेत थे जिनमें मक्की लहलहा रही थी। तल्ले के ऊपर एक सुन्दर वाटी थी और दोनों घरों से ऊपर कुछ फ़ासले के बाद चीड़ के वृक्षों का जंगल शुरू हो जाता था। दोनों घरों के इर्द-गिर्द सुन्दर बगीचे थे जिनमें फलदार वृक्ष, फूलों के पौदे और सब्जी की क्यारियां थीं। गंगू मिशर और पंडित पेड़ाराम के लड़के और लड़कियां बचपन से एक साथ खेलते आये थे इसलिए गंगू मिशर के लड़के और पेड़ाराम की लड़की के मन में एक दूसरे के प्रति कोई ऐसा सन्देह नहीं था जिस प्रकार के सन्देह इन दिनों श्याम को खाये जाते थे।

चांदनी छिटकी हुई थी। अगस्त के अन्तिम दिनों की शीतल रात में शहनाइयों की आवाज़ चारों ओर गूंज रही थी। गंगू मिशर और पंडित पेड़ाराम दोनों ने सभी सरकारी अधिकारियों को निमंत्रित किया था। वास्तव में इन्हीं सरकारी अधिकारियों ही से तो बरात की शान होती थी। और शादी से वर्षों बाद गंगू मिशर और पंडित पेड़ाराम गर्वपूर्ण स्वर में कहने के योग्य हो सकते थे—"और जब यह ब्याह हुआ था तो मांदर के सभी अफसर लोग उसमें शरीक हुए थे। यहां तक कि तहसीलदार साहब भी, जो कभी किसी शादी में शरीक न होते थे, पधारे थे। जब उन्हें न्योता देने गया तो उन्होंने कहा—'पंडित पेड़ाराम जी! आपकी लड़की मेरी लड़की है। मैं इस शादी में अवश्य शामिल हूंगा···' अब वे हाकिम कहां? वह समय ही और था। आजकल के हाकिमों में वह दया-धर्म कहां? बस प्रजा का खून चूसना जानते हैं और क्या? वह और ही जमाने के लोग थे जो अपनी प्रजा के दुख-सुख में शरीक होते थे। आजकल तो···ऊंह! बस टेढ़ा हैट जमाकर मुंह से पाइप का इंजन चलाना जानते हैं···राम राम

कैसा बुरा ज़माना आ गया है।"

बराती दोनों घरों में बधाई देने के लिये आ-जा रहे थे। इस खुशी के अवसर पर इन लोगों ने शहर से गैस के लैम्प मंगवाये थे जो दोनों घरों के खुले आंगनों में जल रहे थे। गांव के बच्चे उन लैम्पों के गिर्द जमा होकर बड़ी उत्सुकता से उनके तेज़ प्रकाश का निरीक्षण कर रहे थे। कागज़ की उस श्वेत बत्ती को ध्यान से देख रहे थे जो शीशे के अन्दर बन्द थी और जिसमें से तेज़ प्रकाश फूट रहा था लेकिन जो कागज़ होकर भी जलती न थी।

"कमाल है भई, इन अंगरेज़ों ने कमाल कर दिया है"—एक ब्राह्मण कह उठा।

"क्या कमाल है?" दूसरा ब्राह्मण बोला, जो लकड़ी की खड़ाऊं पहिने हुए था, और जिसने अपना सारा सिर मुंडवा रक्खा था और जिसके सिर के बीच में एक घनी चोटी किसी बास के तल्ले में देवदार के छतनारे की तरह उठी हुई थी—"क्या कमाल है?" उसने अत्यन्त कटु स्वर में पहले ब्राह्मण से सम्बोधित होकर कहा, "प्राचीन समय में हमारे ऋषि यह सब विद्या जानते थे। संजय महाराज ने दूरबीन और रेडियो से सारे महाभारत को देख लिया था। महाराजा रामचन्द्र जी पुष्पक नामक हवाई जहाज़ पर बैठ कर बारह घंटे में लंका से अयोध्या पहुँचे थे और जब वे अयोध्या पहुंचे थे तो सारी अयोध्या नगरी में दीपमाला की गई थी और महलों में गैस के लैम्प जलाये गये थे"— इतना कहकर पंडित जी ने एक श्लोक पढ़ा।

दो-चार और लोग आ गये और पहले ब्राह्मण को, जिसने अंगरेज़ों की प्रशंसा की थी कोसते हुए कहने लगे "अजी हमारे प्राचीन शास्त्रों में क्या कुछ नहीं है? बिजली से लेकर हवाई जहाज़ तक और रेल-गाड़ी से लेकर मशीन गन तक हरेक चीज़ की विद्या है। हमारे ऋषियों मुनियों को इन सब बातों का ज्ञान था। अब न तो उन प्राचीन शास्त्रों को पढ़ने वाला कोई रहा है, न कोई ऋषि मुनि।"

श्याम ने हज़ारों बार इन लोगों को यही बात दोहराते सुना था। यह बात सुन कर जैसे उसके तन-बदन में आग लग जाती थी। कमाल है कि बड़े-बड़े विद्वान् भी बड़े गर्व से इसी बात को दोहराते हैं—और उसे आश्चर्य होता था कि ये लोग अपनी रूढ़िवादिता पर परदा डालने के लिये किस प्रकार थोथी श्रेष्ठता के भाव का सहारा लेते हैं और तरह वास्तविकता से मुंह मोड़कर ये लोग स्वयं को धोखा देने में सफल हो जाते हैं? आज से कुछ वर्ष पूर्व यही लोग हवाई ज़हाज़ की सत्यता पर विश्वास न करते थे और कहा करते थे कि यह सब झूठ है, ढकोसला है। फिरंगियों के पास ऐसी कोई वस्तु नहीं। लेकिन जब उन्हें वायु में उड़ते देखा तो यही लोग धर्मशास्त्रों का हवाला देकर कहने लगे—"वाह! यह तो हमारी पोथियों में पहले ही से मौजूद है।" और श्याम इस बात पर बहुत हैरान था कि लोग पहले तो विज्ञान के प्रत्येक आविष्कार को झूठा समझते हैं—बिल्कुल ढकोंसला, परन्तु फिर उसी ढकोंसले को सत्य होता देखकर झट अपनी धार्मिक पोथियों में से उसका वर्णन ढूंढने निकलते हैं। यह बात केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित न थी बल्कि अन्य धर्मों के लोग भी ऐसा ही करते थे और वह हैरान था कि आविष्कार से पूर्व तो किसी की बुद्धि में यह बात न आती थी, न ही किसी को यह सूझता था कि उनकी पोथियों में ये चमत्कार पहिले से ही मौजूद हैं परन्तु यह क्या कि इधर किसी पश्चिमी वैज्ञानिक ने वर्षों के परिश्रम के बाद अपना आविष्कार संसार के सामने प्रकट किया और इधर इन लोगों ने अपनी धार्मिक पोथियों में से तुरन्त उसका वर्णन निकाल कर संसार के सामने रख दिया और कहा, "वाह! इसका वर्णन तो हमारी पोथियों में पहले ही से मौजूद है।" और श्याम हैरान था कि ऐसा ओछा व्यवहार करके उन्हें अपने कृत्य पर पश्चाताप क्यों न होता था और वे यह न समझ सकते थे कि किस प्रकार वे एक आविष्कारक के वर्षों के परिश्रम से अन्याय कर रहे थे और न वे इस बात पर अधिक

विचार कर सकते थे कि यदि उनकी धार्मिक पोथियों में सचमुच ही समस्त आविष्कारों का वर्णन था तो पश्चिमी आविष्कारकों से पूर्व ही क्यों न उन्होंने स्वयं उन्हें प्रकाशित किया। वे प्रतिदिन अपनी धार्मिक पोथियां पढ़ते थे परन्तु इस अध्ययन के बावजूद वे क्यों सदैव किसी पश्चिमी आविष्कारक के आविष्कार की प्रतीक्षा में रहते थे। वे स्वयं क्यों न उन्हें आविष्कृत करके संसार के सामने रखते थे। ताकि गर्व से कह सकें—"देखिये, ये चमत्कार हमारी पोथियों में भरे पड़े हैं।" वे तो इसके विपरीत मानसिक हीनता तथा विचारों की डकैती के दोषी थे और एक पिटी हुई जाति की तरह अपनी प्राचीन महिमा, अपनी मृत सभ्यता और अपने निर्जीव साहित्य—जिसमें जीवन की कोई हल्की-सी किरण भी बाकी न रही थी—की ओर संकेत करके कहते थे—"हमारे पास यह सब कुछ था" और इस "सब कुछ" में रेल-गाड़ी, रेडियो, मशीनगन, बिजली का प्रकाश, हवाई जहाज़, रोटरी-प्रैस आदि संसार भर के आविष्कार शामिल होते थे, जिन्हें पश्चिमी वैज्ञानिकों ने शताब्दियों के परिश्रम द्वारा आविष्कृत किया था। किसी जाति की हीन-विचारशक्ति का इससे घटिया उदाहरण और क्या हो सकता था—श्याम का खून खौलने लगा और उसका जी चाहा कि उस ब्राह्मण को जिसने लकड़ी की खड़ाऊं पहन रखी थी, जिसने उस्तरे से अपना सिर मुंडा रखा था और जो अब संस्कृत का श्लोक बघार कर गैस-लैम्प को आज से हजारों वर्ष पूर्व का आविष्कार प्रमाणित कर रहा था, गले से पकड़ कर इस जोर से उसका गला घोंटे कि उसकी आंखें उबल कर बाहर निकल आयें, उसकी झूठी ज़बान मुंह से बाहर आ जाये और उसका श्वास उखड़ने लगे और वह चिल्ला-चिल्ला कर कहे—"मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो। हम स्वीकार करते हैं कि हम झूठे हैं। शताब्दियों से झूठे, पतित और कमीने। हमारा सारा जीवन झूठा है, हमारी मृत्यु झूठी है; हम मृत हैं हमारी सभ्यता, हमारा धर्म, हमारा समाज, हमारी हरेक चीज़ झूठी है।

झूठी और तुच्छ और इतिहास द्वारा ठुकराई हुई, परन्तु भगवान् के लिये हमें छोड़ दो। हमें जीवित रहने दो। हमें झूठ और आत्म-प्रवंचना के अंधेरे पिंजरे में जीवित रहने दो; हमारे पंख काट दो, हमारे पांव में दासता की फौलादी बेड़ियां डाल दो, हमसे जीवन का प्रकाश, उसकी स्वतंत्र उड़ान, उसकी समस्त प्रसन्नता छीन लो परन्तु भगवान् के लिये हमें जीवित रहने दो, भगवान के लिये...."

और श्याम सोचने लगा कि इस जीवन और मृत्यु में क्या अन्तर है ? एकाएक उसकी नजर आंगन में से निकलती हुई वंती पर जा पड़ी और एक क्षण के लिये उसका श्वास रुक गया। वंती के जीवित और ज्वलंत सौंदर्य ने उसके अंधकारमय मस्तिष्क को प्रकाशमान कर दिया, जैसे काले बादलों से घिरे हुए आकाश में बिजली कौंदती है और धरती और आकाश, जंगल और घाटी, वादी और नदी को अपने प्रकाश से आलोकित करती चली जाती है। उसका सारा क्रोध मिट गया और वह मन्त्र-मुग्ध-सा वंती की ओर देखने लगा जो इठलाती हुई आँगन में से गुज़र रही थी। उसके दायें हाथ में एक थाल था जिसमें मिसरी, इलायची और बादाम रखे हुए थे। उसने हरे रंग का सूट पहन रखा था और रेशम का दुपट्टा जिसमें चांदी का लहरिया झिलमिला रहा था—और फिर वह नज़रों से ओझल हो गई। दरवाजे में से निकलकर रात के अंधकार में गायब हो गई।

आँगन में बहस अभी तक जारी थी और एक पंडित कह रहा था "द्रोणाचार्य ने अर्जुन और कर्ण को जो शस्त्र-विद्या दी थी उसमें कई अग्नि-शस्त्र भी थे। महाभारत में जिन अग्नि-शस्त्रों का वर्णन है उससे पता चलता है कि गुरु द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों को मशीनगन का प्रयोग भी सिखाया था और कमाल तो यह है कि द्रोणाचार्य की मशीनगन आजकल की मशीनगन से…"

लेकिन अब श्याम के लिये द्रोणाचार्य की मशीनगन में कोई

दिलचस्पी न रही थी। आंगन में खड़े-खड़े, उस बहस को सुनते हुए भी वह दूर, बहुत दूर पहुंच गया था।

गंगू मिशर के बगीचे में आड़ू का एक टेढ़ा-सा वृक्ष था जिसकी पतली-पतली डालियों में चांद ने अपना घोंसला बना लिया था। तीन-चार लड़के-लड़कियां उस वृक्ष के तने पर और दो-तीन नीचे घास पर बैठे थे। इतने में नन्ही गोरी अपनी सहेली खनीतरी को बाजू से पकड़कर वृक्ष के तने के निकट लाई। खनीतरी के कुरते के अन्दर उस ने एक लड़के की पगड़ी ठोंस रखी थी।

"डागदर साहब, डागदर साहब!" गोरी बोली।

एक लड़का जो तने पर डाक्टर बना बैठा था कहने लगा, "क्या कहती हो, गोरी?

गोरी अपनी हंसी रोककर बोली —"हजूर, इस लड़की का पेट देखिये, क्या हो गया है इसे?"

डाक्टर बोला,"वैल! इसके पेट का आप्रेशन होगा, गोरी! सब लोग आंखें बन्द करो।"

और सब बच्चे हंसी से लोट-पोट हो गये और खनीतरी रोने लगी। उसे इस मज़ाक का पता न था और चंचल गोरी उसे योंही फुसला कर उसके कुरते के अन्दर पगड़ी ठोंस लाई थी।

गोपाल रानी से प्यार करता था यानी जिस हद तक एक सात-आठ वर्ष का लड़का छः-सात वर्ष की लड़की से प्यार कर सकता है। रानी गांव की नन्ही लड़कियों में सबसे सुन्दर मानी जाती थी और उसकी एक प्यार-भरी नज़र की खातिर सब लड़के उसके अनुचित नाज़-नखरे उठाते थे। परन्तु गोपाल उन सबसे बढ़ा-चढ़ा हुआ था। इन दिनों

झूठी और तुच्छ और इतिहास द्वारा ठुकराई हुई, परन्तु भगवा
लिये हमें छोड़ दो। हमें जीवित रहने दो। हमें झूठ और आत्म-
चना के अंधेरे पिंजरे में जीवित रहने दो; हमारे पंख काट दो, हम
पांव में दासता की फौलादी बेड़ियां डाल दो, हमसे जीवन का प्रका
उसकी स्वतंत्र उड़ान, उसकी समस्त प्रसन्नता छीन लो परन्तु भगवा
के लिये हमें जीवित रहने दो, भगवान के लिये...."

और श्याम सोचने लगा कि इस जीवन और मृत्यु में क्या अन्त
है ? एकाएक उसकी नजर आंगन में से निकलती हुई वंती पर जा पड़
और एक क्षण के लिये उसका श्वास रुक गया। वंती के जीवित औ
ज्वलंत सौंदर्य ने उसके अंधकारमय मस्तिष्क को प्रकाशमान क
दिया, जैसे काले बादलों से घिरे हुए आकाश में बिजली कौंदती
और धरती और आकाश, जंगल और घाटी, वादी और नदी क
अपने प्रकाश से आलोकित करती चली जाती है। उसका सारा क्रो
मिट गया और वह मन्त्र-मुग्ध-सा वंती की ओर देखने लगा जो इठ
लाती हुई आँगन में से गुज़र रही थी। उसके दायें हाथ में एक था
था जिसमें मिसरी, इलायची और बादाम रखे हुए थे। उसने हरे रं
का सूट पहन रखा था और रेशम का दुपट्टा जिसमें चांदी का लहरिय
झिलमिला रहा था—और फिर वह नज़रों से ओझल हो गई। दर
वाजे में से निकलकर रात के अंधकार में गायब हो गई।

आँगन में बहस अभी तक जारी थी और एक पंडित कह रहा थ
"द्रोणाचार्य ने अर्जुन और कर्ण को जो शस्त्र-विद्या दी थी उस
कई अग्नि-शस्त्र भी थे। महाभारत में जिन अग्नि-शस्त्रों का वर्णन
उसमे पता चलता है कि गुरु द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों को मशीनग
का प्रयोग भी सिखाया था और कमाल तो यह है कि द्रोणाचार्य क
मशीनगन आजकल की मशीनगन से...."

लेकिन अब श्याम के लिये द्रोणाचार्य की मशीनगन में को

गोपाल ने सामने आकर कहा "रानी की सज़ा मैं भुगतने को तैयार हूं।" और यह कहकर वह उकड़ूं हो गया और अपनी हथेलियां ज़मीन पर टेक दीं।

सिपाही ने मुक्के लगाने शुरू किये—"एक, दो, तीन।"

"बस, बस" तहसीलदार साहब ने कहा—"इतनी सज़ा काफी

और सब बच्चे हंसने लगे।

खाना खाने से पहले पं० पेड़ाराम के बगीचे के एक कोने में कुछ कर्मचारी और गांव के भद्रलोग ताश खेल रहे थे और बातें कर रहे थे और शराब पी रहे थे।

वसंत कृष्ण बोला, "बाजी हमरे हाथ रहेगी।"

वामदेव बोला "हम कम्बख्त यहां किसलिये बैठे हुए हैं? अभी तो कम्बख्त चिड़िया का ग़ुलाम हमारे पास मौजूद है। जिसको शक हो वह देखले। वह कम्बख्त अच्छी तरह देख ले। चिड़िया का ग़ुलाम, हत तेरे की (श्याम को आते हुए देखकर) आओ बाबूजी, बैठो, यह यह तहसीलदार साहब के लड़के—कम्बख्त साहबज़ादे हैं।"

थानेदार यारमुहम्मद बोला, "श्याम साब, आपसे मिलकर मुझक—मुझको—मुझको बड़ी-ई-ई-ख-ख-खुशी हुई।"

यह कहकर वह श्याम से हाथ मिलाने लगा और श्याम ने देखा उसकी गरदन का घाव। और उसके मस्तिष्क में नदी के किनारे की वह बाढ़ उभर आई। बाढ़ और रेवड़ और नूरां।

गोसांई नौरंग बोला—"थानेदार साहब अब चलिये ना—पत्ता फैंकिये—अब आपकी बारी है।"

थानेदार यारमुहम्मद अब भी श्याम से हाथ मिला रहा था—

"श्याम साब, वाल्ला, बड़ी खुशी हुई मुझको। वाल्ला, मुझको (हिचकी) बेहद खुशी हुई है, श्याम साब!"

वामदेव बोला "चल, पत्ता चल! कम्बख्त तेरी खुशी की मां के दूध में पान का इक्का। पत्ता चल, पत्ता!"

थानेदार यार मुहम्मद ने ताश के पत्ते चारपाई पर फेंक दिये और दोनों हाथों से श्याम का हाथ पकड़ लिया और और भी ज़ोर से सिर हिलाते हुए बोला "श्याम साब, वाल्ला—बड़ी-इ-ई—मुझको—वाल्ला बड़ी खुशी—मुझको-मुझको, श्याम साब......"

बसंत कृष्ण ने बोतल उसके मुंह से लगा दी और उसने श्याम का हाथ छोड़ दिया। वामदेव ताश के पत्तों पर पत्ते मारते हुए शोक प्रकट करने लगा "हम कम्बख़्तों को कोई शराब नहीं देता। हम कम्पांउडर जो हुए। जो हम कभी कम्बख़्त थानेदार होते....कम्बख्त थानेदार...."

और वह चारपाई से नीचे गिर गया।

वेदी तय्यार की जा रही थी। निकट ही ढोलक बज रही थी और छत पर लड़के, नौजवान और बूढ़े लड़कियों के गीत सुन रहे थे।

लड़कियां गीत गा रही थीं। ढोलक बज रही थी और ठीकरी की टिक-टिक ताल का काम रही थी

* मज्झी मोड़ीं, मज्झी देया साइंयां
मोहने रांझे ने मुन्द्रां पाइंयां

---

* ऐ भैंसें चराने वाले, अपनी भैंसों को मोड़ो। सुंदर रांझे ने कानों में कुण्डल पहने हैं—ऐ भैंसें चराने वाले...। रांझा फ़कीर बन गया। हीर नदियों को चीरती हुई उसके साथ गई। मेरी सखी, जिन्होंने प्रेम किया था उन्होंने उसे खूब निभाया...सुन्दर रांझे ने कानों में

मज्झी मोंडीं, मज्झी देया साइयां
सोहने रांझे ने मुन्द्रां पांइयां
रांझा—रांझा ते रांझा फ़क़ीर वे
हीर लंग गयी दरयावां नूं चीर वे
जिन्हां लाईयां नी तोड़ निभाईयां
जिन्हां लाईयां नी तोड़ निभाईयां
सोहने रांझे ने मुंद्रां पाईयां

गीत गाते-गाते लड़कियां आप-ही-आप अपने विचारों की उस ़ड़ान पर हंसने लगीं और सारा वातावरण कहकहों से परिपूर्ण हो ़ठा। "जिन्हां लाइयां नी तोड़ निभाइयां" का बोल वे बार-बार दोहरा ही थीं। जैसे ऊपर छत पर बैठे हुए या आंगन में बैठे हुए या केवल ़पने मन ही में बैठे हुए किसी कल्पित प्रेमी को तसल्ली देते हुए कह ही हों, "जिन्हां लाइयां नी तोड़ निभाईयां"—घबराओ नहीं, हमारा ़म अमर है, रांझे और हीर के प्रेम की तरह। तुम मेरे रांझे हो और ़ं तुम्हारी हीर हूँ—यदि रांझे और हीर का प्रेम सच्चा था तो मेरा ़ौर तुम्हारा प्रेम कब झूठा हो सकता है!"

और वह अखरोट के वृक्षों की कतारों के नीचे से गुज़रता गया। ़ीत के बोल उसका पीछा करने लगे और अखरोटों की चोटियों पर से ़ान्द भी एक बच्चे की तरह भागता हुआ उसका पीछा करने लगा। ़काएक वह ठिठक गया और उसके सामने की ओर से आने वाला भी ़से ठिठकता देखकर ठिठक गया और वृक्षों की चोटियों पर भागता ़ुआ चान्द भी उन्हें ठिठकता देखकर ठिठक गया ...और उसने कहा "वन्ती" और फिर जैसे उसने सुना किसी ने कहा है "श्याम" और

फिर चान्द कहने लगा "वन्ती-श्याम, श्याम-वन्ती" और चान्द मुस्कराने लगा...वृक्षों की डालियों पर झींगर बोल रहे थे और श्यामल पत्तों पर चान्द की किरणें नृत्य कर रही थीं और उन वृक्षों के नीचे उस सुन्दर अंधकार और सुन्दर प्रकाश के झिलमिलाते हुए संगम में श्याम ने वन्ती को अपने हृदय से लगा लिया। वन्ती का शरीर कांप उठा, जैसे संगम की गहरी धारा में पहुँचकर नाव हिलोरें खाती है—और वह उसके ओंठों को चूमने लगा। ओंठों के उस उष्ण स्पर्श से वन्ती के केवल ओंठ ही नहीं, सारा शरीर कांपने लगा। और वह उससे चिमट गई जैसे अपनी विकल आत्मा की समस्त कपकपी उसके ऊष्ण स्पर्श में खो देना चाहती हो। और श्याम उसके शरीर और ओंठों के स्पर्श द्वारा ऐसा विलीन हुआ कि उसे यह भेद ही न रहा कि वे दो हैं अथवा एक-एक हैं अथवा दो ? जैसे उनकी आत्माओं का अणु-अणु गुनगुनाने लगा हो—यह संगम है—यह संगम है। यही वह अनन्त संगम है जहां दो विपरीत दिशाओं से आई हुई लहरें इस प्रकार एक दूसरी में समा जाती हैं कि कोई कह नहीं सकता कि वह यह है, या यह वह........

और वे देर तक एक वृक्ष के तने से लगकर बातें करते रहे, धीरे-धीरे, चुपके-चुपके स्वरों में—और बीच-बीच में चुप्पी—दीर्घ चुम्बनों की मधुमय चुप्पी—जब समय मिट जाता है, मृत्यु मिट जाती है जीवन और धरती अपने केन्द्र पर घूमते-घूमते रुक जाते हैं और सारा विश्व एक दीर्घ, अनन्त चुम्बन मालूम होता है।

श्याम ने पूछा—"तुम्हें कभी बलभद्र से प्रेम था ?"

"नहीं—यह अब मैं कह सकती हूँ, लेकिन उस समय जब अभी तुम न आये थे कोई मुझसे पूछता तो शायद मैं यही कहती कि मुझे उनसे प्रेम था—उस समय मैं प्रेम को पहचानती न थी।"

"सच ?"

"सच"

"ओ-माई डार्लिंग"

"मैं अंग्रेजी नहीं जानती, लेकिन मैं इसका कुछ-कुछ मतलब समझ लेती हूँ। मैं केवल हिन्दी, उर्दू, और गुरमुखी जानती हूँ। हां, अगर तुम मुझे अंग्रेजी सिखाओगे तो मैं जल्द ही सीख जाऊंगी।"

"अच्छा तो कहो, ओ माई डालिङ्ग।"

"ओ माई डालिङ्ग !"

"लो अब तुम चौथी भाषा भी सीख गईं।"

"हां तुम सिखाओगे तो क्यों न सीखूंगी" कुछ रुककर वह पुनः बोली "लेकिन मैंने बलभद्र से कभी इस तरह........"

"हां मैं जानता हूँ।"

"तुम कैसे जानते हो, श्याम ?"

"ओ माई डार्लिंग।"

"ओ माई डार्लिंग !" वंती ने कहा, पहले से स्पष्ट स्वर में। दोनों हंसने लगे।

दो जुगनू उनके निकट उड़ने लगे। श्याम ने झट से उन्हें अपने रूमाल की लपेट में ले लिया। रूमाल की पतली तह के अन्दर दोनों जुगनूओं की रोशनियां कांप रही थीं।

"देखो यह सुन्दर जुगनू"—वह उन्हें वंती के ओठों के निकट ले गया।

"हां यह तो जुगनू हैं—एक मैं, एक तुम !"

उसने उसके ओठ चूमते हुए कहा " फिर कहो"

वंती ने लजा कर कहा "एक मैं, एक तु........।" "तुम" अपूर्ण रहा परन्तु नहीं, उसे चुम्बन ने पूर्ण कर दिया, उसमें प्रकाश

फैला दिया, उसे जुगनू बना दिया, उसमें आत्मा जगा दी, उसे अमर कर दिया, और वह "तुम" सब कुछ बन गया । एक चुम्बन, एक आत्मा, एक जुगनू !

वंती ने एक गहरा श्वास लेते हुए कहा—"अब मैं मर जाऊं तो अच्छा है ।"

"इतनी खुशी बर्दाश्त नहीं कर सकती—डरती हो क्या ?"

"हां"

"किससे ?"

"अपने आप से, तुमसे, भाग्य से, पण्डित सरूप किशन से ।"

"पण्डित सरूप किशन से क्यों ?"

"वह अपने लड़के दुर्गादास से मेरा ब्याह करना चाहता है और...."

"और ?"

"और रोशन मामा इस बात पर राज़ी हैं क्योंकि...."

"क्योंकि ?"

"क्योंकि रोशन मामा ने पण्डित से दो हज़ार रुपये इसी वायदे पर ले रखे हैं ।"

जैसे दो हज़ार रुपये एक खनखनाहट के साथ उसके सामने बिखर गये और वह कौतूहलपूर्ण दृष्टि से उन्हें देखने लगा ।

"फिर ?" उसने पूछा और उसे ज़ोर के साथ अपनी छाती से सटा लिया ।

वह उसकी गोद में कांपी—"दुर्गादास मनुष्य नहीं है—वह पशु....न जाने वह क्या है—मुझे उससे बड़ा भय आता है । सरूप किशन हर रोज़ रोशन मामा को तंग करता है । कहता है बिरादरी के चार आदमियों को बुलाकर शादी कर दो, अधिक झंझट की ज़रूरत

नहीं। अभी तक तो रोशन मामा टाल रहा है। मैं सोचती हूँ कहीं वह...."

"और तुम! क्या तुम मान जाओगी?"

"मैं मर जाऊंगी" और एक बार फिर वह कांप उठी। फिर वह उसकी ठोढ़ी से खेलने लगी "श्याम" उसने बड़ी गम्भीरतापूर्वक कहा "वायदा करो कि मुझसे कभी जुदा न होगे।"

"जब तक ज़िन्दा हूं, तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूंगा।"

....

"श्याम, मैं अधिक पढ़ी-लिखी नहीं हूँ, लेकिन मैं अपनी जान तुम पर न्योछावर कर सकती हूं। श्याम, मैं बिल्कुल सच कहती हूँ......मेरा शरीर, तुम मेरे चाम की यदि जूती बनाकर भी पहनोगे तो मुझे कोई इनकार न होगा। लेकिन मेरे दिल को ठेस न पहुंचाना, मैं मर जाऊंगी।"

"मैं तुम से प्यार करता हूं वंती!" उसने पुनः वंती को छाती से लगाते हुए कहा "मेरी नन्ही वंती, मेरी नन्ही-नन्ही, मुन्नी-मुन्नी प्यारी-प्यारी वंती!"

वंती ने संतोष का सांस लेते हुए कहा—"ओ माई डार्लिंग!"

"ओ माई डार्लिंग!"

और फिर दोनों हंसने लगे।

वंती ने गम्भीर होते हुए कहा "कितनी अजीब बात है। आज से कुछ समय पहले मैं तुम्हें जानती तक न थी और अब...."

"और अब?" श्याम ने पूछा।

"हां, और अब" वह इतना ही कह पाई "हां, और अब!" परन्तु इन तीन शब्दों में उसने अपनी आत्मा की सारी बेचैनी सारी उष्णता उंडेल दी थी....

वह फिर बोली—श्याम, तुम्हें मालूम है बलभद्र मुझसे कितना

प्रेम करता है। अब मुझे उस पर दया आती है—हां, अगर तुम न आये होते तो....और सच तो यह है कि दुर्गादास भी मुझे बहुत प्रेम करता है—लेकिन मुझे उससे भय आता है। वह मनुष्य नहीं है—वह तो...." वह पुनः कांपने लगी।

"डरो नहीं, दुर्गादास इस समय यहां नहीं है" श्याम ने हंसते हुए कहा।

वह कुछ देखकर ठिठक गई, फिर उसके मुंह से एक हलकी-सी चीख निकली और वह उसकी छाती से चिमट गई।

दूर, अखरोट के वृक्षों की कतार से परे श्याम ने दुर्गादास को सरकते हुए देखा। उसके साथ उसका बाप पंडित सरूप किशन और वंती का मामा रोशन भी थे और वे तीनों किसी गहरी बात में तल्लीन चले जा रहे थे....

श्याम का मन किसी अज्ञात भय से कांप उठा।

एकाएक वृक्ष की डालियों में से एक बदशगन चील चीख मार कर उड़ा और अपने काले पंख फैलाये नीचे घाटी में गायब हो गया।

———

तृतीयं परिच्छेद

विष

: २८ :

दूसरे दिन श्याम को पता चला कि चन्द्रा और मोहनसिंह के मामले में डाक्टर के व्यवहार की पड़ताल के सम्बन्ध में उच्च अधिकारियों ने एक सरकारी कमीशन नियुक्त किया था जिसमें हिन्दू अधिक थे। यह कमीशन केवल नियुक्त ही नहीं हुआ था बल्कि मान्दर की वादी को भेजा भी जा चुका था। केवल भेजा ही नहीं जा चुका था बल्कि वहां पहुँच भी चुका था। कई अफसर वो डाक-बंगले में ठहरे थे और जिन अफसरों के ठहरने का प्रबन्ध डाक-बंगले में न हो सका था उनके लिये तहसीलदार साहब ने कचहरी के बाग के एक कोने में खेमे लगवा दिये थे। चारों ओर भाग-दौड़-सी मची हुई थी। तहसील के स्थानीय कर्मचारी बहुत भयभीत थे। मुसलमान डाक्टर को पदच्युत कर दिया गया था। ब्राह्मणों में एक जोश-सा पाया जाता था; वे कुछ इस तरह अकड़ कर चलते नजर आते थे मानो उन्हें अपनी विजय पर अत्यन्त हर्ष हो रहा हो।

नायब तहसीलदार ने श्याम से इस मामले पर बहस करते हुए कहा—"हुजूर, गरीबपरवर, मैंने आपसे कहा न था कि गरीब मुसलमान डाक्टर को उसके उस नेक काम की वजह से मुअत्तल कर दिया जायगा और ब्राह्मण अपनी मरजी का कमीशन बनवा लेंगे। पण्डित सरूपकिशन शहर गया था आखिर उसने कोई तो गुल खिलाना ही था। अब देखिये, इश्क करें चन्द्रा और मोहन—लड़ाई उनकी हो ब्राह्मणों के साथ और बीचमें पिस जाये एक गरीब मुसलमान डाक्टर! कहांका न्याय है यह? बेचारे डाक्टर का तो यही कसूर है कि उसने चन्द्रा को मोहनसिंह की देख-रेख की इजाज़त देकर मोहनसिंह की जान

बचा ली। और अगर वह रोगीकी देख-भाल उसके उन सम्बन्धियों पर छोड़ देता जो उसकी मौत के बाद उसकी जमीन और जायदाद के मालिक होते तो रोगी की जो गत बनती उसे हर कोई अच्छी तरह समझ सकता है। और फिर आप कहते हैं कि उस सारे फिसाद का मुख्य कारण आर्थिक है। अजी श्याम साहब, बात असल में यह है कि यह मामला बिलकुल जज़बाती है। हिन्दू बड़ा इन्साफपसन्द है, मैं इसे मानता हूं लेकिन जहां बीच में किसी मुसलमान की बात आ पड़े वहां उससे इन्साफ हो ही नहीं सकता। वहां उसका दिल बेकाबू हो जाता है। इसमें उसका कसूर नहीं, उसके दिल का कसूर है।"

अमजद हुसैन, कचहरी का बूढ़ा प्यारा, जो बड़ी दिलचस्पी से उनकी बातें सुन रहा था एकाएक कहने लगा—"हजूर, गुस्ताखी माफ आप जरा तलखी और ज्यादती से काम ले रहे हैं। यह मज़हबी और जज़बाती तरफ़दारी हिन्दुओं और मुसलमानों में एकसी है। हुजूर मैं आपको अपने लड़कपन की बात सुनाता हूँ। मेरे ताया थे शिया जज, बड़े परहेज़गार, पाँचों वक्त की नमाज़ अदा करते थे। उन्हें मुझसे खास लगाव था क्योंकि मैं इम्तहान में सबसे अच्छे नम्बरों से पास हुआ करता था। एक दिन वह मुझे अपने करीब बुला पूछने लगे।

"अमजद, अमजद इधर आ।"

"क्या बात है, ताया जी?"

"शाबाश बेटा, तू बड़ा अच्छा लड़का है, इन्शाअल्लाह तू [illegible] तहसीलदार, मुन्सिफ़, जज बनेगा।"

मैं चुप रहा।

वह मुझे गहरी [illegible] हुए बोले—"अच्छा यह बता कि अगर तू जज बन गया तो [illegible] में इन्साफ़ किया करेगा ना?"

"[illegible] करूंगा जी।"

"अगर तेरे पास एक हिन्दू कातिल आये जिसने एक मुसलमान को कत्ल कर दिया हो तो तू उसे क्या सजा देगा ?'

"फांसी !"

"और अगर एक मुसलमान कातिल जिसने एक हिन्दू को कत्ल किया हो तो फिर ?"

"फांसी" मैंने उसी तेजी से जवाब दिया।

शिशन जज एकदम चुप हो गये। फिर मेरे बाप से जो करीब ही बैठे हुए थे कहने लगे "यह तेरा बेटा बड़ा नालायक है, तू ने इसे सही तालीम नहीं दी।" फिर वह मेरा कान खैंच कर कहने लगे "कह, कह कि मैं मुसलमान से रहम का सलूक करूंगा।" मेरी आंखों से आंसू निकल आये। लेकिन जब तक उन्होंने दस बार मुझसे न कहलवा लिया मेरा कान ऐंठना बन्द न किया। लेकिन ईमान की बात यह है कि चाहे उस मैंने वक्त कह दिया था लेकिन 'मेरा दिल उस बात को न मानता था और मैं आज तक उस असूल का कायल नहीं हुआ।"

श्याम ने व्यंग्य पूर्वक कहा "इसीलिये तो हुजूर प्यादे के प्यादे रहे हैं। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि हिन्दू घरानों में भी हर रोज कुछ इसी तरह के सबक सिखाये जाते हैं "बेटा, सांप का एतबार करना, सपोलिये का एतबार करना, लेकिन मुसलमान का एतबार न करना।" यह शिक्षा है जो बचपन में हमें दी जाती है, इसीलिये हिंदू और मुसलमान लड़के जब बड़े होकर एक दूसरे से मिलते हैं तो ऊपर से तो अच्छे.खासे मित्र होते हैं लेकिन उनके दिलों में नफरत की गहरी खाई खुदी होती है जो जीवन-भर वैसी की वैसी बनी रहती है, यह मामला आर्थिक भी है और जज़्बाती भी, पहले हमारे बीच जो आर्थिक या राजनैतिक भेद-भाव हैं उनकी रोक-थाम करनी चाहिए। उसके बाद बच्चों को ठीक ढंग की शिक्षा देनी चाहिये। ये हिन्दुओं और मुससमानों के अलग-अलग स्कूल कभी इस काम को पूरा नहीं कर सकते। लेकिन मेरा ख्याल है कि इसके बाद भी नफरत

की यह गहरी खाई बहुत समय तक हमारे बीच बनी रहेगी । यह जहर जो बचपन में हमारे अन्दर भर दिया गया है— इसका असर कई वंशों तक बाकी रहेगा........।"

अजमद हुसैन ने मुस्करा कर कहा "हुजूर, आज आप बड़े नाउम्मीद नज़र आते हैं । अगर आप लोग ही हिम्मत हार बैठे तो....।

अलीजू बोला "बात असल में यह है श्याम साहब कि आप बड़ी कद्र की बात करते हैं । मैं भविष्य का ज़िक्र नहीं कर रहा मैं सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि अब हमें इस डाक्टर के मामले में क्या करना चाहिये ?"

श्याम ने कहा "साहब,मैं क्या कह सकता हूँ । हां मेरा ख्याल यह है कि यह कमीशन केवल ब्राह्मणों की तसल्ली के लिये नियुक्त किया गया है। वरना डाक्टर के खिलाफ़ जो इलज़ाम बना गया है उसमें कोई जान नहीं । मुझे पूरा विश्वास है कि डाक्टर साफ बरी हो जायगा ।"

अलीजू मुस्करा कर बोला "काश, आप उस कमीशन में होते ।"

"और फिर आपको शिकायत का एक और मौका मिलता कि इंगिथे साहब एक और हिन्दू को....।"

और श्याम की बात पूरी होने से पूर्व ही तीनों हँस पड़े ।

के पास बैठा उससे बातें करता रहा और उसे तसल्ली देता रहा। हस्पताल में वामदेव बड़ी तन्मयता से काम कर रहा था और सरकारी कमीशन को, मन्दिर के ब्राह्मणों को, राज्य को, धर्म को, ईश्वर को हर चीज़ को गालियां दे रहा था। बहुत से ब्राह्मण बीमार न होने पर भी आज हस्पताल में दवा लेने आये थे। वास्तव में वे डाक्टर को चिंतित देख कर अपने मन की संकीर्णता को और चमकाने आये थे। यह संकीर्णता इसी प्रकार की कमीनी बातों से फूलती-फलती है और यदि मनुष्य इस प्रकार की हरकतें न करे, जान-बूझकर या अनजाने ही में तो यह संकीर्णता मुर्झाई-मुर्झाई-सी रहती है और कभी-कभी मर भी जाती है''''लेकिन इसकी मृत्यु पर विश्वास कभी न करना चाहिए—जब तक कि मनुष्य स्वयं न मर जाय।

वह वार्ड में चन्द्रा और मोहनसिंह से भी मिलने गया। चन्द्रा और मोहनसिंह दोनों गुम-सुम, भयभीत-से बैठे थे। चन्द्रा का चेहरा आज असाधारण रूप से उतरा हुआ था और न ही आज उसके स्वर में वह चंचलता थी। लेकिन उसकी आंखों में अब भी एक दृढ़ सङ्कल्प चमक रहा था, जैसे वह आंखें अपनी बात पूरी कर गुज़रना जानती हों और यह न जानती हों कि निराशा किसे कहते हैं।

मोहनसिंह के घाव अब अच्छे हो चुके थे और वह चारपाई पर अपने बाजू अपने घुटनों के गिर्द लपेटे उकड़ूं बैठा था। आंखें एकटक देखती हुई खोई हुई-सी थीं; ओंठ भिंचे हुए थे। उसके चेहरे और सारे शरीर से असाधारण थकावट टपकती थी।

चन्द्रा बोली "डाक्टर ने इसे उठने-बैठने से मना किया है। वह कहता है कि घाव तो भर चुके हैं लेकिन अभी पन्द्रह-बीस दिन और चारपाई पर आराम से लेटे रहना चाहिये, कहीं हरकत से घाव फिर न खुल जायें। मैं इसे सौ बार मना करती हूं लेकिन यह फिर चारपाई पर उठ कर बैठ जाता है।"

मोहनसिंह बोला "क्या करूं, चैन नहीं पड़ता।"

किसी बात की चिंता न करो—बिलकुल चिंता न करो ।"

रोशन ने आंखें झुकाते हुए कहा "नहीं जी, आप के होते हुए मुझे किस बात की चिंता है ।"

पण्डित जी कपड़े लाने के लिये उठने लगे थे कि कुछ सोच कर फिर बैठ गये । बोले "एक बात तुम से कहूं ?"

"जी ।"

"मुझे अब भी छाया से डर लगता है ।"

रोशन बोला "इसकी आप चिन्ता न करें । इन दोनों मां-बेटियों का मैं गार्जियन हूं, जो चाहूं कर सकता हूं । और फिर आखिर तो वह मेरी बहिन है, समझा लूंगा उसे । आखिर उसे संसार की ऊंच-नीच तो समझनी ही होगी । है तो अड़ियल, इसमें क्या सन्देह है लेकिन शायद कहने से सीधी हो जाय । संभव है मेरी धमकी ही से काम बन जाय ।"

"लेकिन यदि वह फिर भी न मानी ?"

"तो उसे बहला-फुसला कर किसी काम के बहाने शहर भेज दूंगा ।"

"लेकिन वह ऐसी बच्ची तो नहीं ।"

"तो शायद सख्ती से काम लेना पड़े । दो [illegible] बाहर ठीक हो जायगी । विवाह के समय उसे एक कोठरी में बन्द कर दूंगा । और-जोर का क्या है ?"

"और शैली ?"

"शैली बच्ची है, बेचारी लड़की में इतना साहस कहां कि वह मेरे सामने मुंह भी खोल सके । वह तो मेरी परछाईं से डरती है ।" रोशन ने गर्वपूर्वक कहा ।

फिर [illegible] उसकी [illegible] और [illegible] उसके [illegible] में [illegible] थी—"लेकिन मैं [illegible] हूं पंडित जी, मैं शैली को बहुत जानता हूं, मैं उसे नारी-वेश की [illegible] समझता हूं । मेरी [illegible]

अब आप के हाथ में है, देखिये कहीं उसका मन मैला न हो।"

पण्डित जी ने उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा "कोई चिंता न करो, बेटा! मुझे भी अपनी बहू तुमसे कुछ कम प्रिय न होगी। यहां उसे हर प्रकार का सुख-प्राप्त होगा। वह इस इलाके की रानी होगी।"

और पण्डितजी के मुख पर उस समय एक ऐसी भयानक मुस्कान उत्पन्न हो आई थी जिसे यदि रोशन भी देख पाता तो भय से कांप उठता। परन्तु रोशन की आंखें जमीन पर गढ़ी थीं। कुछ क्षण बाद पण्डित जी पुनः बोले—"तो अब इस मुहूर्त्त की घोषणा कर देनी चाहिये।"

"जी हां....ए....नहीं, अभी नहीं....दो-चार दिन और ठहर जाइये।"

"बहुत अच्छा....अब तुम रुपये लेते जाओ, तुम यहां बैठो, मैं अभी आता हूं। उनके उठते ही दरवाजे के बाहिर आहट हुई और कोई घिसटते हुए कदमों से जल्दी-जल्दी भाग गया। दुर्गादास कान लगाये सारी बातें सुन रहा था।

: २९ :

दुर्गादास हुकमचन्द पंसारी के पास गया और उससे पूछने लगा "तुम्हारे पास कोई ताकत की दवा है।"

हुकमचन्द ने दुर्गादास को सिर से पांव तक देखा "पण्डित जी तुम्हें ताकत की कैसी दवा चाहिये ?"

दुर्गादास खांसने लगा। उसकी ठोड़ी पर राल बहने लगी। उस राल में उसकी कानी आंख से रिसता हुआ पानी भी शामिल हो गया, उसने अंगोछे से अपने मुंह को पोंछा, क्योंकि उसका माथा भी पसीने से तर हो गया था। कहने लगा "बस, ताकत की कोई अच्छी-सी दवा दे दो, जैसी तुम और लोगों को देते हो—वह दवा जो तुमने पंडित [illegible]राज के बेटे को दी थी, जब उसकी शादी हुई थी।"

"अच्छा अच्छा" और हुकमचन्द ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा। उसे हंसते देख कर दुर्गादास का निचला जबड़ा लटक गया और वह अपनी कानी आंख को ज़ोर-ज़ोर से झपकने लगा।

हुकमचन्द ने अपनी हंसी को दबा लिया और एक शीशी में दवा

अपनी इस कानी आंख में शीशे की नकली आंख लगवा लो, बस बिलकुल असली आंख दिखेगी।"

दुर्गादास ने पूछा "कितने रुपये में आयेगी।"

"इसका तो मुझे अन्दाज नहीं, इसके लिये तुम्हें शहर जाना होगा और वहां बड़े डाक्टर से नकली आंख लगवानी होगी।"

"अच्छा तो मैं शहर जाऊंगा।"

"हां जरूर शहर जाओ।"

"बहुत अच्छा, मैं शहर जाऊंगा" दुर्गादास ने धीरे से अपनी बात को दोहराया जैसे कोई असाधारण बात याद कर रहा हो। फिर दुकान से नीचे उतरने लगा। एकाएक रुककर वह पुनः बोला "बहुत अच्छा, तो मैं अगले महीने शहर जाऊंगा। लेकिन अगर उस वक्त तक मैं अपनी आंखों पर सब्ज़ शीशे वाली ऐनक पहन लूं तो कोई हर्ज तो नहीं ?

"बिल्कुल नहीं" हुकमचन्द ने मुस्कराते हुए कहा "बिलकुल वकील या बैरिस्टर लगोगे। दुर्गादास बैरिस्टर ! दुर्गादास बैरिस्टर !

फिर दो-चार और दुकानदार इकट्ठे हो गये और सब मिलकर उसे तंग करने लगे "दुर्गादास बैरिस्टर, दुर्गादास बैरिस्टर !"

दुर्गादास का सारा शरीर कांप रहा था। उसने जल्दी से दवा की शीशी को अपने कोट की जेब में डाला और लकड़ी के सहारे तेजी से भागने लगा। दुकानदार और जोर-जोर से शोर मचाने लगे और कुछ उसका रास्ता रोक कर खड़े हो गये।

दुर्गादास ने भरे हुए स्वर में कहा "मैं बदसूरत हूं, बहुत बदसूरत हूँ। लेकिन यह बताओ कि अगर मैं बदसूरत हूँ तो इसमें मेरा क्या दोष है ?"

कहकहे एकदम बन्द हो गये। हंसते हुए चेहरे गंभीर हो गये और उन गंभीर चेहरों पर एक अज्ञात-सा भय छा गया। जैसे दुर्गादास की बदसूरती एक प्रश्न बनकर उनके सामने खड़ी हो गई हो—उस

बदसूरती के लिये वे दुर्गादास को क्यों कसूरवार समझते थे उनमें से हर व्यक्ति दुर्गादास हो सकता था।

दुर्गादास का निचला, मोटा ओंठ और नीचे लटक गया और उसके सामने के दोनों दांत और अधिक बाहर निकल आये और उनके बीच में से उसका श्वास एक सांप की फुंकार बनकर निकला और वह उन लोगों को वहीं मौन छोड़कर चला गया।

मान्दर की नदी के किनारे बाबा अहरमन नाथ के स्थान पर जाकर दुर्गादास ने अपना माथा टेका।

बाबा अहरमन नाथ ने अपनी लाल-लाल आंखें खोलीं और बोले "बेटा, क्या चाहता है?"

"बाबा जी परशाद लाया हूँ" यह कहकर दुर्गादास ने मिसरी और पांच रुपये उनके सामने रख दिये।

"बेटा, बोल क्या चाहता है?"

"बाबा जी आपकी दया चाहता हूं, वशीकरण मंत्र मिल जाये।"

"वशीकरण मंत्र क्यों चाहता है? तू जिस पर मुग्ध है वह ब्याही हुई है?"

"नहीं महाराज, उसका ब्याह मुझसे होने वाला है और मुझे इस सारी धरती पर उससे ज्यादा कोई चीज प्यारी नहीं।"

"फिर?"

"महाराज मैं—मैं बहुत बदसूरत हूँ। मनुष्य भी मालूम नहीं होता, महाराज आपकी कृपा चाहता हूँ। ऐसी शक्ति दीजिये महाराज कि वह मेरी सूरत न देखे, मेरा दिल देखे।"

बाबाजी कुछ क्षणों के लिये चुप रहे फिर बोले "आज रात मान्दर के किनारे जो चिता जलती हुई नजर आये—या यदि तुझे कोई चिता नजर न आये तो पुराने कब्रिस्तान में चले जाना और वहां आधी रात के समय एक घंटे तक सबसे पुरानी कब्र के गिर्द चक्कर लगाना और ऊंची आवाज में इस मंत्र का जाप करना, इधर का अपना काम।"

दुर्गादास अपना कान उनके मुंह के निकट ले गया। बाबाजी ने दो-तीन बार एक मंत्र उसके कान में फूंका।

"याद हो गया तुझे?"

"जी महाराज!"

"बस अब चला जा यहां से।"

"बहुत अच्छा महाराज!"

"बस अब चला जा यहां से हरामी, लंगड़े, कुत्ते, बदजात..."

"बहुत अच्छा महाराज, अभी चला जाता हूं—प्रणाम महाराज!"

लेकिन बाबा जी ने उसके प्रणाम का उत्तर गालियों में दिया और जब तक वह आंखों से ओझल न हो गया, वह उसे गालियां देते रहे। जब वह नज़रों से ग़ायब हो गया तो उन्होंने दूसरे साधु को आवाज़ दी जो उनके निकट ही समाधि लगाये बैठा था—"अबे भोलानाथ, भोलानाथ—अबे सूअर के बच्चे!"

भोलानाथ ने धीरे से आंखें खोलीं। इधर-उधर देखा—फिर बोला "क्या आज्ञा है गुरु मेरे की?"

"यह ले पांच रुपये और सरकारी ठेके पर चला जा। एक रुपये की चरस लाइयो, दो रुपये की अफ़ीम और बाकी के दो की शराब।"

"सत्य वचन, शिव शम्भू, शिव शम्भू—लगे सूटा, गांजा चरस और भंगू।"

और यदि उस रात कोई मन्दिर के पुराने कब्रिस्तान के निकट से गुज़रता तो वह एक ऐसा दृश्य देखता जो उसके सारे शरीर में कपकपी दौड़ा देता और फिर अपने जीवन में जब कभी वह उस रात की कल्पना करता उसके शरीर के रौंगटे खड़े हो जाते।

....और वह देखता कि आधे चांद की उदास चांदनी पुराने कब्रिस्तान के वृक्षों और झाड़ियों के भयानक अंधकार को दूर करने का

निष्फल प्रयत्न कर रही है। वह झाड़ियों और वृक्षों पर कपड़े की अनगिनत धज्जियां बंधी हुई देखता, जैसे हर झाड़ी और वृक्ष की डालियों के पीछे नंगे मुरदे अपनी सफ़ेद हड्डियों की नुमायश कर रहे थे। और वह देखता कि एक टूटी-फूटी कब्र के गिर्द एक भूत चक्कर लगा रहा है। यह एक लंगड़ा भूत था, जिसका निचला जबड़ा नीचे की ओर लटका हुआ था, जिसकी एक आंख भयानक रूप से चमक रही थी और जिसके दो बड़े-बड़े दांत ओंठों से बाहर निकले हुए थे। और यह भूत लंगड़ाता तथा अपने हाथ हिलाता हुआ बार-बार एक कब्र के गिर्द नाच रहा था और कह रहा था—

झड़ बेरी, बल बेरी, मसान की ढेरी
न आगे जाये, न ऊपर आये, न पीछे जाये
ओ३म् हर गंगे, सर जंगे, काले भुजंगे
महादेव आये, महावीर गाये, काली माता खाये
ओ३म् संगनग, मात्रंग, हर गंगे, काली माता के रंगे
न आगे जाये, न ऊपर आये, न पीछे जाये
झड़ बेरी, बल बेरी, मसान की ढेरी
दुर्गादास का कार्य सिद्ध।

वह ऊंची आवाज़ में, भारी और भयानक आवाज़ में ये शब्द दोहराता हुआ कब्र के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहा था। उसकी शक्ल इतनी भयानक, उसका नृत्य इतना बीभत्स और वह गान इतना भयंकर था कि शायद कब्रिस्तान के मुर्दे भी अपनी-अपनी कब्रों में दुबक गये थे। केवल चांद हैरानी से इस दृश्य को देख रहा था।

भूत बहुत देर तक कब्र के गिर्द नाचता रहा। यहां तक कि उसके पांव से उड़ती हुई धूल ने उसके चारों ओर एक धुंद-सी फैला दी और अब वह उस धुंद के अन्दर एक बहुत बड़ा देव, एक फैलती हुई काली छाया नज़र आता था। उसके चक्कर तेज़ होते गये, मंत्र के स्वर ऊंचे होते गये और उसके मुंह से प्रसन्नता के कहकहे उड़ने लगे और फिर

: ३० :

दुर्गादास की नई रामकहानी सारे गांव में मशहूर हो गई। उसके प्रेम की चर्चा घर-घर होने लगी। दुर्गादास की कुरूपता और उसकी हास्यास्पद हरकतों ने और भी रंग चढ़ाया और लोग उसकी उस नई कोशिश को मजे ले-लेकर कहने-सुनने लगे। श्याम सुन्दरता और कुरूपता की बहस में न पड़ना चाहता था—सुन्दरता और कुरूपता में धरती और आकाश का अन्तर है परन्तु प्रेम के आधार पर इनमें मेल भी हो सकता है—हां जहां वह प्रेम ही गायब हो वहां कैसा मेल! वह जबर्दस्ती के खिलाफ था। दुर्गादास को वंती से प्रेम करने का पूर्ण अधिकार था परन्तु क्या उसे वंती से बलपूर्वक विवाह करने का भी अधिकार था—वंती जो उसे पसंद न करती थी, जो उससे घृणा करती थी। नहीं, शायद उसका विश्लेषण गलत था। यहां घृणा और पसंद का सवाल नहीं था। वंती का व्यक्तित्व भिन्न था, उसका आत्मगौरव, उसकी आत्मा दुर्गादास से इतनी भिन्न थी कि उन दोनों का मिलाप सर्वथा असंभव था।

लेकिन श्याम इस बहस में उलझना न चाहता था क्योंकि यहां उसके अपने व्यक्तित्व, अपने जीवन का प्रश्न था, वह स्वयं किस रास्ते को अपनाये? यद्यपि पण्डित सरूपकिशन और रोशन ने गांव के किसी व्यक्ति को इस बात की सूचना न दी थी परन्तु दुर्गादास की अजीब-गरीब हरकतों ने सारे गांव में यह खबर आग की तरह फैला दी थी कि वंती दुर्गादास से ब्याही जाने वाली है और यह कि अगले मास के प्रथम सप्ताह के किसी दिन का महूरत भी नियत हो चुका है। अब किसी प्रकार के संदेह की गुंजायश न थी और अब श्याम भी मजबूर

हो गया कि वह एक बार, शायद अन्तिम बार, अपने हृदय को पूरी तरह टटोल करे। एक बात तो उसके मस्तिष्क में पूरी तरह स्पष्ट थी, कि यह मामला कोई साधारण न था। उसके जीवन में प्रेम ने कभी इतना नाजुक और गंभीर रूप धारण न किया था। उसने कई युवतियों से प्रेम किया था, सफल या असफल! परन्तु तब उसका प्रेम सदैव छिछला, ऊपरी और पानी के बुलबुले की तरह टूट-फूट जाने वाला होता था। वह उस तुच्छ सी वस्तु को प्रेम का नाम देना भी पसंद न करता था और अपने मित्रों के आग्रह पर प्रेम की व्याख्या करते समय अक्सर उसका स्वर व्यंगपूर्ण हो उठता था और वह कहा करता था—सच! विश्वास कीजिये, मैंने कभी किसी से प्रेम नहीं किया। मैं प्रेम करना चाहता हूँ लेकिन न जाने मेरे भाव उस अधम, पतित तथा निचले स्तर से ऊपर नहीं उठते जिसे लोग लिंगाकर्षण या यौवन का नाम देते हैं। मैं हमेशा इस भाव की निचली तहों तक रहता हूँ और मैंने कभी अपने इस भाव के उस ऊँचे स्तर या पराकाष्ठा तक नहीं पाया जिसे आप लोग प्रेम कहते हैं। वास्तव में प्रेम को मैं एक विचित्र-सी वस्तु मानता हूँ। कोई बड़ी नरम और नाजुक और मुलायम वस्तु! जैसे अंगूर, ऊन। और कभी-कभी तो मैं बड़ी गंभीरता से सोचता हूँ कि किसी औरत से प्रेम करने की बजाय किसी खरगोश से क्यों न प्रेम करना शुरू कर दूं! आपने उसकी खाल देखी होगी कितनी नरम और नाजुक और मुलायम होती है। हाथ लगाओ तो लगता है जैसे उसकी सारी नरमी और कोमलता आत्मा में उतरती जा रही हो। और मेरे ख्याल में यही सच्चे प्रेम की विशेषता है......"

परन्तु अब उसके विचारों में व्यंग्य लेशमात्र भी न था। और अब इस विषय में उसे कोई उलझन भी न रही थी। यह प्रेम उस बुलबुले के सदृश न था जो नदी के स्तर पर एक छिछली प्रसन्नता से नाचता है; इस प्रेम में नदी की-सी गहराई थी और उस गहराई से उसे भय आता था। यहां व्यंग्य का कोई काम न था। और अब यदि वह चाहता

तो भी इस भाव को अपनी आत्मा में से न निकाल सकता था। इसकी वास्तविकता ने उसके कल्पित क्षितिज को आवरण डालकर ढक दिया था और उसे अपने जीवन के प्रत्येक क्षण, श्वास की प्रत्येक धड़कन, प्रकृति की प्रत्येक हरकत में उसी वास्तविकता का अनुभव होता। हर समय उसकी आत्मा पर एक गहरी उदासी छायी रहती, शायद इसलिये कि उसकी आत्मा अपने अहं, अपने व्यक्तित्व को खोकर किसी अन्य व्यक्ति में समा रही थी, और यह अनुभव चाहे कितना ही प्रिय क्यों न हो दुःखप्रद अवश्य होता है। इस उदासी में मधुरता भी थी और कटुता भी। लेकिन उसकी कटुता उसे उसकी मधुरता से भी अधिक मधुर मालूम होती। उस उदासी में भी एक अनोखी लज्जत थी। उस नये अनुभव ने उसके जीवन में जीवन के नये अर्थ उत्पन्न कर दिये थे, उसके मस्तिष्क पर नये क्षितिज बना दिये थे और उसकी आत्मा को एक नई सुन्दरता, एक नई चमक, एक नये माधुर्य से परिपूर्ण कर दिया था—इससे पूर्व कभी ऐसा न हुआ था।

तो फिर वह क्या करे? चुपचाप बैठा रहे और समाज के फौलादी हाथ को उस सुन्दरता, उस चमक का गला घोंटने दे? चुपचाप बैठा रहे और कुरूपता की आंधी आंख को अपने नये जीवन के उज्ज्वल चित्र को घोर अन्धकार की लपेट में ले जाता देखे? चुपचाप बैठा रहे और प्राचीन परम्परा और विडम्बना के लंगड़े भूत को अपनी खुशियों और आकांक्षाओं की कब्र पर नाचता देखे........

हां वह ऐसा कर सकता था। उसके माता-पिता उसके प्रणय के विरुद्ध थे। उसकी समाज और चंपी की समाज इस सम्बन्ध के विरुद्ध थीं। चंपी का विवाह किसी अन्य जगह हो रहा था। स्वयं उसकी सगाई कहीं और हो रही थी। दोनों की दुनियां अलग-अलग थीं। बीच में जात-पांत, ऊंच-नीच की दीवारें खड़ी थीं। और वह अकेला भला क्या कर सकता था? क्यों न वह स्वयं को जीवन के अन्धेरे कुएं में धकेल दे—आखिर वह कर भी क्या सकता है—वह नौजवान है,

कब्र पर नाचता है स्वयं तुम्हारे भीतर छिपा हुआ है........

और श्याम की नस-नस में यह लावा लहरें लेने लगा और उसने निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ हो जाये वह वंती और दुर्गादास का विवाह कभी न होने देगा। अपनी आत्मा की सम्पूर्ण शक्ति से उस होने वाली दुर्घटना का सामना करेगा।

: ३१ :

श्याम ने सैयदां द्वारा छाया को कहलवा भेजा कि वह उससे मिलना चाहता है। छाया अब उनके यहां बहुत कम आती थी और वंती का आना-जाना तो बिल्कुल ही बन्द हो चुका था। यों भी जब से वंती के बारे में गांव में चर्चा होने लगी थी, रोशन उसे घर से बहुत कम निकलने देता था। मां-बेटी पर उसने कड़ी पाबन्दियां लगा दी थीं। लेकिन छाया घायल शेरनी की तरह क्रोध से उन्मत्त बैठी थी। हर रोज़ घर में झगड़ा होता था। वंती ने कई दिनों से कुछ न खाया था और हर समय रोती रहती थी—छाया ने यह सब बातें श्याम को बताईं।

"लेकिन अब तुम क्या करोगी, मौसी?"

"मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता, बेटा! अब तो मैंने यह सोचा है कि अगर वह मेरी इच्छा के विरुद्ध विवाह करेंगे तो मैं भरी सभा में खड़ी हो जाऊंगी और धर्म के नाम पर......"

"मौसी, तुम धर्म की दुहाई देती रहोगी और पण्डित लल्प-किशन उसी धर्म की आड़ लेकर तुम्हारी लड़की का विवाह कर देगा।"

"नहीं, नहीं, मैं ऐसा न करने दूंगी। मैं चिल्लाऊंगी, भरी सभा में अपनी नंगी छाती पीटूंगी—क्या बिरादरी इतनी निर्लज्ज है कि......?"

श्याम ने शिथिलता से सिर हिलाया "इससे कुछ न होगा मौसी! मेरी मानो, तुम वंती को लेकर शहर चली जाओ या किसी ऐसी जगह जहां तुम्हारे परिचित या सम्बन्धी तुम्हें शरण दे सकें जब यह मुहूर्त टल जायगा फिर वापस आ जाना।"

"हाय भगवान ! मैं उस ज़ालिम भाई से क्या कहूं ? न जाने, उसका लहू क्यों सफेद हो गया है। बेटी पर तो ऐसी कड़ी नज़र रखता है कि मैं तुमसे क्या कहूँ ? जी चाहता है कि उसका मुंह नोच लूं। वह तो मुझे भी घर से नहीं निकलने देता लेकिन मुझ पर उसका इतना वश नहीं चलता। अब करूं तो क्या करूँ ? तुम नहीं जानते बेटा, जब से मैंने सुना है कि उसने पंडित सरूपकिशन से रुपया लिया है मेरे तन-बदन में आग-सी लगी हुई है। आठों पहर मैं इस आग में जलती रहती हूं। परमेश्वर करे मेरा भाई मर जाये ! उसकी अर्थी मेरे सामने निकले......."

"गालियां देने से कुछ न होगा मौसी, कोई उपाय सोचना चाहिये।"

"तुम समझते हो कि छाया चुप बैठी रहती है। हर रोज़ झगड़ा होता है। एक दिन तो उसने मुझे इतना पीटा, इतना पीटा (आंसू पोंछ कर)—मेरी पीठ पर अभी तक उसके घूंसों के निशान हैं। उसने सिर्फ मुझे ही पीटा होता तो मुझे इतना दुःख न होता, उसने मेरी मासूम कंवारी लड़की पर भी हाथ उठाया। क्या दुनिया में ऐसे ज़ालिम भी होते हैं जो मासूम बच्चियों पर हाथ उठाते हैं। हाय उसका वह हाथ जल जाय जिससे उसने मेरी बच्ची के तमाचे लगाये। कोढ़ हो जाय उस पापी को......"

श्याम किंचित अवकाश के बाद बोला "मौसी तुम जानती हो...." वह रुक गया।

छाया के उदास मुख पर मुस्कराहट आ गई "मुझे कुछ संदेह-सा था लेकिन अब मैं सब जानती हूं।"

श्याम ने कहा 'यह मेरे अपने जीवन की मांग है कि...."

छाया ने बात काटते हुए कहा "लेकिन तुम्हारे पिताजी, तुम्हारी माताजी...."

"यह सब कुछ सच हो सकता है लेकिन सबसे ज़रूरी बात यह

श्याम ने निश्चयपूर्ण स्वर में कहा "वह कुछ नहीं कर सकेगा, तुम किसी अर्ज़ीनवीस से इस मतलब की एक दरख्वास्त लिखा लो। इसे इञ्जकशन कहते हैं।"

"इञ्जकशन ?"

"नहीं इञ्जक्शन, बस—अर्जीनवीस तुम्हें सब कुछ बता देगा। और भी ठीक हो यदि तुम इस आशय की दरख्वास्त दो कि रोशन को गार्डियनशिप के काम से बरतरफ कर दिया जाये। न रहे बांस, न बजे बांसुरी।"

छाया के मुख पर प्रसन्नता की लाली दौड़ गई। कहने लगी "बस यह सबसे अच्छा उपाय है। मैं कल ही दरख्वास्त दिये देती हूँ....लेकिन..." छाया का मुख पुनः चिंतित हो उठा। "लेकिन यह दरख्वास्त तहसीलदार साहब की कचहरी में देनी पड़ेगी।"

श्याम ने कहा "तुम चिंता न करो। तुम केवल अर्जी दे दो, बाकी सब काम मैं संभाल लूंगा। मैं स्वयं पिताजी से बात करूंगा। मुझे पूरा विश्वास है कि वह मेरी बात नहीं टालेंगे।"

छाया दोनों हाथ बांधकर बोली "बेटा, तुमने मेरे मुर्दा तन में फिर से जान डाल दी है। जुग-जुग जियो बेटा, मुझ दुखिया का आशीर्वाद है।"

श्याम बोला "तुमसे अधिक मुझे इस बात की चिंता है।"

जब छाया चली गई तो सैयदां ने जो अब तक चुपचाप कुंज में घास साफ करती रही थी, श्याम की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते हुए, कहा "मामला बड़ा टेढ़ा है, साहब।"

श्याम ने कोई उत्तर न दिया। वह जला-भुना बैठा था। जिंदगी से बेज़ार!

सैयदां ने मुस्करा कर कहा "मेरा कुर्ता बिल्कुल फट गया है और पास में एक पैसा भी नहीं। मुझे एक कुर्ता तो सिलवा दीजिए।"

श्याम ने जेब से दो रुपये और कुछ आने निकाले और उसकी हथेली पर रख दिये।

सैयदां ने उसे झुककर सलाम किया और मुस्कराती हुई चली गई।

कुंज से निकल कर वह खेतों की बाड़ पर हो ली और अपने घर की ओर जाने लगी। फिर ठिठक गई। फिर कुछ कदम आगे बढ़ी। फिर कुछ सोच कर रुकी। धीरे-धीरे कुछ कदम चल कर वह फिर रुकी और वापस अपने घर को होली। लेकिन फिर अभी थोड़ी दूर ही गई थी कि फिर रुकी और मुड़ आई और धीरे-धीरे चलते हुए तहसीलदार साहब के बंगले में घुस गयी।

श्याम की माता मोढ़े पर बैठी सब्जी कुतर रही थी। सैयदां को देख कर सब्जी एक ओर रख दी और बोली "आओ सैयदां, बेटी।"

सैयदां उनके निकट फर्श पर बैठ गई। उसका चहरा पीला पड़ा हुआ था और आंखों में बेचैनी थी। फिर उसने अपनी आंखें झुका लीं और मद्धम स्वर में कहने लगी "मां जी, आप को एक बात बताऊं, अगर आप किसीसे इसका जिक्र न करें तो...."

: ३२ :

दूसरे दिन प्रातःकाल ही गुलामहुसेन ने आकर सूचना दी कि कल रात मोहन ने वसंतकिशन को कत्ल कर दिया है।

श्याम एकदम हक्का-बक्का रह गया। उसकी माता जो बरामदे में खड़ी थी, मोंढ़े पर बैठ गईं। उनके चहरे का रंग उड़ गया और वह बड़बड़ाने लगीं "राम, राम, राम,....घोर कलयुग है।"

"लेकिन यह हुआ कैसे ?" श्याम ने पूछा।

"यह तो मैं नहीं जानता, रात तीसरे पहर यह खून हुआ, सारे गांव में कुहराम मचा हुआ है। वसंतकिशन की लाश को हस्पताल में ले गये हैं। वहां बड़ी भीड़ लग रही है। सुना है कि आज सरकारी कमीशन अपना काम शुरू करने वाला था। बहुत से हाकिम लोग और सरकारी कमीशन के ओहदेदार भी वहां पहुंचे हैं।"

"राम, राम, राम....क्या ज़माना आया है ? ब्राह्मण का खून और राजपूत करे। कहां तो राजपूत ब्राह्मणों की रक्षा करते थे और कहां अब यह ज़माना कि अब वही उनकी हत्या करने लगे हैं। ब्रह्म-हत्या.... राम, राम ! मुझ से तो खड़ा नहीं हुआ जाता मेरे तो पांव तले से ज़मीन निकली जा रही है।" और श्याम की माता की आंखों में आंसू उमड़ आये।

कुछ देर बाद वह फिर बोलीं "वह राजपूत नहीं राक्षस है। मोहनसिंह तो अब नीच हो गया है। उसने उस नीच जाति की औरत से जो ब्याह जोड़ा था उससे उसके कुल परिवार की [illegible] हो था। सो देख लो...."

श्याम की माता ने उसके पिता को यह बात जाकर सुनाई। वह अपने कमरे में सो रहे थे। उन्होंने उठकर जल्दी-जल्दी कपड़े बदले और हस्पताल को चले गये।

श्याम ने कहा "मां, मैं भी ज़रा हस्पताल तक जाता हूँ।"

"न, बेटा" उसकी माता ने तुरंत कहा "मुझे तो डर लगता है। मेरा सारा शरीर अभी तक कांप रहा है।"

श्याम ने कहा "कोई चिंता की बात नहीं, मां।"

गुलाम हुसेन बोला "मोहनसिंह भी हस्पताल ही में है। उसकी पीठ के एक-दो घाव फिर खुल गये हैं और उनमें से बहुत सा खून बहा है। अब उसे हथकड़ियां और बेड़ियां पहना कर चारपाई पर डाल रखा है और पुलिस की एक पूरी गार्द का पहरा है।"

"हाय मर जाय वह, जिसने ब्राह्मण की हत्या की है।"

हस्पताल में बड़ी भीड़ थी। बरामदे में, बगीचे में, वार्डों के चारों ओर और लकड़ी के जंगले पर लोग खड़े तमाशा देख रहे थे। तरह-तरह की कानाफूसियां हो रही थीं। एक जमघटे में एक सांवला-सा नौजवान जिसके दायें गाल पर एक बड़ा-सा मस्सा उभरा हुआ था ज़ोर ज़ोर से बाहें हिला-हिलाकर बातें कर रहा था—

"तो मैंने झट उसकी बाहों को अपनी बाहों की लपेट में ले लिया। उसने मुझ पर छुरी से वार करने की कोशिश भी की लेकिन उसकी बाहें मेरे काबू में थीं। मैंने उसकी टांग में टांग अड़ा कर जो अड्डी-खोड़ा दिया तो वह धम्म से ज़मीन पर आ गिरा।"

"मोहनसिंह की बात करते हो?" श्याम ने पूछा "लेकिन यह माजरा क्या है?"

उस सांवले नौजवान ने उसे सलाम किया और कहने लगा "बात यह हुई जनाब कि रात तीसरे पहर मैंने अपने पड़ोसी के घर में शोर सुना। हमारा घर पण्डित बसंतकिशन और पण्डित सरूपकिशन के घरों के बिल्कुल करीब है।"

"अच्छा !" श्याम ने कहा।

एक आदमी बोल उठा "यह लाला कोड़ूमल के लड़के हैं ना, जगजीत।"

"जी हां, जी हां !" श्याम ने सिर हिलाया।

जगजीत बोला—"जो तीसरे पहर के करीब हमने अपने पड़ोसी के घर में बहुत शोर सुना। बच्चों और औरतों के रोने की आवाज़ें और चीखें, तुलसीदास भी चीख रहा था। और पण्डित सरूपकिशन गांव वालों और अपने साथियों को जो नीचे बाड़ियों में सोये पड़े थे आवाज़ें दे रहे थे। एक हंगामा मचा हुआ था। कान पड़ी आवाज़ सुनाई न देती थी।

"मैं उसी वक्त उठ कर भागा, बस यही कुर्ता और लंगोट पहने हुए था। जल्दी में जूती भी न पहनी और ना ही लाठी, कुल्हाड़ी या कोई और चीज़ साथ ली। वहां पहुंचा तो मालूम हुआ कि अभी-अभी सोहनसिंह ने छुरे से पण्डित बसंतकिशन का ख़ून कर दिया है और उसके बाद वह दीवार फलांग कर पण्डित सरूपकिशन के मकान में दाखिल हुआ है। इतने में पण्डित बसंतकिशन की औरत और बच्चे चीखने-चिल्लाने लगे। सब लोग जाग उठे। पण्डित सरूप-किशन और उनके लड़के ने जो ऊपर सोये हुए थे गांव वालों को आवाज़ें देनी शुरू कीं और उनकी औरत, मेरा मतलब है पण्डित सरूप किशन की घरवाली जो पिछले कमरे में सोई हुई थी चीख़ें मारने लगीं और मालियों और पुलिस वालों को आवाज़ें देने लगीं। सोहनसिंह [illegible] में [illegible] लिये कुछ देर वहां [illegible] रहा फिर आंगन में निकल कर [illegible] को [illegible] पर [illegible] लगा। यह सब कुछ [illegible] जल्दी, इतने थोड़े वक्त में हुआ कि जब मैं वहां पहुंचा तो वह [illegible] कि [illegible] सिर पर [illegible] हुआ [illegible] था। [illegible] उसको पकड़ लिया। [illegible] था। [illegible] पास से गुज़रा

है और पुलिस चौकी से होता हुआ हस्पताल को जाता है। अब उसने अपने क़दम तेज़ कर दिये। मैंने भागकर उसे जा लिया। उसने मुड़ कर मुझ पर छुरे से वार करने की कोशिश की लेकिन मैंने झट से उसकी बाहों को अपनी बाहों में ले लिया। उसने कहा "मुझे छोड़ दो" मैंने कहा "ख़ून करके अब कहाँ भागते हो?" उसने कहा "मुझे छोड़ दो, मैंने ख़ून नहीं किया। मैंने इन्साफ़ किया है" मैंने कहा "यह अदालत बतायेगी।" उसने मुझ पर छुरे से वार करने की कोशिश की लेकिन उसकी बाहें मेरे क़ाबू में थीं और मैंने उसकी टांग में टांग अड़ा कर उसे जो एक पटखनी......"

पण्डित पेड़ाराम बोले "तो क्या आपकी सहायता को कोई न आया। जब पण्डित सरूप किशन जी ने अपने मालियों को आवाज़ें दीं, जो वहीं उनके घर के नीचे, उनकी वाडी में सोये हुए थे तो क्या वे भी न उठे?"

"अजी कहाँ?" जगजीत ने बाज़ू घुमा कर कहा "वे सब तो हाबी हैं। वे तो चाहते हैं कि ज़िमींदार मर जाये। उसका सारा घर सत्यानाश हो जावे, उनकी बला से! और फिर उस वक्त उन्हें ऐसी क्या पड़ी थी जो उठकर मोहनसिंह जैसे ख़तरनाक क़ातिल के पीछे भागते।"

एक हाली उस जमघटे में खड़ा था, बोला "नहीं भाई, यह बात न थी। हम उस वक्त वाडी के अन्दर गहरी नींद में थे। उसी वाडी में ढोर-डंगर, उसी में हम। एक ही दरवाज़ा है वह भी बन्द था। कोई खिड़की भी न थी कि आवाज़ आ जाती। हम बड़े मज़े से सोते रहे। दिन भर कुदाल और हल चलाते-चलाते आदमी थक जाता है। हम दुकान पर बैठने वाले तो हैं नहीं जो....हमें तो उस वक्त पता चला जब पण्डित जी ने ख़ुद आकर हमें जगाया। यह बात नहीं जगजीत भाई, हम तो अपने मालिक के नमक-हलाल हैं। लेकिन हमारी आंख ही नहीं खुली।"

गङ्गाजा जी बोले "हां, हम तुम लोगों की नमक-हलाली खूब जानते हैं।"

हाली ने जब देखा कि लोग उसके खिलाफ़ हुए जा रहे हैं तो भंजीमल सुनार से कहने लगा "लाला जी, आप ही इन्साफ़ कीजिये अगर आदमी कोठी में सोया हुआ हो और कोठी भी ऐसी जिसमें सिर्फ़ छत से हवा निकलती हो तो क्या अन्दर सोया हुआ आदमी बाहर के लोगों की आवाज़ सुन सकता है ?"

"रहने दो, अपनी सफ़ाई—"

एक चौकीदार ने तीखे स्वर में कहा "हमें सब बातें अच्छी तरह मालूम हैं।" फिर वह जमघटे के लोगों से संबोधित होकर बोला "अजी क्या पता, ये सब हाली अन्दर ही अन्दर मोहनसिंह से मिले हुए हों।"

लोग हामी भरने लगे।

एक बोला "इन हालियों को भी पुलिस के हवाले करना चाहिए।"

दूसरा बोला "पुलिस खुद ही इनसे सच कहलवा लेगी।"

हाली बोला "दुहाई है, सरकार की दुहाई है। गांव वालो तुम कैसी बातें कर रहे हो ?"

तीसरा बोला—"अभी पुलिस तुम्हें सब कुछ बता देगी। जब थानेदार सार मुहम्मद ने आंखें लाल कीं और सरकारी डंडा तुम्हें दिखाया तो तुम्हारा झूठ सच आप ही खुल जायगा।"

हाली घबराने लगा।

भंजीमल कहने लगा—"हां, तो मैं कह रहा था कि मैंने उसकी टांग में टांग अड़ाकर उसे जो अड़ंगी-तोड़ा दिया तो वह धम से नीचे आ गिरा। वह पेट के बल गिरा था, उसी तरह पड़ा रहा। पहले तो मैं [illegible] था [illegible] और [illegible] पाकर भाग जाना चाहता है। मैं उसके सिर पर खड़ा रहा कि जब उठे तो एक और जड़ दूं। लेकिन [illegible] उठा। तब मैंने सिर के बालों से पकड़कर उसका चेहरा

अपनी तरफ किया। यकीन मानिये मोहनसिंह का चेहरा लाश की तरह सफ़ेद था और उसकी आंखें बन्द थीं। और फिर मैंने देखा कि उसकी कमर और पीठ लहू से तर थी। तब मैं चिल्लाने लगा और मैंने पुलिस वालों, चौकीदारों, पण्डित सरूपकिशन और सारे गांव वालों को आवाज़ें दीं। फिर बहुत से लोग दौड़े-दौड़े आये। असल में मोहनसिंह बेहोश होगया था। लोग उसे थाने में ले गये और वहां से अब उसे हस्पताल में लाये हैं। और मैंने तो यह......"

एक आदमी जो अभी-अभी जमघटे में दाखिल हुआ था बोला "मोहनसिंह की बात करते हो, क्या उसे फिर हस्पताल में लाये हैं।"

"जी हां" जगजीत ने बताया।

"लेकिन यह—यह क़त्ल हुआ कैसे?"

"बात यह हुई" जगजीत कहने लगा "रात कोई तीसरे पहर मेरी आंख खुल गई और मैंने अपने पड़ोसी के घर से शोर उठता सुना। हमारा घर पण्डित बसंतकिशन और पण्डित सरूपकिशन के घर के पास है ना.......?"

श्याम टहलता-टहलता दूसरे जमघटे में जा मिला। यहां एक आदमी कह रहा था "मैं ईमान की बात करता हूँ। मैंने सुना है कि बसंतकिशन ने एक बार चन्द्रा को घाटी पर छेड़ा था और उसका सतीत्त्व भंग करने की कोशिश की थी।"

"यह झूठ है" एक ब्राह्मण ने कहा।

दूसरा बोला "हो सकता है भई, हो सकता है भई। हम सब बसंतकिशन को अच्छी तरह जानते हैं। गांव का कौन ऐसा आदमी है जो उसके चाल-चलन से वाकिफ नहीं। परमात्मा उसे स्वर्ग में जगह दे। मरनेवाले के खिलाफ़ कुछ न कहना चाहिये।"

"लेकिन ईमान की बात है" पहला आदमी फिर कहने लगा "ईमान की कहो—खुदा के आगे सबको जान देनी है।"

"तो इसमें क्या है" एक और आदमी बोला "इस हरामज़ादी

चन्दा का क्या है ? नीच जात की आवारा औरत थी । अगर बसंत सिंह ने उससे थोड़ा बहुत मज़ाक कर भी लिया था तो कौन ऐसी आफ़त आ गई थी । वह महारानी थी क्या ? राजकुमारी थी ? आखिर क्या थी वह ? कल तक तो वह और उसकी मां टके-टके के लिये गांव में मारी-मारी फिरती थीं और आज बड़ी इज़्ज़त वाली बन गई, ऊंह !"

एक और बोला "लेकिन भाई, वह थी तो एक राजपूत की प्रेमिका । राजपूत से लगकर खुद भी राजपूतनी हो गई ।"

सब हंसने लगे ।

श्याम को उनका हंसना बहुत बुरा लगा ।

पहला आदमी कहने लगा "मैं ईमान की बात कहता हूँ । मैं किसी की तरफ़दारी नहीं करूंगा । ईमान की सुनो तो बात यह है कि मोहनसिंह राजपूत है । बड़े कड़े का जवान है । वह अपनी बेइज़्ज़ती कैसे सह सकता था ।"

लोगों की नज़रें उस पर जम गयीं। उसने चिल्लाकर कहा "वसंत किशन मरा नहीं।"

बगीचे में निस्तब्धता छा गयी। सब लोग आश्चर्य से उसका मुंह ताकने लगे।

"वसंतकिशन मरा नहीं" उसने दोबारा चिल्लाकर कहा "वह ज़िन्दा है।"

सन्नाटा, गहरा सन्नाटा......दूर, श्याम ने चील की चीख़ सुनी—दूर ऊपर आकाश में।

"वह ज़िन्दा है" उस आदमी ने कहा "यकीन न हो तो डाक्टर से पूछ लो। वह मरा नहीं, बेहोश हो गया था। उसकी नब्ज़ें छूट गई थीं। घरवालों ने समझा कि वह मर गया है। चल कर डाक्टर से पूछ लो। उसकी नब्ज़ें लौट आई हैं।"

लोगों के चेहरों पर आशा के चिह्न नज़र आने लगे जैसे उन्हें उसकी बात पर विश्वास आने लगा हो।

दूसरे ही क्षण में सब लोग आप्रेशन रूम की ओर लपके। लेकिन पुलिस वालों ने उन्हें रोक दिया। पंडित सरूपकिशन उनकी ओर आ रहे थे। सब ने हाथ जोड़ कर उन्हें नमस्कार किया।

"पण्डित जी!" सब लोगों ने एक साथ पूछा।

पण्डित जी बोले "हां, मेरा भाई ज़िन्दा है अभी ज़िन्दा है।

चारों तरफ़ से उन्हें बधाई मिलने लगी। पण्डित जी हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।

आप्रेशन रूम में डाक्टर वसंत किशन की मरहम पट्टी कर रहा था। सरकारी कमीशन ने उसकी नौकरी पुनः बहाल कर दी थी क्योंकि सारी तहसील में और कोई डाक्टर न था।

वसंतकिशन अभी तक बेहोश था। उसकी नाक टेढ़ी और नीचे की ओर मुड़ी हुई मालूम होती थी। ओठ ढीले और लटके हुए थे। माथे पर लम्बे-लम्बे बाल बिखरे हुए थे और माथे के एक कोने में

खुदा हुआ वह हरे रंग का "ओं" बड़ा विचित्र-सा लग रहा था।

पूछने पर डाक्टर ने श्याम को बताया "खून बहुत निकल चुका है और अभी तक पूरी तरह बन्द भी नहीं हुआ। मुझे इसके बचने की कोई उम्मीद नज़र नहीं आती फिर भी कोशिश करना हमारा काम है।"

"हां, ठीक कहते हैं आप..." और कुछ देर बाद श्याम ने फिर कहा "और सुना है कि मोहनसिंह के घाव...."

"हां" डाक्टर ने कहा "मोहनसिंह के घाव फिर खुल गये हैं। सारी मेहनत बेकार गयी। बड़ा बेवकूफ़ निकला आख़िर!"

बाग के एक कोने में एक युक्लिप्टस के तने का सहारा लिये चन्द्रा बैठी थी।

"चन्द्रा!" श्याम ने धीरे से कहा और उसके सिर पर अपना हाथ रखा "चन्द्रा!" उसने पुनः कहा।

चन्द्रा ने एक बार उसकी ओर देखा और फिर शून्य आकाश की ओर घूरने लगी। उसके पीले ओंठ भिंचे हुए थे, उसकी आँखें आँसुओं से भरी थीं। वह उसके मुख पर उस महान संकल्प की झलक देख रहा था जिसकी उड़ान निराशा, मृत्यु और अत्याचार की सीमाओं से कहीं ऊँची होती है।"

"चन्द्रा" श्याम ने उसके बालों में उंगलियां फेरते हुए कहा "हमारा मिशन मरा नहीं, वह जिन्दा है। उसकी लड़ाई और बाक़ी है"

कुछ क्षणों तक चन्द्रा चुपचाप एकटक ताकती रही। फिर धीरे-धीरे उसके मुख पर रंग से आने लगा। भिंचे हुए ओंठों का तनाव कम हो गया और उसकी बड़ी बड़ी दूर-दूर देखती हुई आंखों में आंसू छलक आये।

: ३२ :

दूसरे दिन भी वसंतकिशन न मरा। वह ज़िन्दा भी न हुआ। बल्कि ज़िन्दगी और मौत के बीच लटकता रहा—एक अविश्वसनीय, अनिश्चित दशा में। मोहनसिंह के घाव फिर बिगड़ गये थे और उनमें पीप भर आई थी। लेकिन अब चंद्रा को उसकी देख-रेख करने की आज्ञा न दी गयी थी। केवल हस्पताल के कर्मचारी ही उसकी मरहम-पट्टी और देख-भाल कर सकते थे। मोहनसिंह के सम्बन्धियों को भी उसके पास जाने की आज्ञा न थी। बाहर भी पुलिस का पहरा था और भीतर भी। उसे अब भी हथकड़ियों और बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। यद्यपि हस्पताल में हथकड़ियां और बेड़ियां उतार दी जाती हैं लेकिन अब डाक्टर भी ऐसी सलाह देते हुए घबराता था। मोहनसिंह ने अपना विश्वास खो दिया था। अब वह केवल एक रोगी ही नहीं था, एक भयानक अपराधी भी था—एक खूनी!

जब वह होश में आया तो पुलिस वालों ने उससे अनेकों प्रश्न किये। श्याम के पिता ने इलाक़ा के मजिस्ट्रेट होने के कारण उसका बयान लिखने की कई बार कोशिश की परन्तु उसने किसी प्रकार का बयान देने से बिलकुल इनकार कर दिया। न ही वह पुलिस के किसी प्रश्न का उत्तर देता था। बस चुप्पी साधे लेटा था। कभी-कभी कराहने लगता क्योंकि घावों के खुल जाने से तकलीफ़ बहुत बढ़ गयी थी और अब चन्द्रा भी उसके पास न थी।

जब उसे बताया गया कि वसंतकिशन मरा नहीं जीवित है तब भी उसने कुछ न कहा। बल्कि उसका चेहरा लाश की तरह सफ़ेद हो गया। फिर उसने आंखें बन्द कर लीं और कोई न जान सका कि वह

क्या मोहन का है ? पुलिस उस पर सख्ती भी न कर सकती थी। अप-
राधियों से अपराध-स्वीकृति कराने वाला वह भयानक डंडा भी प्रयु-
क्त किया जा सकता था, क्योंकि मोहनसिंह की पीठ पहले ही घावों से
भरी थी और यदि सख्ती की जाती तो शायद वह मर जाता। वे
इसे इतनी सज़ा दे सकते थे कि वह चन्द्रा को उसके पास न जाने दें
और यह सज़ा उसे मिल रही थी।

कभी-कभी वह अपने मन के अंधियारे में किसी को रास्ता टटोल
कर आगे बढ़ते हुए देखता और उसका हृदय धड़कने लगता। उसकी
अंगुलियां किसी जाने-पहचाने नाजुक हाथ को छू लेतीं और फिर
वह उस नरम-नाजुक गर्दन को अपनी छाती से लिपटा लेता और

लग जाये, उसके रिसते हुए घावों में ठंडक पड़ जाये......केवल एक क्षण के लिये......आह, केवल एक क्षण के लिये......

और वह अपने ओठों को जोर से भींच लेता और धीरे-धीरे कराहने लगता और अजीब-से विचारों में डूब जाता—ऐसे विचारों में जिनमें कोई संतुलन नहीं होता—नहीं नहीं, मैं चन्द्रा से नहीं मिलूंगा। अभी नहीं अभी नहीं। मैं सहन न कर सकूंगा......उसकी वेदनापूर्ण दृष्टि मेरे हृदय को चीर देगी......मैं......मैं अधीर होकर सब कुछ बक दूंगा। नहीं, नहीं......अभी नहीं......ओ मेरे परमेश्वर......अभी नहीं......मेरे राम......अभी नहीं......इस पीड़ा ने......"

और उसे कराहते देख कर पुलिस का सिपाही कह उठता "मोहन-सिंह दर्द होता है, चन्द्रा को बुलाऊं ?"

और फिर सब कहकहे लगाने लगते।

यद्यपि चन्द्रा को मोहनसिंह से मिलने की आज्ञा न थी फिर भी वह हस्पताल की चारदीवारी से बाहर न जाती थी। वह उस वार्ड के इर्द-गिर्द एक बेचैन पक्षी की तरह मंडराती रहती या फिर बगीचे के किसी कोने में बैठ जाती। घंटों उसी तरह मौन और उदास बैठे रहती। धमकियों का उस पर कुछ असर न होता था। लोगों के समझाने पर भी वह कहीं और जाने को तैयार न हुई। रात को वह हस्पताल के बरामदे में ही एक कम्बल ओढ़कर सो जाती। लोगों ने उसे सोते भी बहुत कम देखा था। वह प्रायः बरामदे की दीवार से लगी घंटों बैठी रहती या दिन ही की तरह उस वार्ड के गिर्द चक्कर लगाती रहती, जिसमें उसका घायल प्रेमी पुलिस की हिरासत में था। उसकी हालत उस पक्षी की-सी थी जिसके घोंसले पर किसी चील ने कब्ज़ा कर लिया हो और वह चीखता हुआ अपने घोंसले पर मंडराता फिर रहा हो। चन्द्रा का चेहरा भी तो एक मौन चीख ही था—एक ऐसी करुण चीख जिसकी नीरवता हस्पताल के वातावरण में एक तीर की तरह सनसनाती मालूम होती थी।

"वह अच्छा हो जायगा" चन्द्रा ने निश्चयपूर्ण स्वर में कहा "भागना कोई इतना कठिन काम नहीं। मैं कोई रास्ता ढूंढ लूंगी। फिर हम कहीं दूर, किसी और इलाके में चले जायंगे। कुछ दिनों तक भेस बदल कर छुपे रहेंगे। जब यह शोर-शराबा समाप्त हो जायेगा, फिर हम नये सिरे से अपना नया जीवन शुरू कर सकते हैं!"

कुछ क्षण बाद वह फिर बोली—"एक काम—एक काम कर दो" और उसने श्याम का बाज़ू पकड़ लिया।

"क्या?"

"थानेदार सब कुछ कर सकता है। उसके ज़रा-से इशारे पर हमें भाग निकलने का मौका मिल सकता है।"

श्याम के चेहरे पर एक उदास, निराशा-भरी मुस्कराहट उभर आई। बोला, "यह कैसे हो सकता है? कत्ल का केस है। वह यह काम क्यों करेगा? बर्खास्त हो जायेगा।"

चन्द्रा ने धीरे से कहा "लेकिन मोहनसिंह तो हस्पताल से भागेगा, पुलिस की हवालात से तो नहीं। गार्द की ज़रा-सी असावधानता से सारा काम बन सकता है। इस तरह थानेदार पर भी कोई आंच न आने पायेगी, क्यों?"

श्याम ने कहा "अच्छा, मैं कोशिश करूंगा।"

चन्द्रा कुछ इस तरह कहने लगी जैसे वह अपने आप से बातें कर रही हो "यदि थानेदार न भी माने तो भी यह काम हो सकता है। मोहनसिंह की दलेरी गार्द की ज़रा-सी चूक......सिपाहियों को फुसलाया भी जा सकता है।....रिश्वत........?"

और श्याम देख रहा था कि उस औरत के दिल में किस तरह एक नया और अत्यन्त भयानक संकल्प जड़ पकड़ रहा था। वह दिल ही दिल में उसे सराहने लगा—काश! वह भी इतना ही दलेर होता। इतने ही दृढ़ संकल्प का व्यक्ति होता। काश! वह भी चंती को उठा

कर किसी ग़ैर इलाके में भाग सकता। वह क्यों यह सब कुछ नहीं कर सकता?—वह सोचने लगा।

दूसरे दिन संध्या समय जब वह और अलीजू सैर को निकले तो रास्ते में उन्हें डाक्टर मिल गया। बड़ा खुश खुश नज़र आ रहा था। हाथ मिलाते हुए कहने लगा—मुझे मुबारकबाद दीजिये। अफ़सरों ने सरकारी कमीशन को वापिस बुला लिया है।"

अलीजू और श्याम यह सुन कर बहुत खुश हुए और उसे बधाई देने लगे।

"आपको कब पता चला?" अलीजू ने पूछा। ऐसी बातों का प्रायः उसे सबसे पहले पता चल जाता था।

डाक्टर ने हंसते हुए कहा "अभी थोड़ी देर हुई, तार आया था। मुझे कमीशन के एक मेम्बर ने बताया।"

"मुबारक, मुबारक" अलीजू ने पुनः कहा।

"आप लोगों की दुआ है—" डाक्टर ने कहा

"कहिये।" अलीजू ने पूछा—"आपके मरीज़ों का क्या हाल है?"

"मेरे ख्याल में......कुछ कह नहीं सकता......लेकिन ज्यों-ज्यों दिन गुज़रते जायेंगे, बसंत किशन के बचने की उम्मीद बढ़ती जायेगी अब यूं समझिये कि चालीस फ़ीसदी उसके बचने की उम्मीद है।"

"और मोहनसिंह का क्या हाल है?"

"ठीक हो रहा है। पहले से हालत अच्छी है। लेकिन कमज़ोरी बहुत है। किसीसे बातचीत नहीं करता। मेरे ख्याल में अगर चन्द्रा उसके पास होती तो......"

अलीजू ने हंस कर कहा "क्या आपका इरादा सरकारी कमीशन को दोबारा बुलवाने का है?"

और वे तीनों हंसने लगे।

डाक्टर ने कहा "लेकिन उस बेचारी को मोहनसिंह से मुलाकात का मौका तो देना चाहिये।"

इससे वाकिफ़ नहीं हैं। क्या आप जानते हैं कि प्रेम क्या होता है ? क्या होता है प्रेम ? मेरा ख्याल था कि शायद आप इससे वाकिफ़ होंगे। मेरी आंखों के सामने वह तस्वीर आती है जब पहले दिन मैं इस वादी में आया था और सुबह उठते ही मैंने नदी का रुख किया था। और कचहरी की घाटी उतर कर मैं रास्ता भूल गया था और खेतों की एक बाड़ के निकट जा निकला था। उस वक्त मैंने एक लड़की देखी थी जो बाड़ से अपने ढोर निकाल रही थी। अत्यन्त सुन्दर लड़की जिस पर एक आदमी झुका हुआ था। बिल्कुल आपका-सा कद था उसका और गर्दन पर एक घाव का निशान..."

श्याम चुप हो गया। थानेदार का रंग उड़ गया।

"ज़िन्दगी बड़ी अजीब चीज़ है थानेदार साहब। यह कानून, प्रेम और जुल्म से भी बहुत अजीब और दिलचस्प है। आपका क्या ख्याल है इस बारे में ?" और श्याम ने तीखी नज़रों से उसकी ओर देखा।

थानेदार ने उससे नजरें नहीं मिलाईं। रुकते-रुकते बोला "मैं—मैं इस वक्त कुछ अर्ज नहीं कर सकता। सोचूंगा इस बारे में।"

"अच्छा तो मैं चलता हूं" श्याम ने कुर्सी से उठते हुए कहा।

"आदाब अर्ज !"

"आदाब अर्ज !"

श्याम ने चन्द्रा को यह सारा किस्सा सुनाते हुए कहा "यह तुमने अच्छा नहीं किया। मेरे विचार में यह बड़ी भारी भूल थी। वह कभी नहीं मानेगा।"

चन्द्रा ने कहा "मैं कहती हूं। इस वक्त भूलों पर सोचने का मौका नहीं। कोशिश करने का मौका है। मुझे पूरी आशा है वह मानेगा,

अवश्य मानेगा। उसे मानना ही होगा? मैं नूरां को भेजूंगी। मैं स्वयं जाऊंगी। उसके पांव पड़ूंगी। गिड़गिड़ाऊंगी। सहसा वह कहते-कहते रुक गई। शायद उसने श्याम के मुख पर निराशा के चिह्न देख लिये थे। भरे कंठ से बोली "तुम यहां मेरी हिम्मत बंधाने आते हो या मुझे निराश करने?"

"चन्द्रा" श्याम ने धीरे से कहा "मैंने तुम जैसी औरतें बहुत कम देखी हैं।"

: ३५ :

थानेदार ने सोच-समझ कर जो फ़ैसला किया वह यह था कि उसने मोहनसिंह पर पहरा और भी सख्त कर दिया। गार्द के सिपाहियों की संख्या दुगनी कर दी और उन्हें हिदायत की कि वे किसी हालत में भी चन्द्रा को मोहनसिंह से मिलने न दें। यदि वह चाहता तो चन्द्रा को हिरासत में भी ले सकता था लेकिन इससे मामला बिगड़ जाने का भय था। उसे कुछ नूरां का भी डर था और कुछ श्याम का भी। उसने इसी में भलाई जानी कि वह चन्द्रा को स्वतन्त्र रहने दे लेकिन अन्दर ही अन्दर उसने कई सिपाहियों को उसकी कड़ी निगरानी के लिये नियत कर दिया।

सिपाही थानेदार की आज्ञा पाकर मोहनसिंह से और भी सख्ती से पेश आने लगे। पहले वे टट्टी-पेशाब आदि के लिए उसकी हथ-कड़ियां खोल देते थे लेकिन अब उसे हर समय हथकड़ियां और बेड़ियां पहने रखने पर विवश कर दिया गया। मोहनसिंह सब कुछ चुपचाप सहन कर रहा था। उनके ताने, जो ताने न होकर खुली गालियां थीं, और उनका अनुचित व्यवहार। पहले-पहल मोहनसिंह को इस पर बहुत क्रोध आता था लेकिन फिर धीरे-धीरे उसे अनुभव हुआ कि वह उन गालियों, उन तीरों को बड़ी आसानी से सहन कर सकता है। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे उसे उन बातों से कोई सम्बन्ध ही न हो।

आज पट्टी कराते समय उसे बहुत तकलीफ़ हुई। बहुत-सी पीप बही थी। डाक्टर के ख्याल में एक-दो घावों की हालत बहुत खतरनाक थी और उसे भय था कि कहीं उसमें गंगरीन न हो जावे। गंगरीन?

गंगरीन न जाने क्या बला होती है। वह आज बहुत कमजोर था। पीड़ा की कष्टदायक लहरें सारे शरीर में दौड़ रही थीं—वह दर्द से कराहने लगा।

एक सिपाही ने कहा—"सुनते हो, बेटा किसी ग़ैर इलाके में भाग जाना चाहते हैं।"

दूसरा बोला "बाहर इसकी प्रेमिका चन्द्रा भागने का इन्तज़ाम कर रही है। पट्ठा विलायत जायेगा, साहब लोग बन कर।"

सब सिपाही कहकहा लगा कर हंसने लगे।

कौन भाग रहा है? मोहनसिंह सोचने लगा। क्या चन्द्रा उसके भागने का प्रबन्ध कर रही है? उसके शरीर में एक नई लहर दौड़ने लगी। हां, वह भाग रहा था। वह अच्छा हो गया था और चन्द्रा को लेकर किसी ग़ैर इलाके की ओर भाग रहा था। यह तो बहुत अच्छी बात थी। अब वह इस ज़ालिम देश को छोड़ जायेगा और किसी ऐसे देश में चला जायेगा जहां लोग उनसे केवल इसलिये घृणा नहीं करेंगे कि चन्द्रा एक नीच घराने की लड़की है। कौन कहता है, चन्द्रा नीच है! बंसतकिशन ने चन्द्रा को नीच समझा था...हां, लेकिन वह... उफ़ यह दर्द....मेरे परमेश्वर...यह दर्द कब दूर होगा। वह पीप कब बन्द होगी? उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे उसके शरीर में लाखों छोटे-छोटे कीड़े रेंग रहे हों। लाखों छोटे-छोटे कीड़े जो सुई की तरह डंक चलाते थे, शरीर के हर अंग में। उनका डंक दिल तक चुभता था, दिमाग तक। खोपड़ी के अन्दर भी सुईयां-सी चुभ रही थीं।

उसका श्वास ज़ोर-ज़ोर से चलने लगा। किसी अज्ञात भय से उसके पट्ठों में खिंचाव आने लगा। इस समय चन्द्रा क्यों नहीं आ जाती? वह अभी तक क्यों नहीं आई? वह तो कुछ नहीं चाहता। केवल उसकी उंगलियों को अपने बालों से उलझते देखना चाहता है। वह उसकी गरम सांस को अपने माथे पर महसूस करना चाहता है। उफ़ यह आग की लपटें यह आग की जिह्वाएं क्यों उसके शरीर में

ओढ़े उसकी ओर बढ़ रही थी। दरवाज़ा खुला था और वह भीतर आ गई थी। वह उस लाल दुपट्टे के भीतर से उसकी चंचल, उल्लासपूर्ण आँखें देख सकता था। उसके अधरों पर वही मुस्कान थी। चन्द्रा, तू अब तक कहाँ थी? मेरी चन्द्रा! जीवन भर मैंने तुम्हारी प्रतीक्षा की। चन्द्रा! मैं राजपूत हूँ अपने बचन का सच्चा...वह लाल दुपट्टा उसके मुख पर आ गिरा था। उसकी दुल्हन उसके हृदय से चिपट गई थी। घावों में ठंडक पड़ गई थी। हथकड़ियां फूलों के गजरे और बेड़ियां पायल! वह उन पायलों की झंकार सुन रहा था, उन फूलों की सुगंधि सूंघ रहा था।

लेकिन यह लाल दुपट्टा-सा मेरे मुख पर कैसा पड़ा है। इसे परे हटा दे, चन्द्रा! इसे मेरे मुंह पर से हटा दे। इसके होते हुए मैं तेरे मुखड़े को अच्छी तरह नहीं देख सकता। मेरी प्यारी, यह लाली-सी कैसी है। चारों ओर लाली। लाली ही लाली। चन्द्रा! चन्द्रा!

सिपाही कमरे के कोने में बैठे ताश खेल रहे थे। एकाएक उन्होंने मोहनसिंह को ज़ोर-ज़ोर से 'चन्द्रा चन्द्रा' पुकारते सुना। वे उठकर उसकी चारपाई की ओर लपके।

लेकिन मोहनसिंह मर चुका था। उसका शरीर बरफ़ की तरह ठंढा और अकड़ा हुआ था।

लालटेन के मद्धम प्रकाश में वे अपने कैदी की ओर आश्चर्य से देखने लगे, जो हथकड़ियों और बेड़ियों के बावजूद उन्हें चकमा देकर फ़रार हो गया था। वह औंधे मुंह अपने बिस्तर पर पड़ा था। हथकड़ियों को उसने अपनी छाती से लगा रखा था। दोनों हाथों से दबा कर, मोतिया के गजरों की तरह......

उन्होंने लालटेन परे रख दी और एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। सारे कमरे में एक विचित्र प्रकार की बोझल, शोकजनक उदासी छाने लगी और उनके चेहरों पर किसी अज्ञात भय का प्रतिबिम्ब झलकने लगा।

दरवाज़ा खुला था, लेकिन दुल्हन न आई थी। वह उसी वार्ड की दीवाल के दूसरी ओर कम्बल लपेटे दीवाल से लगी बैठी थी। दोनों में केवल एक दीवाल ही तो रोक थी। दरवाज़ा भी खुला था लेकिन वह फिर भी न आई थी। वह उसके इतने निकट बैठी थी, दीवाल के दूसरी ओर। लेकिन उसने उसकी आवाज़ तक न सुनी थी। उसने लाल दुपट्टे के स्थान पर एक फटा-पुराना कम्बल ओढ़ रखा था और उसे कुछ ज्ञान न था कि इसी दीवाल के दूसरी ओर उसका प्रेमी उसे पुकार रहा है अपने तन, मन और आत्मा की सम्पूर्ण शक्ति से उसे बुला रहा है—और दरवाज़ा खुला है।

दरवाज़ा खुला है और मोहनसिंह मर गया है। लेकिन कुछ भी तो नहीं हुआ। मोहनसिंह मर गया है और सारा संसार उसी तरह जीवित है और कोई नहीं जानता कि इस संसार में क्या घटना हुई है! मोहनसिंह मर गया है और कोई रोता नहीं। सिपाही भी मौन हैं और लालटेन भी जल रही है और चन्द्रा दीवाल की दूसरी ओर एक पुराना कम्बल ओढ़े शून्य दृष्टि से घूर रही है।

दरवाज़ा खुला है और रहती दुनिया तक खुला रहेगा और वह रहती दुनिया तक न आयेगी क्योंकि वह दीवाल के दूसरी ओर है।...

बाहर सारा वातावरण स्तब्ध है और रात बिलकुल शान्त और नीरव!

: ३६ :

कालेज की छुट्टियां समाप्त हो चुकी थीं और अब वह वापिस लाहौर जा रहा था। वही गुलाम हुसैन उसके साथ था। वही मार्ग था, वही खच्चर। हां समय वह न था, आशायें वह न थीं। वह स्वयं वह न था जब आज से तीन मास पूर्व इस वादी में आया था। भावुक और आशायुक्त, एम० ए० का विद्यार्थी जो जीवन को यौवन की आशावादी ऐनक से देखने का आदी था। उसके जीवन के कण-कण में और उसके शरीर की नस-नस में एक कटु निराशा का लावा रच गया था जिसने उसके ओठों की मुस्कान कड़वी कर दी थी और उसकी आंखों की चमक गंदली। वह खच्चर की पीठ पर बैठे-बैठे वादी के बदलते हुए दृश्य देखता रहा और गुलाम हुसैन की बातें सुनता रहा। उन बातों का कोई अर्थ न था और वह एक निरर्थक-सी गूंज बन कर उसके मस्तिष्क के किसी परदे से टकरा रही थीं। प्रत्येक वस्तु एक कटुतम गुबार में लिपटी हुई थी। वह यह न समझ सका कि आज इस वादी से सौन्दर्य क्यों कन्नी कतरा रहा है? सहसा उसकी आंखों के सामने उसके कालेज का कैम्पस घूम गया, जिसके मध्य में पीपल का एक पेड़ था और बैंच पर बैठी हुई इस्टिला! इस्टिला के गुलाबी कपोल जिन पर कोटी के पाउडर का भ्रम होता था। इस्टिला की हर समय चमकती हुई मुस्कान, जैसे किसी ने उस मुस्कान पर ताज़ा-ताज़ा पालिश किया हो। वह मुस्कान हर समय पालिश किये हुए बूट की तरह क्यों चमकती थी? उस मुस्कान में क्यों कोई गहराई न थी?—वह इस्टिला को देखकर मुस्करा रहा था "हलो, हलो!" उसने अपनी उंगली से उसके कपोलों को छू लिया। यह प्रेम कितना छिछला, कितना तुच्छ था "तुमने मेरे पत्र का

उत्तर नहीं दिया...वह यों हुआ....ओ माई डार्लिंग...आज मैट्रो में डांस है ना! ओ·के।" यह झूठा जीवन, यह झूठा प्रेम—एक निरंतर झूठ! ऐ भगवान! क्या झूठ का यह क्रम कभी समाप्त न होगा? क्या उसका सारा जीवन इसी झूठे और बनावटी मार्ग पर चलता रहेगा? एकाएक एक पक्षी नाशपाती के एक पेड़ पर से उड़ा और एक और पक्षी अपने पंख फैलाये हुए उससे आ मिला और वे दोनों साथ-साथ आकाश में तैरने लगे। और वह आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगा। उसे ख्याल आया कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। ये दोनों पक्षी इस खूबसूरती के साथ हवा में नृत्य नहीं कर सकते, कभी नहीं कर सकते। अभी कोई न कोई दुर्घटना अवश्य होगी और इनकी इस क्षणिक प्रसन्नता का महल ढह पड़ेगा—लेकिन कुछ भी तो न हुआ और वे दोनों पक्षी आकाश में अठखेलियां करते आंखों से ओझल हो गये। और उसके ओंठ ज़ोर से अन्दर की ओर भिंच गये और कोई उसके हृदय के वीराने में चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा "ऐ विश्व के ढोंगी भगवान! अपने अत्याचारों का अन्धियारा आवरण इस संसार के ओर-छोर पर से हटा ले। प्रकाश की कांपती हुई अन्तिम किरण को तो मनुष्य के हृदय को छू लेने दे ताकि वह जाग उठे और इस अंधकारमय पिंजरे की सलाखों को टुकड़े-टुकड़े कर दे और एक स्वतंत्र पंछी की तरह श्वास ले सके।" पंछियों का वह जोड़ा अब आकाश में गुम हो गया था और वादी की परी किसी प्राचीन कथा की सौ वर्षीय निद्रा में खो गई थी और वादी के खेतों में जंगल उग रहे थे और उसकी सारी हरियाली कँटीले झाड़ में परिवर्तित होती जा रही थी और वंती एक पुराने दुर्ग में गिरफ्तार, इस कंटीले झाड़ की गहराइयों में गुम, सौ वर्षीय निद्रा में खोई हुई थी। और वह स्वयं उस वादी का अंतिम तुच्छ कीड़ा था, जिसने अपनी रेंगती हुई कल्पना में मानव-समाज के दानव जादूगर को,—सौन्दर्य, जीवन और प्रसन्नता को, विष पिलाते देखा था। सौन्दर्य इस सौ वर्षीय निद्रा से कब जगेगा? जीवन विष के इस सूखे

क्या सोच रहा है ? और वह सोचने लगता कि वह क्या सोच रहा है ? लेकिन उसके विचार किसी एक चीज़ पर न जम पाते और वह उस सोच की अंधियारी काई पर से फिसलता हुआ एक अंधकारमय गहराई में लुढ़क जाता और उसे कुछ ज्ञात न होता कि वह कहां है ? क्या कर रहा है ? क्या सोच रहा है ? इन बातों का उसके जीवन के साथ क्या सम्बंध है ? वह जीवित है अथवा मृत ?

इसी विचार-शैथिल्य और जीवन तथा मृत्यु के मध्य उसने कई दिन गुज़ार दिये। वे दिन—जब जीवन राख था, पेड़ों पर आड़ू इस तरह स्थिर खड़े थे मानों किसी ने उन्हें मिट्टी से बनाकर वृक्षों पर लटका दिया था।...मिट्टी और राख....और उसका जी चाहता कि वह उठकर सारे विश्व को बुरी तरह झंझोड़ डाले—जागो, जागो, हिलो क्रियाशील हो जाओ, हृदय की समस्त विकलताओं के साथ उठो ! और उसे अलिफ़-लैला की वह कहानी स्मरण हो उठी जब कोई राजकुमार अपनी प्रेमिका परी की खोज में घूमता-घूमता एक स्थान पर आकर पत्थर हो गया था, एक पत्थर की मूर्ति में परिवर्तित हो गया था और हज़ार कोशिश करने पर भी हिल-जुल न सकता था। स्वयं उसकी भी यही अवस्था थी। उसे अनुभव हुआ कि वह मान्दर के किनारे नदी की एक ऊंची चट्टान पर पत्थर हो गया है। एक पत्थर की मूर्ति बन कर सारी वादी को देख रहा है। इस विचार-शैथिल्य, जीवन तथा मृत्यु के मध्य की अवस्था में मिट्टी के आड़ू की तरह लटक रहा है, जिसे कोई हिला नहीं सकता, कोई झंझोड़ नहीं सकता—शताब्दियों तक। यहां तक कि बंती का विवाह हो गया है। जीवन मर गया है। मृत्यु मर गई है। वादी जल कर राख हो गई है। नदी का पानी सूख गया है और वह उसके सूने, तपते हुए, नीले-नीले पत्थरों के ऊपर एक चट्टान पर पत्थर की मूर्ति बन उस दृश्य को शताब्दियों से ताक रहा है। वह इस दृश्य को नहीं ताकना चाहता, वह आंखें झपकना चाहता

पत्थर
...ीं झपक सकता क्योंकि उसकी आंखें भी उबल कर
...ई ।
और निस्तब्धता थी, और शून्य था साम्राज्य । उसे अनुभव
... वह स्वयं उस शून्य का, उस निस्तब्धता का एक भाग हो
... विश्व को अपने घेरे में लिये हुए हो । निस्तब्धता—जो न
है, न समझती है, न अनुभव करती है और न क्रियाशील होती
... है और होकर भी नहीं है जिसमें विचारों की कोई दिशा नहीं
और वे आवारा पक्षियों की तरह जिधर चाहें उड़े चले जाते हैं ।
...भूतियों की कोई पहुँच नहीं होती और वे तालाब की लहरों की
..., जिन्हें किसी छोटे से कंकर ने गतिशील कर दिया हो, चारों ओर
...ती हुईं, चक्कर बनाती हुईं, क्षितिज तक बढ़ी चली जाती हैं । खाना,
पीना, सोना, पढ़ना-लिखना, जीवन के समस्त कार्य निर्मूल तथा व्यर्थ
से प्रतीत होते हैं क्योंकि निस्तब्धता का कोई रूप नहीं होता, कोई रंग
नहीं होता । वह न मृत्यु है न जीवन, न विकल है न शांत । वह है और
होकर भी नहीं है ।

दिन व्यतीत होते चले गये परन्तु समय स्थिर रहा......औ...
श्याम उसी राख के शून्य वातावरण में पत्थर की मूर्ति बना हु...
जीवन और मृत्यु के बीच लटकता रहा ।

और फिर छाया ने बताया कि तहसीलदार साहब ने उसक...
दमा खारिज कर दिया है ।

"क्या हुआ ?" उसने उसी अस्तव्यस्तता में पूछा । छाया
से उसका मुंह ताकने लगी ।

"बस मुकदमा खारिज कर दिया । कहा कोई कारण
आता, रोशन को क्यों उसकी सरपरस्ती से हटाया जाये ?
हुई कि रोशन कचहरी में साफ़ झूठ कह गया कि वह वं...

दूर तक फैले हुए धान के खेत और उनसे परे पूर्वी पर्वत-शृंखलाएं—और उन सबके ऊपर चांदनी की राख का गुबार।

एकाएक सारी वादी में शहनाई के चीखते हुए स्वर गूंजने लगे—गूंज ऊंची होने लगी—ऊंची और ऊंची। यहां तक कि धरती और आकाश उस गूंज से परिपूर्ण हो गये। स्वर थर्रा रहा था, कांप रहा था। ऊंचा....और ऊंचा। उसका चीत्कार किसी मनुष्य के चीत्कार के समान था। ऊंचा....और ऊंचा। जैसे वंती की आत्मा पिघल गई थी और अब इन ऊंचे स्वरों में इस वादी के निर्दयी भगवान् के आगे सिर झुकाये चीख़ चिल्ला रही थी, तड़प रही थी। यह प्रसन्नता का गीत न था, किसी घायल पक्षी की उड़ान थी, अंतिम उड़ान। गोली लग चुकी थी और वह अपने पंख फड़फड़ाता हुआ, वायु में चक्कर काटता हुआ, चीत्कार करता हुआ मृत्यु के मुंह में जा रहा था। बुलबुल का विषाद-भरा स्वर....मृत्यु....शादी की शहनाई ....मृत्यु बुलबुल का विषाद-भरा स्वर....मृत्यु... कीट्स के शब्द To sink upon the midnight with pain....शायद कीट्स सच्चा था। इस शहनाई के स्वर में जीवित मांस के जलने की बू आ रही थी....और बेदी जल रही थी और दुर्गादास और वंती उसके गिर्द घूम रहे थे....

कहीं से दो जुगनू उस अखरोट के तने के निकट झिलमिलाने लगे। दो नाज़ुक आकाश-किरणें उस बुत की पत्थर की आँखों के निकट कांपने लगीं लेकिन उसकी आँखों में ज्योति न थी और हाथ बेजान थे। वह उन्हें पकड़ न सकता था। कोई उसके कानों में कह रहा था "इतनी प्रसन्नता न सह सकूंगी। अब मैं मर जाऊं तो अच्छा है—जब तक जीवित हूं तुम्हारे साथ हूं"—लेकिन वह जीवित न था। वह तो पत्थर का बुत था और उस आवाज़ को सुन न सकता था "ओ-माई डार्लिंग....ओ-माई डार्लिंग"! वंती ने अपने ओंठ उसके ओठों पर रख दिये। वह उसके गले से लिपटी जा रही थी....ओ-माई डार्लिंग...लेकिन

रही, चिल्लाती रही और दोनों हाथों से अपनी छाती कूटती रही लेकिन उसे उस तरह, एक चमगादड़ की तरह व्याकुल, चक्कर लगाते किसी ने न देखा। उसका चीत्कार किसी ने न सुना। उसकी छाती की धमक मिट्टी की उन दीवारों से बाहर न जा सकी—क्योंकि सारा गांव वंती के विवाह में सम्मिलित था। मिट्टी की दीवारें सब कुछ जानती हैं लेकिन कर कुछ नहीं सकतीं। वह क़ैद कर सकती हैं लेकिन रास्ता नहीं दे सकतीं। वह पनाह दे सकती हैं लेकिन आज़ादी नहीं। छाया क़ैद में थी और वंती का विवाह हो रहा था।

वंती का विवाह हो रहा था और तहसीलदार साहब ने मुकदमा ख़ारिज कर दिया था। माता-पिता ने अपने प्रिय पुत्र को अपना जीवन नष्ट करने से बचा लिया था। समाज ने एक और व्यक्ति को अपनी सुरक्षित चारदीवारी से बाहर भटकने से रोक लिया था......तहसील-दार साहब मुस्करा रहे थे, उनकी पत्नी मुस्करा रही थीं, रोशन मुस्करा रहा, था सरूपकिशन मुस्करा रहा था और उसकी पत्नी मौक़ा पाकर घर से निकल आई थी और मक्की के खेत में एक गूजर की गोद में बैठी मुस्करा रही थी। यों कहिए, सारा समाज प्रसन्न था। धन्य हैं ऐसे विवाह जिनसे सारे समाज में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। यहां तक कि खेत के पौधे भी प्रसन्नता से झूमने लगते हैं।

वंती का विवाह हो रहा था और चाँद राख का ढेर बना हुआ था। आकाश पर सितारे राख के सफ़ेद कणों की तरह बिखरे हुए थे और धरती-आकाश राख से सने हुए आंगन की भाँति नज़र आते थे। जमरौद के एक छोटे-से बुर्ज के सहारे पत्थर का एक बुत खड़ा था। उसके पांव में दूर तक मक्की के खेत थे और सरूपकिशन का घर जिसकी छत से धुंआ उठ रहा था और हल्का-हल्का मध्यम-मध्यम-सा शोर और कहकहे और गानों के गाते हुए स्वर। और उस घर से परे एक श्मशान और क़ब्रिस्तान, और क़ब्रिस्तान का नाला और रोती नाला, फिर

दूर तक फैले हुए धान के खेत और उनसे परे पूर्वी पर्वत-शृंखलाएं—और उन सबके ऊपर चाँदनी की राख का गुबार।

एकाएक सारी वादी में शहनाई के चीखते हुए स्वर गूंजने लगे—गूंज ऊंची होने लगी—ऊंची और ऊंची। यहां तक कि धरती और आकाश उस गूंज से परिपूर्ण हो गये। स्वर थर्रा रहा था, कांप रहा था। ऊंचा....और ऊंचा। उसका चीत्कार किसी मनुष्य के चीत्कार के समान था। ऊंचा....और ऊंचा। जैसे वंती की आत्मा पिघल गई थी और अब इन ऊंचे स्वरों में इस वादी के निर्दयी भगवान् के आगे सिर झुकाये चीख़ चिल्ला रही थी, तड़प रही थी। यह प्रसन्नता का गीत न था, किसी घायल पक्षी की उड़ान थी, अंतिम उड़ान। गोली लग चुकी थी और वह अपने पंख फड़फड़ाता हुआ, वायु में चक्कर काटता हुआ, चीत्कार करता हुआ मृत्यु के मुंह में जा रहा था। बुलबुल का विषाद-भरा स्वर....मृत्यु....शादी की शहनाई ....मृत्यु बुलबुल का विषाद-भरा स्वर....मृत्यु... कीट्स के शब्द To sink upon the midnight with pain....शायद कीट्स सच्चा था। इस शहनाई के स्वर में जीवित मांस के जलने की बू आ रही थी....और बेदी जल रही थी और दुर्गादास और वंती उसके गिर्द घूम रहे थे....

कहीं से दो जुगनू उस अखरोट के तने के निकट झिलमिलाने लगे। दो नाजुक आकाश-किरणें उस बुत की पत्थर की आँखों के निकट कांपने लगीं लेकिन उसकी आँखों में ज्योति न थी और हाथ बेजान थे। वह उन्हें पकड़ न सकता था। कोई उसके कानों में कह रहा था "इतनी प्रसन्नता न सह सकूंगी। अब मैं मर जाऊं तो अच्छा है—जब तक जीवित हूं तुम्हारे साथ हूं"—लेकिन वह जीवित न था। वह तो पत्थर का बुत था और उस आवाज़ को सुन न सकता था "ओ-माई डार्लिंग.... ओ-माई डार्लिंग"! वंती ने अपने ओंठ उसके ओठों पर रख दिये। वह उसके गले से लिपटी जा रही थी....ओ-माई डार्लिंग...लेकिन

उसके ओंठ निर्जीव थे—ठण्डे और बेजान और भिंचे हुए...और वह वंती को चूम न सकता था।

जुगनुओं की कांपती हुई प्रकाश-किरणें झिलमिला रही थीं। सरूपकिशन के आंगन में लड़कियां गीत गा रही थीं "सोहने रांझे न सुन्दां पाईयां...जिन्हा लाइयां नीं तोड़ निभाइयां"। चांद चमक रहा था और अखरोट के नीचे चाँदनी और अंधकार का सुन्दर संगम था और उस संगम में पत्थर का वह बुत अकेला खड़ा था। निर्जीव, शांत, निश्चेष्ट! "जिन्हा लाइयां नी तोड़ निभाइयां' यह लड़कियों का गीत था या शहनाई का नगमा या घायल पत्ती की आवाज़..."ओ-माई डार्लिंग ....ओ-माई डार्लिंग..."

चाँदनी राख की तरह बरसती रही। वातावरण देर तक उस पागल चीख़ की पुकार से कांपता रहा लेकिन पत्थर का बुत अखरोट के तने का सहारा लिये चुपचाप खड़ा रहा। उसकी आँखें झुकी हुईं थीं और ओंठ अन्दर की ओर भिंचे हुए...

न जाने कितने दिनों तक वह उसी तरह जीवन और मृत्यु के बीच लटकता रहा। कितने ही दिनों से उसने कुछ खाया-पीया नहीं था। उसे कुछ ज्ञान न था कि वह कहां है, क्या कर रहा है? कब सोता है, कब जागता है? उसकी माता व्याकुल थी। पिता की आंखों में आंसू थे। दादा को भी उसने अपने सिर पर हाथ फेरते देखा था। शायद महन्तोसिंह की बातें भी उसने सुनी थीं। और मैयदा की अफवाहें भी।...चन्दा पागल हो गई थी। वह गांव-गांव घूमती-फिरती थी। उसके बाल फटे हुए थे। वह हर किसी को मोहनसिंह समझती थी और [illegible] के पैरों में पत्थर से [illegible] थी। उसके मुंह से [illegible] थी...आज वही धर्मशाला में पूजा के लिये गई थी और [illegible]

हेलियों के साथ ठाकुरजी की पूजा को गई थी और उसने नदी में तरनारि के फूल बहाए थे। आज वंती ने हरे रेशम के झिलमिलाते हुए कपड़े पहिन रक्खे थे और उसकी नाक में सफ़ेद मोती की कील चमक रही थी.......। उनके सम्बंधी लाहौर से आ गये थे जिन्हें मंगनी पर आने को लिखा गया था। वे बाग में आरामकुर्सियों पर बैठे श्याम से बातें कर रहे थे और वह हूं—हां में उनका उत्तर दे रहा था।...उसकी माता की प्रार्थनायें, उसके पिता का कोमल स्वर...वह खाना भी खा रहा था। वह वस्त्र भी बदल रहा था। वह नायब तहसीलदार के साथ सैर को भी जा रहा था। वह आडुओं के कुंज में किताब भी पढ़ रहा था और फिर उसे ऐसा मालूम होता जैसे वह, वह नहीं। वह किसी अन्य व्यक्ति को यह सब कार्य करते हुए देख रहा है। जैसे वह इन सब बातों से अलग-थलग एक ऊंची चट्टान पर एक दर्शक बना इस खेल को देख रहा है। इस खेल में प्रसन्नता थी न शोक। इस खेल से उसका कोई सम्बंध न था। उसकी अनुभूति जड़ हो चुकी थी, उसकी आत्मा निस्तब्ध और उसका अन्तस्तल बरफ़ का एक टुकड़ा........

मंगनी! यह किसकी मंगनी हो रही थी? वह उसी अस्तव्यस्तता में सोचने लगा। यह सारा आडम्बर किस लिये! क्या सिन्दूर के एक तुच्छ, अधम, गोल-से टीके के लिये जो पत्थर के बुत के माथे पर इसलिये लगा दिया जाये ताकि शताब्दियों तक कोढ़ के एक बदसूरत दाग की तरह झिलमिलाता रहे। अजीब लोग हैं ये भी! यह कैसा संसार है? तर्क, सचाई, न्याय उसे थोथे शब्द प्रतीत होने लगे—ऐसे शब्द जिनमें आत्मा न थी, जिनमें से आत्मा निकाल कर बाहर फेंक दी गई थी और अब उसे ये शब्द चन्द्रा की तरह पागल मालूम होते थे। केवल ये शब्द ही नहीं बल्कि ये लोग भी जो प्रतिक्षण इन शब्दों का सहारा ढूंढते थे, उसे पथभ्रष्ट मालूम होते थे। बेचारे मुसाफ़िर रास्ता भूल गये हैं और अब शहनाइयां और ढोलकें और मिसरी की डलियां इकट्ठी कर रहे हैं ताकि मिसरी की मिठास और आनन्द में उस घायल चीख़

उसके ओंठ निर्जीव थे—ठण्डे और बेजान और भिंचे हुए...और वह चंती को चूम न सकता था।

जुगुनुओं की कांपती हुई प्रकाश-किरणें झिलमिला रही थीं। सरूपकिशन के आंगन में लड़कियां गीत गा रही थीं "सोहने रांझे नं सुन्दां पाईयां...जिन्हा लाइयां नीं तोड़ निभाइयां"। चांद चमक रहा था और अखरोट के नीचे चाँदनी और अंधकार का सुन्दर संगम था और उस संगम में पत्थर का वह बुत अकेला खड़ा था। निर्जीव, शांत, निश्चेष्ट ! "जिन्हा लाइयां नी तोड़ निभाइयां' यह लड़कियों का गीत था या शहनाई का नगमा या घायल पक्षी की आवाज़..."ओ-माई डार्लिंग ....ओ-माई डार्लिंग..."

चाँदनी राख की तरह बरसती रही। वातावरण देर तक उस घायल चीख की पुकार से कांपता रहा लेकिन पत्थर का बुत अखरोट के तने का सहारा लिये चुपचाप खड़ा रहा। उसकी आँखें झुकी हुईं थीं और ओंठ अन्दर की ओर भिंचे हुए...

न जाने कितने दिनों तक वह उसी तरह जीवन और मृत्यु के बीच लटकता रहा। कितने ही दिनों से उसने कुछ खाया-पीया नहीं था। उसे कुछ ज्ञान न था कि वह कहां है, क्या कर रहा है ? कब सोता है, कब जागता है ? उसकी माता व्याकुल थी। पिता की आंखों में आंसू थे। छाया को भी उसने अपने सिर पर हाथ फेरते देखा था। शायद लक्ष्मीचन्द्र की बातें भी उसने सुनी थीं। और मैमदा की अफवाहें भी।...चन्द्रा पागल हो गई थी। वह गांव-गांव घूमती-फिरती थी। उसके कपड़े फटे हुए थे। वह हर किसी को मोहनसिंह समझती थी और उसे [illegible] के [illegible] में घसीट ले जाती थी। उसके मुंह से [illegible] थी...आज [illegible] धर्मशाला में पूजा के लिये गई थी और उसने [illegible] की मूर्ति को दूध से नहलाया था। आज [illegible] अपनी मढ़ी-

लियों के साथ ठाकुरजी की पूजा को गई थी और उसने नदी में तर-नारि के फूल बहाए थे। आज बंती ने हरे रेशम के झिलमिलाते हुए कपड़े पहिन रक्खे थे और उसकी नाक में सफेद मोती की कील चमक रही थी.......। उनके सम्बंधी लाहौर से आ गये थे जिन्हें मंगनी पर आने को लिखा गया था। वे बाग में आरामकुर्सियों पर बैठे श्याम से बातें कर रहे थे और वह हूं—हां में उनका उत्तर दे रहा था।...उसकी माता की प्रार्थनायें, उसके पिता का कोमल स्वर...वह खाना भी खा रहा था। वह वस्त्र भी बदल रहा था। वह नायब तहसीलदार के साथ सैर को भी जा रहा था। वह आड़ुओं के कुंज में किताब भी पढ़ रहा था और फिर उसे ऐसा मालूम होता जैसे वह, वह नहीं। वह किसी अन्य व्यक्ति को यह सब कार्य करते हुए देख रहा है। जैसे वह इन सब बातों से अलग-थलग एक ऊंची चट्टान पर एक दर्शक बना इस खेल को देख रहा है। इस खेल में प्रसन्नता थी न शोक। इस खेल से उसका कोई सम्बंध न था। उसकी अनुभूति जड़ हो चुकी थी, उसकी आत्मा निस्तब्ध और उसका अन्तस्तल बरफ़ का एक टुकड़ा.......

मंगनी! यह किसकी मंगनी हो रही थी? वह उसी अस्तव्यस्तता में सोचने लगा। यह सारा आडम्बर किस लिये! क्या सिन्दूर के एक तुच्छ, अधम, गोल-से टीके के लिये जो पत्थर के बुत के माथे पर इसलिये लगा दिया जाये ताकि शताब्दियों तक कोढ़ के एक बदसूरत दाग की तरह झिलमिलाता रहे। अजीब लोग हैं ये भी! यह कैसा संसार है? तर्क, सचाई, न्याय उसे थोथे शब्द प्रतीत होने लगे—ऐसे शब्द जिनमें आत्मा न थी, जिनमें से आत्मा निकाल कर बाहर फेंक दी गई थी और अब उसे ये शब्द चन्द्रा की तरह पागल मालूम होते थे। केवल ये शब्द ही नहीं बल्कि ये लोग भी जो प्रतिक्षण इन शब्दों का सहारा ढूंढते थे, उसे पथभ्रष्ट मालूम होते थे। बेचारे मुसाफ़िर रास्ता भूल गये हैं और अब शहनाइयां और ढोलकें और मिसरी की डलियां इकट्ठी कर रहे हैं ताकि मिसरी की मिठास और आनन्द में उस घायल चीख

की कटुता और उस मरते हुए पक्षी की अंतिम उड़ान को गुम कर सकें जिसे उन्होंने स्वयं अपने हाथों आहत किया था। उस बुत के माथे पर सिन्दूर का टीका लगायें जिसकी आत्मा को उनके क्रूर हाथों ने नोच-नोचकर बाहर फेंक दिया था। मंगनी? उसने सोचा, मंगनी बड़ी अच्छी चीज़ है। मंगनी के बाद एक भूत एक बरफ़ की शिला को अपने पल्लू से बांधे एक सुन्दर वेदी के गिर्द घिसटता हुआ घूमता है। वेदी जलती है और शहनाई बजती है, जिसके ऊंचे स्वरों में जीवित मांस के जलने की बू आती है। अच्छा खेल है यह! अच्छा हो चाहे बुरा, वह तो एक ऊंची चट्टान पर बैठा है और उन लोगों का तमाशा देख रहा है—उसे क्या?

उसे क्या? वह मगंनी का दिन था। शहनाइयां बज रही थीं। बाग और बंगला झंडियों से सजे हुए थे। स्त्रियां सुन्दर वस्त्र पहिने इधर-उधर आ जा रही थीं। पुरुषों ने श्वेत-उज्जवल कपड़े पहिन रक्खे थे। हां कहीं-कहीं नील के बड़े-बड़े धब्बे थे। कई एक ने अधिक सफ़ेदी के प्रयत्न में कपड़े नीले कर लिये थे। बेचारे इंसान! देहाती!....यह लड़की कौन है? अच्छी-खासी मालूम होती है। मुस्करा भी रही है।.... यह तहसीलदार साहब हैं। यह उनके सम्बंधी हैं। यह तहसीलदार साहब की पत्नी है। यह छाया है...यह चमगादड़ है जो एक अंधियारे कमरे की दीवारों के साथ अपना सिर टकराती-फिरती है....। नमस्कार पण्डित जी! आहा तहसीलदार साहब की पत्नी पण्डित सन्तकिशन

हवन होने लगा। पण्डित आसनों पर बैठे श्लोक पढ़ रहे थे। आग जल रही थी। आग का धुआं और सुगंधित घी की लपटें। एक थाल में चावल, ज़ाफ़रान, सिन्दूर, गुलाब की पत्तियां, सुगंधित निर्मल जल और घी का एक दीया जलता हुआ। एक लौ...., अकेली! रौ मे है रख्शे-उम्र देखिये कहां थमे—न हाथ बाग पर है न पा है रिकाब में।....* लेकिन उसके पांव रिकाबों में थे। वह घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ था और वह और गुलाम हुसैन साथ-साथ चले जा रहे थे।

शहनाई बज रही थी, ढोलक बज रही थी, गीत गाये जा रहे थे। एकाएक पण्डित सरूपकिशन ने हाथ का इशारा किया और दूसरे ही क्षण चारों ओर चुप्पी छा गई। केवल हवन की लकड़ियां कभी-कभी चटख़ उठतीं या लपटों में घी के जलने की आवाज़ आती जैसे जीवित मांस भुना जा रहा हो। पण्डित जी श्लोक पढ़ रहे थे। अंतिम श्लोक! जिसके बाद चन्दन, ज़ाफ़रान, सिन्दर, गुलाब-जल और चावल का टीका लगता है। अजीब तमाशा था और वह उस ऊंची चट्टान पर बैठा उस सारे दृश्य को देख रहा था।

पण्डितजी ने हाथ का इशारा किया और तहसीलदार साहब की पत्नी ने थाल उठा लिया और धीरे-धीरे आगे बढ़ी। यह क्या? हे भगवान यह क्या? वह उसकी ओर बढ़ी चली आ रही थी। उसकी ओर जो इन सबसे अलग-थलग एक ऊंची चट्टान पर बैठा था। सब लोगों की दृष्टि उस पर जमी हुई थी। लड़कियों के मुस्कराते हुए चेहरे उसकी ओर थे जो उसे एक खेल समझ रहा था। एक तमाशा जिसमें न प्रसन्नता है, न शोक....। वह मुस्कराते हुए उसकी ओर बढ़े चली आ रही थी और दुनियां की नज़रे पत्थर के उस बुत के माथे पर लगी हुई थीं जहां कुछ ही क्षणों में कोढ़ का बदनुमा दाग़ लगा दिया जायेगा और जो फिर शताब्दियों तक झिलमिलाता रहेगा। नहीं, नहीं! यह

---

* जीवन-यात्रा न जाने किस ओर कहाँ जाकर रुकेगी—न तो हाथ में घोड़े की लगाम है और न रकाब में पाँव ही।

मंगनी उसकी न थी। वह पत्थर का बुत था तो भी उससे यह अपराध न हो सकता था....हाथ उसके निकट आ रहा था। नहीं....नहीं, मैंने कोई अपराध नहीं किया। मैं तो केवल दर्शक हूं। तुम लोगों का तमाशा देख रहा था। एक पत्थर का निरपराध दर्शक! भगवान के लिए यह कोड़ मुझे न दो।...समाज का हाथ उसकी ओर बढ़ा चला आ रहा था। इतना बड़ा और भयंकर हाथ और उस हाथ में लाल कोड़ा जगमगा रहा था जैसे एक तेज़ जलती हुई मशाल। यह मशाल मेरी आंखें झुलस देगी। मेरे माथे को जला देगी। नहीं, नहीं, मैंने कोई अपराध नहीं किया। उफ़! यह आग की लपलपाती जिह्वाएं....

एकाएक उसने सुना। एक छोटा-सा लड़का दरवाज़े की दहलीज़ पर खड़ा चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था "वंती मर गई—वंती मर गई।"

और उस पत्थर के बुत में जान पड़ गई। उसने ज़ोर से अपनी माता का हाथ झटक दिया। थाल एक झनाके के साथ फ़र्श पर जा रहा और वह बड़ी तेज़ी से घर से निकल गया।

कभी खुश न रह सकती थी। उसने दुर्गादास की समस्त कामनाओं को ठुकरा दिया था। उसके चेहरे से गुलाब के फूल मुरझा चुके थे। अब वहां बरफ़ थी...श्वेत, ठण्डी बरफ़, जो उन ऊंचे पर्वतों की याद दिलाती थी जिनकी चोटियों तक मनुष्य के कदम आज तक नहीं पहुंच पाये। वही बरफ़ उसकी दृष्टि में थी और यद्यपि वह मुंह से कुछ न कहती थी लेकिन जब वह अपनी दृष्टि दुर्गादास या सरूपकिशन के चेहरे पर गाड़ देती तो वे उस बरफ़ीली दृष्टि से नज़र न मिला सकते और उनके सारे शरीर में सिहरन-सी दौड़ जाती जैसे वह किसी भयानक, फिसलते हुए ग्लेशियर के किनारे खड़े हों और चारों ओर गहरी खाइयों में मृत्यु नाच रही हो। क्षण-भर के लिए वे आंखें बन्द कर लेते या खिसियाने होकर इधर-उधर चले जाते और दुर्गा से, दासियों से या घर की नौकरानियों से बातें करने लगते। जब कभी दुर्गादास और सरूपकिशन घर से बाहर होते तो उस समय भी वह चुपचाप बैठी शून्य आकाश की ओर ताकती रहती। उसकी आंखों की भयानक, बर्फ़ीली गंभीरता से

जाती और उसके मुस्कराते हुए, कांपते हुए ओठ आंसुओं में भीगे हुए से प्रतीत होने लगते....।

विवाह से पूर्व भी और विवाह के पश्चात् भी उसकी पूरी-पूरी निगरानी की जाती थी। उसे घर से कभी अकेले न निकलने दिया जाता। हर समय स्त्रियां उसे घेरे रहतीं। कोई न कोई अवश्य उसके पास मौजूद होता लेकिन वंती को उनकी उपस्थिति का बहुत कम अनुभव होता था। अब वह दूर, बहुत दूर चली गई थी, चली जा रही थी। अब उसे किसी प्रकार की परेशानी न थी....न वह उन परेशानियों को हैरानी की नज़र से देखती थी। यह सब कुछ ठीक ही तो था। प्रथा-परम्पराओं के अनुसार यह सब कुछ न्यायपूर्ण था। केवल उसका हृदय जम चुका था, आत्मा जम चुकी थी। और वे ग्लेशियर जो दूसरों को उसकी आंखों में नज़र आते थे, स्वयं वंती की आंखों में पिघल रहे थे। मृत्यु की वह परछाईं जिसका अनुभव लोगों को अपने लिए होता था, वास्तव में वंती की अपनी आंखों में छाई हुई थी।

और जब सहेलियों ने उसे बताया कि तहसीलदार के लड़के की सगाई होने जा रही है और यह भी कि शगुन बड़े ठाठ से होगा, गांव-भर की औरतें वहां जमा होंगी और वहां विवाह से भी अधिक रौनक होगी तो भी वह चुप ही रही और किसी ने उसकी बड़ी-बड़ी पुतलियों की हैरानी को न देखा। नहीं, शायद यह हैरानी न थी बल्कि एक विचित्र प्रकार की अनुभूति, एक हृदय-विदारक अनुभव की गहराई भी उस हैरानी में मिली हुई थी। एक ऐसी हैरानी जिसमें उसकी आत्मा की जलन, उसके हृदय का लहू घुला हुआ था और इसके साथ ही उसके चेहरे पर एक ऐसी विचित्र मुस्कान उमड़ आई जिसमें कटुता भी थी, मधुरता भी और ममता भी लेकिन किसी ने उसकी उस विचित्र मुस्कान को न समझा, न उसकी दृष्टि को !

और जब उसकी सहेलियों ने उससे पूछा कि क्या वह मंगनी में सम्मिलित होगी—उनके साथ चलेगी ना ? तो उसने अजीब-सी मुस्का-

राहट के साथ कहा "हां, मैं ज़रूर चलूंगी।" और वह मंगनी के दिन बहुत सवेरे उठी और नये वस्त्र लेकर अपनी सहेलियों के साथ नदी पर नहाने के लिये चल दी। मान्दर की नदी पर नहीं, बल्कि रोड़ी नाले पर, जो बाज़ार के पीछे एक सुन्दर घाटी में एक मन्द-गति, नदी की तरह बहता था। जिस स्थान पर वंती और उसकी सहेलियां नहा रही थीं वहां उन्होंने बांध लगा कर पानी की एक सुन्दर, छोटी-सी झील बना डाली थी। यहां नदी के एक तरफ़ ऊंची-ऊंची झाड़ियां थीं और दूसरी तरफ़ जंगली अन्जीर के वृक्षों का कुंड था जिसकी घनी छाया से यह स्थान ओट में हो गया था।

नहा-धोकर वंती ने वस्त्र बदले। उसने वही सूट पहिना जो उसने बहुत समय हुआ नंगू मिसर के लड़के के विवाह में पहिना था। आज नियत-निकट तक मुस्करा रही थी और उसके नरम-नाजुक ओंठ रह-रहकर कांप उठते थे और उसकी आंखों में एक अद्भुत चमक दौड़ जाती थी। हां, उसके मुख पर लालिमा न थी और उसके मुख का गौरवर्ण उसकी घनी पलकों की काली पंक्ति को और भी उज्ज्वल कर रहा था। लड़कियां इस परिवर्तन पर हैरान थीं और असल बात समझे बिना उसे बार-बार छेड़ रही थीं लेकिन वंती ने उनकी चंचलतापूर्ण बातों का कोई उत्तर न दिया।

नहा-धोकर और वस्त्र बदल कर वह अपनी सहेलियों के साथ [illegible] चल दी। चांदी के तारों वाले [illegible] दुपट्टे ने उसके [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

और ऊपर डाल-डाल पर हरे-हरे तोते चिल्ला रहे थे....वंती उठ! वंती जाग! जाग! तेरे प्रियतम का शगुन है। देख, पर्वतों पर धुन्ध फैल रही है। सूरज का सोना नदी की आँखों में चमक रहा है। तेरी सहेलियों के हृदयों में प्रेम के गीत रुके हुए हैं। उठ प्यारी वंती! लाजवंती, छुई-मुई जैसी नाजुक लजीली कंवारी उठ! देख तेरे प्रियतम के माथे पर शगुन का टीका चमक रहा है और तेरी माँग सुहाग के सिन्दूर से रची हुई है। उठ प्यारी वंती, देख संसार कितना सुन्दर है। शहतूत के पेड़ पर गुलाबी, किरमज़ी शहतूत लम्बी-लम्बी बालियों की तरह लटक रहे हैं और खेतों पर धुन्ध फैलती जा रही है, प्रियतम के मधुर स्वप्न की भांति........

और यद्यपि तोते देर तक चिल्लाते रहे, उसकी सहेलियां देर तक शोर मचाती रहीं यहाँ तक कि गाँव में लोग जमा हो गये, और यद्यपि संसार उसी तरह सुन्दर था और नीले आकाश पर सावन के बादल राजकुमारों की भाँति अपने बहुमूल्य वस्त्र पहिने जिनमें धुन्ध का रेशम और किरनों के सुनहरे तार गुँथे हुए थे—अपनी [illegible] [illegible] लेकिन वंती [illegible] [illegible] [illegible]

कहने लगा...."ओ माई डार्लिंग.......ओ माई डार्लिंग"....

....और अब उसे केवल इतना याद था कि मान्दर की नदी के किनारे एक चिता जल रही थी और उसकी लपटें नदी के स्तर पर नाच रहीं थी।....वह श्वेत हिम-शिला अब चाँदी की भभूत में परिवर्तित होती जा रही थी। हवा दम साधे हुए थी, बादल घिरे हुए थे और शफ़तालू का एक वृक्ष उस चिता के निकट खड़ा था जिसके पत्ते, फल-फूल सब झड़ चुके थे। वह उस वसन्त ऋतु में अपने जीवन की पतझड़ लिये चुपचाप खड़ा था। चिता जल रही थी और वह बरफ़ की मूर्ति चाँदी की भभूत बनती जा रही थी।

चिता के निकट दुर्गादास खड़ा था मौन, सिर झुकाये, लपटों के प्रकाश में उसकी भयानक परछाईं एक भूत की तरह नदी के स्तर पर कांप रही थी। श्याम का प्रतिबिम्ब भी एक भूत था और बलभद्र का भी, सरूपकिशन का भी और छाया का भी।...और इन जीवित भूतों के मध्य में एक चिता जल रही थी।

...और शफ़तालू का वृक्ष अकेला खड़ा था।